LBD®

योग शिक्षा

B.Ed.

डॉ० के. के. गुप्ता

LAXMI BOOK DEPOT™
BHIWANI

kagamukie@gmail.com

Strictly according to the new Style , Syllabus and guidelines for evaluation issued by Kurukshetra University, Kurukshetra, Ch. Devi Lal University, Sirsa & Maharishi Dayanand University, Rohtak

LBD

योग-शिक्षा
[*Yoga Education*]

लेखकः

डॉ. कृष्ण कुमार गुप्ता

चरखी दादरी–हरियाणा

–: *प्रकाशक* :–

लक्ष्मी बुक डिपो

हांसी गेट, भिवानी (हरियाणा)

मूल्य : 100/-

प्रकाशक :

लक्ष्मी बुक डिपो

हांसी गेट, भिवानी (हरियाणा)

दूरभाष : 01664–249218

TM : Trade Mark No. 832158, 831949

Revised Edition : 2010-2011

मूल्य : 100/-

Laser Typesetting by :
VIBHUTI COMPUTERS
New Delhi.

Printed at :
NOVELTY PRESS
Delhi.

प्रस्तावना

योग एक दर्शन है। यह जीवन को समग्र रूप से देखने की दृष्टि देता है। इसमें शरीर की उपेक्षा नहीं है। शरीर तो साधन है जिसके माध्यम से अन्तिम साध्य अर्थात् परमपिता में आत्मा को लीन करना है।

'शरीर माद्यमं खलु धर्मसाधनाम्', शरीर की साधना ही धर्म का साधन है। योग में स्थूल शरीर के साथ-साथ सूक्ष्म शरीर की भी विवेचना है।

भारत वर्ष में अत्यन्त प्राचीन काल से योग-व्यायाम करने की पद्धति प्रचलित है। हमारे ऋषि-मुनि केवल योग साधना के बल पर ही हजारों वर्ष तक स्वस्थ तथा लम्बा जीवन जीते थे। योग साधना से शरीर तथा मन दोनों को स्वस्थ तथा प्रसन्न बनाया जा सकता है।

योग आत्मविद्या का बीज है। उसकी साधना से चेतना पर छाया जो आवरण है, वह दूर होता। योग केवल आसन प्राणायाम ही नहीं है वरन् शरीर को स्वस्थ तथा शक्तिशाली बनाने का साधन भी है।

स्वस्थ शरीर से मन स्वस्थ रहता है तथा स्वस्थ मन से निर्मल भावना का विकास होता है।

वर्तमान युग भौतिकवाद का युग है। भौतिक साधनों को जुटाने के चक्कर में व्यक्ति ने बहुत कुछ खोया है तथा खोता जा रहा है। यदि उसने कुछ पाया है तो वह है मानसिक तनाव, अनिद्रा तथा अन्य अनेक बीमारियाँ, भोग-विलास की इस तृष्णा के कारण मन तथा शरीर दोनों ही जर्जर होते जा रहे हैं। हम अपनी आन्तरिक आत्मा को भूलकर बाह्य आडम्बरों में उलझते तथा फँसते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में योग मानव को व्यक्तिगत विकास के साथ-साथ सामाजिक विकास के लिए भी प्रेरणा स्रोत है।

इन्हीं विचारों को ध्यान में रखकर इस पुस्तक को लिखने का प्रयास किया है। इस प्रयास में डॉ. अर्चना गुप्ता का भी पूरा सहयोग मिला है। लेखक की पत्नी, जो बहुत धार्मिक विचारों की है के सहयोग के बिना शायद ही यह प्रयास सफल हो पाता।

यह पुस्तक महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, चौधरी देवी लाल विश्वविद्यालय तथा कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के बी.एड. के विद्यार्थियों के लिए तो उपयोगी होगी ही, जनमानस को भी योग साधना की ओर प्रेरित करेगी, ऐसी लेखक को आशा है।

लेखक को इस कार्य के लिए उत्साहित तथा प्रोत्साहित करने में **श्री राजीव गर्ग, लक्ष्मी बुक डिपो, भिवानी** का विशेष योगदान है। उन्होंने यह पुस्तक लिखने के लिए उत्साहित ही नहीं किया वरन् इसे प्रकाशित करने का भी आश्वासन दिया।

लेखक का यह प्रथम प्रयास है, इसलिए यहाँ-वहाँ गलतियाँ रहना स्वाभाविक है। तथ्यों में भी त्रुटियों स्वाभाविक है। लेखक इन सबके के लिए क्षमा प्रार्थी है।

पुस्तक के पाठकों से नम्र निवेदन है कि वे अपने अमूल्य सुझावों से लेखक को अनुग्रहीत करेंगे।

यह पुस्तक सभी पाठकों के लिए अधिक से अधिक उपयोगी सिद्ध हो, ऐसी परमपिता परमेश्वर के श्री चरणों में प्रार्थना है।

श्रीमती निर्मल गुप्ता को समर्पित,

डॉ. कृष्ण कुमार
चरखी दादरी

SYLLABUS

KURUKSHETRA UNIVERSITY, KURUKSHETRA & CH. DEVI LAL UNIVERSITY, SIRSA

YOGA EDUCATION

[Paper-III-B, Opt. (ii), Theory]

Time : 1½ hours] *[Maximum Marks : 30*

1. Philosophy, Psychology and Kinds of Yoga.

(a) Philosophy of Yoga : Goals of life and yoga; fundamental concepts of common to all schools of India philosophy; the Triguna, the concept of Prakriti, Purusha-Vishesha (Ishwar) and their relation-ships; its meaning and kinds of smadhi.

(b) Psychology of Yoga : Chitta (mind) and the methods of Chitta control; Pratyahara Dharana and Dhyana.

(c) Kinds of Dhyana : Sthuula, jyotiry and sukshama, nirmal Chitta and the final goal.

2. Socio-moral Base Classification and Yogic Diet.

(a) Socio-moral base of Yoga : The five YAMAS and the Five NIYAMAS, the universal code of socio-moral restraints and personal observances leading to ideal adjustments in social and personal life.

(b) Classification of Yoga : Raja Yoga (Ashtang Yoga), Hatha Yoga, Sankhya Yoga, Bhakti Yoga and Matra Yoga.

(c) Yogic diet and its application in modern context.

❐

SYLLABUS

MAHARISHI DAYANAND, UNIVERSITY, ROHTAK

YOGA EDUCATION

[Paper-III-B, Opt. (ii), Theory]

OBJECTIVES

1. To develop awareness about philosophy of Yoga.
2. To develop awareness about psychology of Yoga.
3. To develop awareness about socio-moral base of Yoga, classification of yoga and yogic diet.

THEORY

Time : 1½ hours] *[Maximum Marks : 30*

1. **Philosophy, Psychology and Kinds of Yoga.**
   (a) Philosophy of Yoga : Goals of life and yoga; fundamental concepts of common to all schools of India philosophy; the Triguna, the concept of Prakriti, Purusha-Vishesha (Ishwar) and their relation-ships; its meaning and kinds of smadhi.
   (b) Psychology of Yoga : Chitta (mind) and the methods of Chitta control; Pratyahara Dharana and Dhyana.
   (c) Kinds of Dhyana : Sthuula, Jyotiry and Sukshama, Nirmal Chitta and the final goal.

2. **Socio-moral Base Classification and Yogic Diet.**
   (a) Socio-moral base of Yoga : The five YAMAS and the Five NIYAMAS, the universal code of socio-moral restraints and personal observances leading to ideal adjustments in social and personal life.
   (b) Classification of Yoga : Raja Yoga (Ashtang Yoga), Hatha Yoga, Sankhya Yoga, Bhakti Yoga and Matra Yoga.
   (c) Yogic diet and its application in modern context.

PRACTICAL WORK

Time : 1½ hours] *[Maximum Marks : 20*

1. Participation in five Asanas from teh following :
   Shavasana, Sarvangasana, Halasana, Passchimotana, Bhujangasana, Shalabhasana, Dhanurasana, Chakrasanas, Vajrasana, Gomukhasana, Matusyana, Janushirasana, Ardhmatayendrasana, Padasana and Shirshasana.
2. Preparing a work book (project reports) of the selected five asanas.

□□

Contents

1

योग : अर्थ तथा महत्त्व
[Yoga : Meaning and Importance]

❖ भूमिका (Introduction)

भारत ऋषि-मुनियों की भूमि है। प्राचीन काल में संत, महात्मा, ऋषि, मुनि हजारों साल लम्बा जीवन जीते थे। लम्बी आयु के साथ-साथ वे स्वस्थ जीवन व्यतीत करते थे। उनके लम्बे और स्वस्थ जीवन का रहस्य था—योग, साधना तथा संयम।

योग एक दर्शन है। यह जीवन को सम्पूर्ण रूप से देखने की दृष्टि देता है। इसमें शरीर की उपेक्षा नहीं है, वरन् उसे सशक्त बनाने पर जोर दिया गया है। स्वस्थ शरीर के बिना साधना नहीं हो सकती। इसलिए कहा जाता है **"शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्"** शरीर निश्चय ही सबसे पहला धर्म का साधन है।

गरुड़ पुराण में शरीर के दो रूप बताए गए हैं—स्थूल शरीर तथा सूक्ष्म शरीर। स्थूल शरीर विभिन्न धार्मिक क्रियाओं से यहीं समाप्त हो जाता है। कष्ट तथा सुख सूक्ष्म शरीर को भोगने पड़ते हैं।

योग में शरीर शब्द को स्थूल शरीर तक सीमित नहीं किया जाता है। इसमें 'सूक्ष्म शरीर' तथा 'कारण शरीर' दोनों का समावेश है। इनका स्वस्थ होना अर्थात् रोगमुक्त होना अत्यन्त आवश्यक है।

'साम्य की स्थिति ही योग साधना का मूलमन्त्र तथा साध्य है।'

प्रत्येक व्यक्ति स्वस्थ रहना चाहता है परन्तु इस भौतिक युग में भौतिक साधनों को जुटाने में वह स्वास्थ्य की ओर ध्यान ही नहीं दे पाता। स्वस्थ रहने के लिए वह स्वास्थ्य केन्द्रों, चिकित्सकों तथा ओषधियों पर निर्भर रहने के लिए विवश हो गया है। तनावपूर्ण जीवन से मुक्ति पाने के लिए अंग्रेजी दवाइयों पर निर्भरता बढ़ती जा रही है। वास्तव में स्वस्थ रहने के लिए हमें किसी स्वास्थ्य केन्द्र की आवश्यकता नहीं है और न ही किसी चिकित्सक अथवा ओषधि की आवश्यकता है। जिस चीज की आवश्यकता है उसे करने के लिए हमारे पास समय नहीं है। बिना धन खर्च किए यदि आप स्वस्थ तथा लम्बा जीवन जीना चाहते हैं तो इसका सरल उपाय है—'योग'। योग सही अर्थों में स्वस्थ की परिभाषा देती है। ऐलापैथी (अंग्रेजी दवाइयाँ) रोग के मूल कारण को न पकड़कर शीघ्र आराम देता है जबकि योग रोग के मूल कारण को पकड़ता है तथा उसे जड़ सहित नष्ट करने का प्रयास करता है।

योग का सम्बन्ध बाह्य शरीर से ही नहीं वरन् आन्तरिक शरीर से भी है। शरीर के साथ-साथ मन का स्वस्थ होना भी अनिवार्य है। शरीर के बाह्य अंग तभी पुष्ट होंगे यदि शरीर के आन्तरिक अंग पुष्ट हैं। यदि किसी कारण आप के शरीर को किसी तरह के रोग ने दबोच लिया है तो यह कहना तो निरर्थक होगा कि आप कोई ओषधि न लें। परन्तु ओषधि तो तभी कार्य करती है यदि अंदर का शरीर सक्रिय है। हृदय, फेफड़े, पाचन तन्त्र, ग्रन्थियाँ आदि अपना कार्य सुचारु रूप से करती हैं। यदि ओषधि से ही स्वास्थ्य प्राप्त होता तो कोई व्यक्ति अस्वस्थ ही न हो। विज्ञान ने सभी क्षेत्रों में विकास किया है। रोगों के उपचार के लिए नये-नये साधन विकसित हुए हैं। नई-नई ओषधियाँ बाजार में आ रही हैं, परन्तु आश्चर्य है कि इतनी ओषधियों तथा आविष्कारों के पश्चात् भी रोगमुक्त होने के स्थान पर नये-नये रोग पैदा हो रहे हैं। इन सबका यह अर्थ कदापि नहीं है कि विज्ञान के उपचार सम्बन्धी आविष्कार निरर्थक हैं और रोग होने पर ओषधि न ली जाए। इसके विपरीत यदि केवल

ओषधि पर ही निर्भर न रहकर स्वास्थ्य के वास्तविक नियमों तथा सिद्धान्तों का पालन करें तो शरीर को अधिक स्वस्थ बनाये रखने में सफलता प्राप्त हो सकती है।

योग ही वर्तमान भौतिक युग में एक ऐसा सरल साधन है जो व्यक्ति को शारीरिक तथा मानसिक रूप से स्वस्थ रखने में सहायक हो सकता है। योग के माध्यम से शरीर तथा मन दोनों सबल बनते हैं।

योग आत्मविद्या का बीज है। उसकी साधना से चेतना पर छाया आवरण, दूर होता है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन रहता है। स्वस्थ मन से निर्मल भावना का विकास होता है। निर्मल भावना से व्यक्ति का ही नहीं वरन् सारे राष्ट्र तथा मानवता का विकास होता है। योग व्यक्ति की चेतना को जागृत करता है तथा उसके मन में निर्मल भाव पैदा करता है।

❖ योग का स्वरूप तथा परिभाषा (Character and Definition of Yoga)

योग शब्द का वर्णन वेदों, उपनिषदों, गीता तथा पुराणों में अति प्राचीन काल से होता आया है। विदेशी शासन तथा गुलामी के कारण हम पर पश्चिमी सभ्यता का रंग चढ़ गया और हम योग शक्ति तथा महत्त्व को भूल गये। स्वतन्त्रता के पश्चात् हमारे ऋषि-मुनियों ने योग के महत्त्व को जन-जन तक पहुँचाना आरम्भ कर दिया है जिससे भारतीय दर्शन की आधुनिक पीढ़ी को जानकारी मिल सके। इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि भारतीय दर्शन में योग एक अति महत्त्वपूर्ण शब्द है। आत्मदर्शन एवं समाधि से लेकर कर्म क्षेत्र तक योग का व्यापक व्यवहार हमारे शास्त्रों में हुआ है।

योग शब्द की निष्पत्ति **'युज्'** धातु से हुई है जिसका अर्थ है **युक्त करना, जोड़ना** अथवा **मिलाना** अर्थात् संयमपूर्वक साधना करते हुए आत्मा को परमात्मा के साथ जोड़कर समाधि का आनन्द लेना योग है।

योग के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने समय-समय पर अपने दृष्टिकोण के अनुसार परिभाषाएँ दी हैं जिनसे योग के सम्बन्ध में धारणा और भी स्पष्ट हो जाती है—

1. महर्षि व्यास योग का अर्थ समाधि बताते हैं।
2. योग दर्शन के उपदेष्टा महर्षि पतंजलि के अनुसार—**'योगश्चित्त वृत्तिनिरोधः'** 'मन की वृत्तियों (रूप, रस, गंध, स्पर्श तथा शब्द के लोभ) को रोकना योग है, अर्थात् चित्त की चंचलता का दमन ही योग है'।
3. महर्षि याज्ञवल्क्य के अनुसार—**'संयोगः योग इत्युक्तः जीवा नः परमात्सनः'** 'जीवात्मा तथा परमात्मा के मिलन का नाम योग है'।
4. भारतीय वाङ्मय में गीता का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। ारतीय सन्तों ने गीता के योग का प्रचार विश्व भर में किया है। भगवान् श्रीकृष्ण को योगेश्वर कहा गया है।
   भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा योग का अर्थ समझाते हुए कहा गया है **'समत्वं योग उच्यते'**—'समत्व योग कहलाता है'। अर्थात् जीवात्मा तथा परमात्मा का एकाकार होना ही योग है। छठे अध्याय में कहा गया है **'योगः कर्मसु कौशलम्'**—'कर्मों में कुशलता योग है।' अर्थात् प्रत्येक कार्य को कुशलतापूर्वक सम्पन्न करना ही योग है।
5. जैनाचार्यों के अनुसार जिन साधनों से आत्मा की शुद्धि तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है, वह योग है।
6. जैन दर्शन में मन, वाणी तथा शरीर की वृत्तियों को भी कर्म योग कहा गया है।
7. आधुनिक युग के योगी श्री अरविन्द के अनुसार 'परमदेव के साथ एकत्व की प्राप्ति के लिए प्रयास करना तथा इसे प्राप्त करना ही सब योगों का स्वरूप है।'
8. वेदान्त के अनुसार, "जीव तथा आत्मा के मिलन की संज्ञा ही योग है।"
9. योग वशिष्ठ के अनुसार, "संसार सागर से पार होने की युक्ति को ही योग कहा जाता है।"
10. स्वामी शिवानन्द सरस्वती के शब्दों में, 'योग उस साधना की प्रणाली का नाम है जिसके अन्तर्गत जीवात्मा तथा परमात्मा के एकतव का अनुभव होता है एवम् जीवात्मा का परमात्मा के साथ ज्ञानपूर्वक संयोग होता है।'

11. भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति स्वर्गीय डॉ. राधाकृष्णन के शब्दों में, 'योग वह प्राचीन पथ है जो व्यक्ति को अन्धेरे से प्रकाश में लाता है।'

योग की ऊपर वर्णित परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि–

1. योग से आत्मा तथा परमात्मा का मिलन सम्भव होता है। योग दोनों के मिलन का साधन है।
2. मन बड़ा चंचल है परन्तु योग मन की चंचलता पर रोक लगाता है।
3. मन को शुद्ध करने तथा बुराइयों पर विजय प्राप्त करने में योग की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।
4. योग से जीवन-क्षेत्र के विभिन्न कार्यों को कुशलतापूर्वक सम्पन्न करने की शक्ति प्राप्त होती है।
5. यदि व्यक्ति प्रयास करे तो वह योग के माध्यम से अनंत शक्तियों का स्वामी बन सकता है।
6. अज्ञानता दूर करके ज्ञान चक्षुओं को खोलने में योग की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।
7. व्यक्ति योग के माध्यम से अपने जीवन में सफलता प्राप्त कर सकता है।
8. किसी भी कार्य को पूरा करने के लिए एकाग्रता अनिवार्य है। मन की एकाग्रता से ही ईश्वर की प्राप्ति सम्भव है। योग व्यक्ति की एकाग्रता में सहायक होता है। इसके द्वारा व्यक्ति समाधि की स्थिति को प्राप्त करता हुआ परमात्मा में लीन होकर मोक्ष प्राप्त कर सकता है।

योग की ऊपर वर्णित विशेषताओं तथा गुणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि योग का केवल धार्मिक तथा दार्शनिक आधार ही नहीं है वरन् शारीरिक, भौतिक तथा वैज्ञानिक आधार भी है। योग का सम्बन्ध स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों शरीरों से है।

यौगिक क्रियाएँ स्थूल शरीर को स्वस्थ, सबल तथा शक्तिशाली बनाती हैं। **योग से ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों को पूरी क्षमता से कार्य करने की अपार शक्ति प्राप्त होती है।** नियमित योगाभ्यास तथा षट्कर्म शरीर के अन्दर की गन्दगी को साफ कर देते हैं। बाहर की गन्दगी को दूर करने के लिए जिस तरह हम विभिन्न प्रकार के साबुनों तथा अन्य साधनों का प्रयोग करते हैं जिससे बाहर की गंदगी साफ हो जाये उसी तरह योग अन्दर की गन्दगी को साफ करके मन को स्वच्छ तथा निर्मल बनाता है। मनुष्य विषय वासना में लिप्त रहकर शरीर को नष्ट करने में लगा रहता है परन्तु योग से उसे विषय-वासना से मुक्ति मिल जाती है। परिणामस्वरूप व्यक्ति की सारी शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक शक्तियाँ अपनी प्रगति की ऊँचाइयों को छूने में तल्लीन हो जाती हैं तथा वह धीरे-धीरे मोक्ष प्राप्त कर ईश्वर में एकाकार होने में सफलता प्राप्त कर लेता है।

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का कोई-न-कोई लक्ष्य अथवा साध्य होता है। अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसे कोई-न-कोई साधन अवश्य अपनाना पड़ता है। शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक शक्ति प्राप्त करने के लिए, जिससे जीवन में सुख, सन्तोष तथा आनन्द प्राप्त हो सके, सबसे सरल उपाय अथवा साधन योग है। योग से मनुष्य अपने अन्तिम लक्ष्य अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करने में सफल होकर इस आवागमन के चक्र से सदैव के लिए छुटकारा पाकर ईश्वर के चरणों में स्थान प्राप्त करने में सफल हो सकता है। योग से आत्मा तथा परमात्मा का मिलन सम्भव हो सकता है।

❖ योग के सम्बन्ध में मिथ्या धारणाएँ (Misconceptions about Yoga)

आज हम अपनी सभ्यता तथा संस्कृति को भूल गये हैं। उदाहरणस्वरूप हम पहली जनवरी को 'Happy New Year' कहते हैं। नव वर्ष की बधाइयों का आदान-प्रदान करते हैं परन्तु हम अपने नव वर्ष को भूल गये हैं। अधिकांश भारतीयों को इसकी जानकारी नहीं है। इसी प्रकार हम योग के महत्त्व को भी भूल गये। प्राचीन भारत में जैसा कि मैंने आरम्भ में बताया है कि इस देश के लोग योग के कारण ही हजारों वर्षों का लम्बा तथा स्वस्थ जीवन व्यतीत करते थे। पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव के कारण योग लुप्त-सा हो गया था तथा योग के सम्बन्ध में बहुत-सी मिथ्या अवधारणाएँ स्थापित हो गई थीं। प्रसन्नता का विषय है कि स्वामी रामदेव जी जैसे अनेक संत-महात्मा योग के सम्बन्ध में मिथ्या अवधारणाओं को दूर करने में ही नहीं लगे हुए वरन् योग के महत्त्व की जानकारी जन-जन तक पहुँचा रहे हैं।

योग के सम्बन्ध में मिथ्या अवधारणाएं निम्नलिखित हैं—

1. योग केवल योगासन की क्रियाओं का नाम नहीं है। सर्वसाधारण योग का अर्थ केवल आसनों से लेता है। यह अवधारणा अज्ञानता के कारण है। महर्षि पतंजलि ने अपने अष्टांग योग में यह स्पष्ट किया है कि आसन विभिन्न आठ अंगों में एक अंगमात्र है, पूर्ण योग नहीं है। योग शरीर को साधने का साधन है। सोना भट्ठी में तपकर कुन्दन बनता है। योग शरीर को साधने की भट्ठी है। ईश्वर के साथ एकीकार करना व्यक्ति का अन्तिम लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति में योग का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

   अतः योग को मात्र योग-आसनों तक सीमित रखना भारी भूल तथा भ्रान्ति है जिसे दूर करना बहुत अनिवार्य है।
2. बहुत से लोग इस भ्रान्ति को पाले हुए हैं कि योग जनसाधारण के लिए नहीं है वरन् साधु-सन्यासी तथा संत महात्माओं के लिए है, जो अपनी तपस्या तथा भक्ति के लिए योग को अपनाते हैं। खिलाड़ी अपनी शारीरिक क्षमता के लिए योग का सहारा लेते हैं। इस प्रकार की मिथ्या अवधारणा को समाप्त करने की आवश्यकता है। स्वस्थ शरीर तथा मन सभी चाहते हैं, कोई एक विशेष वर्ग नहीं।
3. यह भी एक मिथ्या अवधारणा है कि योग के लिए विशेष प्रकार के वस्त्र, रहन-सहन तथा खान-पान की आवश्यकता होती है। साधारण व्यक्ति साधारण परिस्थितियों में भी योग का सहारा ले सकता है। योग तो दैनिक दिनचर्या का ही एक भाग हो सकता है। योग के लिए किसी भी ऐसी विशेष वस्तु की आवश्यकता नहीं है जिसे साधारण व्यक्ति जुटा न सके।
4. कुछ लोग योग में आयु को बाधक मानते हैं। अधिक आयु के कारण योग सम्भव नहीं है। योग का अभ्यास तो शुरू से ही किया जाना चाहिए था परन्तु यह भी केवल एक भ्रान्ति है। ज्ञान प्राप्त करने में आयु कभी भी बाधक नहीं होती। दृढ़ निश्चय से किसी भी आयु में कोई भी कार्य किया जा सकता है। यह तथ्य योग के सम्बन्ध में भी लागू होता है। योग साधना के लिए आयु का विशेष बन्धन नहीं है। किसी भी आयु में सुविधानुसार योग क्रिया आरम्भ की जा सकती है।
5. कुछ लोगों में यह भी मिथ्या भ्रान्ति है कि योग केवल पुरुषों के लिए है, महिलाओं के लिए नहीं। योग के लिए कोई लिंग बन्धन नहीं है। पुरुष तथा महिला अपनी सुविधानुसार योग सुचारू रूप से कर सकते हैं।
6. कुछ लोग यह मानते हैं कि यौगिक क्रियाएँ बहुत जटिल तथा तकनीकी स्वरूप की हैं जिसके कारण वे यौगिक क्रियाएँ नहीं कर सकते हैं। इन क्रियाओं के लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। प्रशिक्षण के अभाव में इनसे लाभ कम तथा हानि अधिक होने की सम्भावना बनी रहती है। वास्तव में डराने का ज्यादा प्रयास किया जाता है। यदि योग की किसी क्रिया से शरीर पर कोई विपरीत प्रभाव पड़ता है तो उसे तत्काल बंद करके किसी विशेष अथवा अनुभवी की सलाह ली जा सकती है। डर कर योग न करना एक बड़ी भूल है।
7. आधुनिक शिक्षित वर्ग तथा पश्चिमी सभ्यता में पला-बढ़ा वर्ग योग को पुरातन पंथियों, अनपढ़ों तथा पिछड़े व्यक्तियों के करने की चीज मानता है। अपने आपको सभ्य, सुसंस्कत तथा प्रगतिशील मानने वाले लोग योग को कोई महत्त्व नहीं देते। परन्तु वर्तमान भौतिकवादी युग में अधिकांश लोग तनाव भरा जीवन व्यतीत करते हैं। धीरे-धीरे ये लोग भी योग के महत्त्व को समझेंगे क्योंकि योग एक आदर्श जीवन शैली है जिसकी आवश्यकता उन सभी को है जो एक सुखी एवम् शान्त जीवन व्यतीत करना चाहते हैं तथा तनाव भरे जीवन से मुक्ति चाहते हैं। योग एक माध्यम है, एक साधन है जिससे शरीर तथा मन दोनों पर नियन्त्रण रखकर आध्यात्मिक शिखर पर पहुंचने में सफलता प्राप्त की जा सकती है। यह तभी सम्भव हो सकता है यदि योग के सम्बन्ध में मिथ्या अवधारणाएँ समाप्त हो जायें।

योग साधना अपने आप में एक ऐसा मार्ग है जिस पर चलकर व्यक्ति आध्यात्मिकता के शिखर पर आसीन हो सकता है।

महर्षि पतंजलि ने **योग के आठ अंग** यथा—**नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि** तथा **यम** बतलाएँ हैं। ये सभी अंग व्यक्ति को शारीरिक धरातल से ऊपर उठाकर मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं।

स्वस्थ शरीर तथा स्वस्थ मन तथा सरल आत्मा से मनन करने पर ही व्यक्ति अपने अन्तिम लक्ष्य अर्थात् मोक्ष तथा ईश्वर में विलीन होने की कामना पूर्ण कर सकता है। यह सभी योग साधना से ही सम्भव है।

भारत के ऋषियों की मान्यताओं के अनुसार योग का तात्पर्य स्व-चेतना तथा परा-चेतना के मुख्य केन्द्र परम चैतन्य प्रभु के साथ मिल जाना है। सम्यक् बोध से रागोपहति होने पर जब व्यक्ति वैराग्य के भाव से अभिभूत होता है तब वह सभी क्षणिक भावों, वृत्तियों से ऊपर उठकर आत्मसत्ता के सम्पर्क में आता है।

योग शैक्षिक दृष्टि से भी पर्याप्त महत्त्व रखता है। भारत की वर्तमान युवा पीढ़ी संस्कार हीन होती जा रही है। शिक्षा संस्थाएँ केवल सस्ते दर्जे के बाबू पैदा करने की मशीन बनकर रह गई है। दिग्भ्रमित युवा वर्ग को इस पश्चिमी सभ्यता की दलदल से निकालने का सरल तथा सुलभ उपाय है 'योग'।

नैतिक तथा आध्यात्मिक गुणों को विकसित करने में योग-साधना का बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान हो सकता है।

योग के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए सरकार को चाहिए कि शिक्षा संस्थाओं में योग की शिक्षा अनिवार्य की जाए, जिससे देश की युवा पीढ़ी को शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से सबल तथा शक्तिशाली बनाया जा सके।

❖ योग के विभिन्न प्रकार
(Kinds of Yoga)

दत्तात्रेय योगशास्त्र तथा योगराज उपनिषद् में योग के चार महत्त्वपूर्ण प्रकार माने गये हैं। योगतत्त्वोपनिषद् में इन चार योगों का लक्षण इस प्रकार किया गया है—

1. **मन्त्रयोग (Mantra Yoga)**—योग में सबसे महत्त्वपूर्ण मन्त्रयोग है। 12 वर्षों तक विधिपूर्वक जपने से अणिमा आदि सिद्धियाँ साधक को प्राप्त हो जाती हैं।
2. **लय योग (Laya Yoga)**—ईश्वर का ध्यान करने के लिए साधु-सन्यासी बनना अनिवार्य नहीं है। न ही जंगलों तथा पहाड़ों में विचरने की आवश्यकता है। गुफाओं तथा कन्द्राओं में बैठना भी अनिवार्य नहीं है। इसके विपरीत दैनिक क्रियाओं को करते हुए सदैव ईश्वर का ध्यान करना लय योग है।
3. **हठ योग (Hatha Yoga)**—विभिन्न मुद्राओं, आसनों, प्राणायाम तथा बन्धों के अभ्यास से शरीर को निर्मल तथा मन को एकाग्र करना हठ योग कहलाता है।
4. **राज योग (Raja Yoga)**—यम, नियम आदि के अभ्यास से चित्त को निर्मल कर, ज्योतिर्मय आत्मा का साक्षात्कार करना राज योग कहलाता है। राज का अर्थ दीप्तिमान, ज्योतिर्मय तथा योग का अर्थ समाधि तथा अनुभूति है।

योग राज उपनिषद् में चार तरह के योगों के अतिरिक्त गीता में तीन तरह के योगों का वर्णन किया गया है—ध्यान योग, सांख्य योग तथा कर्म योग। गीता में कर्म योग को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है।

यौगिक भेदों के विषय में जब हम शास्त्रों पर दृष्टिपात करते हैं तो यही निष्कर्ष निकलता है कि आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में जितने भी उपाय अथवा विधियों का वर्णन किया गया है, उन सबको योग का नाम दिया जाता था।

❖ योग का शरीर पर प्रभाव
(Physical Effects of Yoga)

योग का स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों प्रकार के शरीर पर प्रभाव पड़ता है। योग से केवल बाह्य शरीर ही पुष्ट नहीं होता वरन् आत्मिक शक्ति भी बढ़ती है। यदि मन स्वस्थ है तो ही शरीर स्वस्थ होगा। इसीलिए कहा जाता है कि **'मन के जीते जीत है, मन के हारे हार'**। वास्तविक शक्ति बाह्य शरीर की नहीं वरन् अन्दर के मन की है।

योग का अर्थ ही है अपनी चेतना अर्थात् अस्तित्त्व का बोध, अपने अन्दर को पहचानो। अपने अन्दर निहित शक्तियों को विकसित करके परम चैतन्य आत्मा का साक्षात्कार तथा पूर्ण आनन्द की प्राप्ति।

अष्टांग योग अर्थात् आठ यौगिक क्रियाओं से व्यक्ति को सुप्त चेतना शक्ति का विकास होता है, सुप्त (मरे हुए) तन्तुओं का पुनर्जागरण होता है तथा नए तन्तुओं (कोशिकाओं) का निर्माण होता है।

योग की सूक्ष्म क्रियाओं द्वारा सूक्ष्म स्नायु तन्त्र को चुस्त किया जाता है जिससे उनमें ठीक प्रकार से रक्त संचार होता है।

योग से रक्त संचार पूर्ण रूप से सम्यक् रीति से होने लगता है।

शरीर विज्ञान का यह सिद्धान्त है कि शरीर के संकोचन तथा प्रसारण से उसकी शक्ति का विकास होता है तथा रोगों से मुक्ति मिलती है।

आसन तथा प्राणायामों से शरीर की ग्रन्थियों तथा मांसपेशियों में कर्षण, विकर्षण, आकुंचन-प्रसारण तथा शिथिलीकरण की क्रियाओं द्वारा उनका आरोग्य बढ़ता है। रक्त को वहन करने वाली धमनियाँ तथा शिराएँ भी स्वस्थ हो जाती हैं।

आसन तथा अन्य यौगिक क्रियाओं से बहुत से रोग भी दूर हो जाते हैं।

यौगिक क्रियाओं से पाचन तन्त्र ठीक होता है। पाचन तन्त्र की स्वस्थता पर पूरे शरीर की स्वस्थता निर्भर करती है। अधिकांश बीमारियों का मूल कारण पाचन तन्त्र की अस्वस्थता है। हृदय रोग जैसी भयंकर बीमारी का मूल कारण भी पाचन तन्त्र की खराबी है।

योग से पाचन तन्त्र पूर्ण रूप से स्वस्थ हो जाता है जिससे सारा शरीर स्वस्थ, हल्का तथा स्फूर्ति-युक्त बन जाता है।

यौगिक क्रियाओं से फेफड़ों में पूर्ण स्वच्छ वायु का प्रयोग होता है। परिणामस्वरूप फेफड़े स्वस्थ होते हैं। इससे श्वास की बीमारियों से छुटकारा मिलता है।

फेफड़ों में स्वच्छ वायु जाने से हृदय को बल मिलता है।

यौगिक क्रियाओं से पाचन शक्ति बढ़ती है, भार कम होता है तथा शरीर स्वस्थ सुडौल तथा सुन्दर बनता है।

योग स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर अर्थात् तन और मन दोनों पर प्रभाव डालता है। योग से इन्द्रियों का दमन होता है।

योग से व्यक्ति अविद्या के अन्धकार से निकलकर अपने दिव्यस्वरूप ज्योतिर्मय, आनन्दमय, शान्तिमय, परम चैतन्य आत्मा तथा परमात्मा तक पहुँचने में सफल हो सकता है।

अन्त में कहा जा सकता है कि योग पथ का सहारा लेकर शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक उन्नति को प्राप्त करते हुए अपने अन्तिम लक्ष्य ईश्वर-साक्षात्कार अर्थात् पूर्ण आनन्द की अनुभूति प्राप्त कर सकते हैं। सत्य, चित्त, आनन्द ही सच्चिदानन्द है।

योग आत्म-विद्या का बीज है। उसकी साधना से चेतना पर छाया जो आवरण है, वह दूर होता है। योग से शरीर स्वस्थ तथा शक्तिशाली बनता है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का वास होता है। स्वस्थ मन निर्मल भावनाओं को जन्म देता है। भावना की निर्मलता ध्यान को स्थिर बनाती है। स्थिर ध्यान से आत्मा अनावृत होती है। चेतना जागृत करने के लिए शरीर की सुखपूर्वक स्थिरता अनिवार्य है। महर्षि पतंजलि के शब्दों में, "स्थिर सुखमासनम्"। भगवान् महावीर ने इसे 'कायगुप्ति' अर्थात् देह का संयम कहा है।

योगासन योगियों द्वारा खोजा गया अनूठा स्वास्थ्य-विज्ञान है। योग जीने की कला है।

❖ योग का महत्त्व तथा उपयोगिता (Importance and Use of Yoga)

विश्व के सभी व्यक्ति सुख तथा शान्ति चाहते हैं परन्तु आश्चर्य है कि आज विश्व में सुख तथा शान्ति के स्थान पर अशान्ति तथा दुःख बढ़ते जा रहे हैं। वर्तमान भौतिकवादी युग ने जहाँ व्यक्ति को शारीरिक सुख तथा सुविधाएँ प्रदान की हैं वहाँ दूसरी ओर मानसिक तनाव तथा अशान्ति भी बढ़ी है। व्यक्ति, राष्ट्र ही नहीं

पूर्ण विश्व इस बात पर सहमत है कि विश्व में शान्ति स्थापित होनी चाहिए। यह शान्ति कैसे स्थापित हो इस बात को लेकर सभी असमंजस की स्थिति में हैं।

विश्व में ऐसे सम्प्रदायों, मत-पन्थों तथा धार्मिक गुरुओं की भरमार है जो सभी दावा करते हैं कि उनके द्वारा निर्दिष्ट पथ पर चलकर ही विश्व में सुख-शान्ति सम्भव है। वास्तविकता इससे भिन्न है। इन्हीं मत-पन्थों तथा तथाकथित धर्मों की एकच्छत्र स्थापना हेतु खूनी संघर्ष हुए हैं। एक मत के अनुयायियों ने अन्य धर्म के लोगों का रक्त बहाया है। इनके आपसी संघर्ष में निर्दोष लोगों का रक्त भी बहा है। ऐसी स्थिति में क्या कुछ ऐसे नियम, मान्यताएँ तथा मर्यादाएँ हैं जिन पर विश्व के सभी व्यक्ति चल सकें? जिससे किसी भी व्यक्ति तथा राष्ट्र की एकता तथा अखण्डता खण्डित न हो तथा किसी व्यक्ति विशेष का व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्ध न हो। जिसे प्रत्येक व्यक्ति अपनाकर सुख-शान्ति तथा आनन्द का जीवन व्यतीत कर सके।

इन सभी प्रश्नों का उत्तर 'हाँ' में है। एक ऐसा पथ है जिस पर निर्भय होकर पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ चला जा सकता है तथा जीवन में सुख, शान्ति तथा आनन्द प्राप्त किया जा सकता है और वह पथ है योग का। योग जीने की कला है। योग जीवन को अच्छी तरह समझने तथा उसे अच्छी तरह जीने की कला में पारंगत करता है। योग जीवन के सभी पक्षों यथा—शारीरिक, मानसिक, नैतिक तथा सामाजिक को प्रभावित करता है।

निम्नलिखित तथ्यों से योग का महत्त्व तथा उपयोगिता सिद्ध हो जाती है।

❖ शारीरिक महत्त्व (Physical Importance)

प्रत्येक व्यक्ति की यह इच्छा होती है कि उसका शरीर हृष्ट-पुष्ट हो। उसके अंगों-प्रत्यंगों की कार्य-क्षमता में वृद्धि हो। वह एक लम्बा जीवन व्यतीत करे। वह नीरोग तथा ओजस्वी और कांतिमय बना रहे। यह सब केवल योग साधन से सम्भव हो सकता है।

1. प्राणायाम से फेफड़ों के फैलने तथा सिकुड़ने की शक्ति में वृद्धि होती है, जिससे अधिक से अधिक ऑक्सीजन अन्दर जाती है। परिणामस्वरूप रक्त-संचार तथा रक्त-शुद्धि का कार्य अच्छी तरह होता है।
2. यौगिक क्रिया से श्वास क्रिया को नियन्त्रित करके श्वास को स्थिर तथा शांत रखने में सहायता मिलती है।
3. इससे हृदय की गति को स्वाभाविक बनाने में मदद मिलती है।
4. पाचन क्रिया ठीक रहती है। पाचन क्रिया के ठीक रहने से बहुत-सी बीमारियों से छुटकारा मिल जाता है।
5. वर्तमान में रीढ़ की हड्डी की बीमारी बढ़ती जा रही है। प्राणायाम से रीढ़ की हड्डी तथा मांसपेशियों के उचित गठन तथा नियन्त्रण में बहुत मदद मिलती है। इससे हड्डियों तथा मांसपेशियों में कड़ापन नहीं आता तथा उनमें स्वाभाविक लचीलापन बना रहता है। व्यक्ति चुस्त तथा फुर्तीला बना रहता है। व्यक्ति को लम्बी आयु तक युवा बनाए रखने में मांसपेशियों तथा रीढ़ की हड्डी का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है।
6. योग साधना शरीर के तापक्रम को सामान्य तथा सहज बनाए रखती है। इससे पसीने की दुर्गन्ध को रोकने में भी सहायता मिलती है।
7. योग साधना से शरीर में विभिन्न रस-द्रव्यों का निर्माण करने वाली ग्रन्थियों को ठीक प्रकार नियन्त्रित करने में सहायता मिलती है। इससे ग्रन्थियाँ पर्याप्त रूप से सजग तथा क्रियाशील रहती हैं।
8. प्राणायाम शरीर के आंतरिक अवयवों तथा प्रणालियों की पूरी तरह सफाई रखने के कार्य में भी मददगार होता है। रक्त की कोशिकाओं की सफाई से लेकर श्वसन तथा पाचन तन्त्रों की आन्तरिक सफाई तथा अनावश्यक द्रव्यों को बाहर निकालने के कार्य में भी मदद मिलती है।
9. इससे शरीर की रोग-नाशक तथा कीटाणुओं से लड़ने की शक्ति बढ़ती है। रोग पैदा करने वाले हानिकारक पदार्थों को शरीर में इकट्ठा होने से रोककर व्यक्ति रोग-मुक्त रहता है।

10. योग-साधना के रूप में अपनाई गई उपचार पद्धति से बहुत से रोगों से छुटकारा मिलने की सम्भावना बनी रहती है।
11. शारीरिक थकान को दूर करने, शक्ति प्राप्त करने तथा नीरोग और स्वस्थ रहकर दीर्घायु प्राप्त करने के कार्य में यौगिक क्रियाओं का बहुमूल्य योगदान रहता है।

❖ मानसिक महत्त्व (Mental Importance)

वर्तमान भौतिक युग में एक ओर सुख-सुविधाओं में वृद्धि हुई है तो दूसरी ओर मानसिक तनाव में भी वृद्धि हुई हैं। मानसिक तनाव के कारण लोग अनिद्रा के शिकार होते जा रहे हैं। लोग अंग्रेजी दवाईयों पर निर्भर होते जा रहे हैं। इस भागम-भाग, तनावपूर्ण तथा अशान्त जीवन से मुक्त होने का बहुत सरल तथा सीधा उपाय है 'योग'।

योग के माध्यम से जैसा पहले बताया जा चुका है शरीर ही चुस्त-दुरस्त और स्वस्थ नहीं रहता वरन् योग मानसिक तनाव को दूर करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

योग साधना से मानसिक शक्तियों के समुचित पोषण तथा विकास के लिए उपयुक्त चेतना तथा शक्ति भी प्राप्त होती है।

मानसिक दृष्टि से प्राप्त लाभों का निम्नलिखित आधार पर अध्ययन किया जा सकता है—

1. कहा जाता है कि तन स्वस्थ तो मन स्वस्थ। योग से शरीर सुन्दर तथा बलिष्ठ बनता है। शारीरिक शक्ति के कारण सबल तथा सशक्त मस्तिष्क का प्रादुर्भाव स्वतः ही हो जाता है।
2. ज्ञानेंद्रियों के स्वस्थ, शक्तिशाली तथा क्षमता युक्त होने से उनकी ग्रहण करने की शक्ति तथा संवेदनशीलता में वृद्धि होती है तथा ज्ञान-प्राप्त में पूर्ण सक्षम बन जाती हैं।
3. योग से 'तन सुन्दर बनता है तथा मन सुन्दर बनता है'। मन में कोमल भावनाएँ जागृत होती हैं। मन में सन्तोष उत्पन्न होता है तथा तनाव से मुक्ति मिलती है।
4. यौगिक क्रियाओं से मन की चंचलता पर अंकुश लगता है। एकाग्रचित्तता तथा ध्यान की स्थिरता मानसिक शक्तियों के विकास के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि तैयार करती हैं। अभ्यास, संयम, साधना, समाधि, आसन, प्राणायाम, ध्यान आदि से इन्हें उचित पोषण मिलता है।
5. यौगिक क्रियाओं से मन का मैल साफ होता है इससे पूर्वाग्रह, मतिभ्रम तथा मानसिक विघ्नों से छुटकारा मिलता है। सत्य बोलने की प्रवृत्ति बढ़ती है। पवित्र ग्रन्थों के अध्ययन में रुचि बढ़ती है। इससे व्यक्ति को तर्क शक्ति, विचार शक्ति, कल्पना शक्ति तथा निर्णय करने की क्षमता में वृद्धि करने का पूरा अवसर प्राप्त होता है।
6. योग साधना—ग्रहण क्षमता, धारणा तथा स्मरण शक्ति की वृद्धि में सहायक होती है। योग साधना योगी की स्मृति प्रक्रिया को अच्छा बनाने में सहायता प्रदान करती है।

❖ नैतिक महत्त्व (Moral Importance)

कहा जाता है कि यदि धन गुम हो जाए तो व्यक्ति कुछ नहीं खोता, स्वास्थ्य न होने पर वह कुछ खोता है, यदि चरित्र न रहे तो वह सब कुछ खो देता है। (*If wealth is lost nothing is lost if health is lost something is lost and if character is lost everything is lost.*)

वर्तमान भौतिकवादी युग में पैसे का लालच इतना बढ़ गया है जिससे नैतिकता समाप्त हो गई है। धन के लालच में व्यक्ति तन तथा मन बेचने को तैयार रहता है। इस अनैतिक वातावरण में यदि थोड़ी बहुत आशा की किरण है तो वह है योग।

यौगिक क्रियाओं के द्वारा व्यक्ति को नैतिक रूप से ऊँचा उठाने में निम्नलिखित आधार पर सहायता मिलती है–

1. योग साधना से इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। परिणामस्वरूप व्यक्ति विषय-वासनाओं का दास न होकर उनका स्वामी बन जाता है। वह रूप, रस, गंध, स्पर्श तथा शब्दों के मोहजाल से दूर रहने में सफल हो जाता है तथा पथभ्रष्ट होने से बच जाता है।
2. व्यक्ति को नैतिक बनाने में आहार का भी बहुत योगदान होता है। योग से व्यक्ति का भोजन तथा भोजन सम्बन्धी आदतें काफी सात्त्विक तथा नियन्त्रित होती हैं। उसके आचार-विचार में बहुत अधिक सादगी, सात्त्विकता तथा अच्छाइयाँ आ जाती हैं। वह नशीली वस्तुओं तथा उनके सेवन से दूर हो जाता है। सात्त्विक भोजन से मन में निर्मलता आती है तथा तामसी भोजन से क्रोध तथा विषय वासनाओं में रुचि बढ़ती है।
3. मनुष्य अनेक बुराइयों का शिकार है। अनेक बुराइयों में सबसे महत्त्वपूर्ण बुराई क्रोध है। यदि यूं कहा जाए कि क्रोध सभी बुराईयों की जड़ है तो अनुचित नहीं होगा। क्रोध से व्यक्ति का मानसिक सन्तुलन बिगड़ जाता है तथा सोचने समझने की शक्ति तथा क्षमता समाप्त हो जाती है। क्रोध वह शैतान है जिससे ज्ञान, विवेक, बुद्धि तथा अन्य मानवीय गुण समाप्त हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में योग-साधना नैतिकता के इस महान् दुश्मन (क्रोध) के साथ-साथ ईर्ष्या, घृणा, वैमनस्य आदि पर विजय प्राप्त करने में सहायता प्रदान करती है।
4. यौगिक क्रियाओं से संवेगों पर उचित नियन्त्रण स्थापित होता है तथा भावात्मक सन्तुलन बनाए रखने की क्षमता विकसित होती है।
5. यौगिक क्रियाओं यथा–यम, नियम, साधना, संयम, समाधि के कारण सद्विचार तथा स्वभाव और आदतें पोषित तथा पल्लवित होती हैं। मन में कोमलता आने से सत्य, मृदुल भाषण, ईमानदारी, शान्ति प्रियता, प्रेम, सहयोग, सहनशीलता, सहानुभूति, सहिष्णुता आदि सभी नैतिक गुण आ जाते हैं। नैतिक मूल्यों में वृद्धि होती है तथा अनैतिक जीवन का अन्त।

❖ सामाजिक महत्त्व (Social Importance)

व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। उसके लिए समाज के बिना रहना यदि असम्भव नहीं है तो कठिन अवश्य है। व्यक्ति जो कुछ भी लेता है, समाज से लेता है। व्यक्ति के गुणों तथा अवगुणों की पहली पाठशाला परिवार है तथा अन्तिम पाठशाला समाज है। व्यक्तियों से मिलकर समाज बनता है। इसलिए जैसे व्यक्ति होंगे, वैसा ही समाज होगा। यदि व्यक्ति अच्छे हैं तो समाज भी अच्छा होगा। योग साधना से केवल व्यक्ति का हित ही नहीं होता वरन् समाज का भी हित होता है। व्यक्ति के हित में समाज का हित निहित है। अतः योग साधना का सामाजिक दृष्टि से भी बहुत महत्त्व है। निम्नलिखित तथ्यों से यह स्पष्ट हो जाता है–

1. व्यक्तियों के समूह को समाज कहा जाता है। जैसे व्यक्ति होंगे वैसा ही समाज होगा। योग साधना के पथ पर चलने वाले व्यक्ति निश्चित रूप से एक अच्छे समाज का निर्माण करेंगे।
2. छल, कपट, धोखाधड़ी, नशीली वस्तुओं का सेवन, भ्रष्टाचार, बेईमानी, हिंसा, सांसारिक विषयों में आसक्ति आदि आज के समाज की पहचान है। विश्वास कम होता जा रहा है। सामाजिक सम्बन्ध दूषित होते जा रहे हैं। अपराधों का ग्राफ दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। ऐसी स्थिति में यौगिक क्रियाएँ ही समाज से इन बुराईयों को दूर करने में सहायक सिद्ध हो सकती हैं।
3. वर्तमान भौतिकवादी समाज में मूल्यों तथा नैतिकता के मापदण्ड बदल गये हैं। वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, आतंकवाद सारे विश्व में फैलता जा रहा है। विश्व में अशान्ति बढ़ती जा रही है। ऐसी विकट परिस्थितियों में संयम, सहयोग, सहनशीलता, सहानुभूति, दया, प्रेम, सहिष्णुता की बहुत आवश्यकता है। आशा का एक छोटा-सा दीपक केवल योग है, जिसे अपनाकर ही जीवन को सुखमय बनाया जा सकता है।

अति भौतिकवाद पश्चिम से पूर्व की ओर तीव्रगति से बढ़ता जा रहा है। आर्थिक वैश्वीकरण के नाम पर विदेशी कम्पनियाँ भारत में पैर पसार रही हैं। अति भौतिकवाद ने पश्चिमी जगत् को तो खोखला बना ही दिया और अब भारत में पैर जमाना आरम्भ कर दिया। संयुक्त परिवार तो बहुत पहले समाप्त हो गए थे, आज एकल परिवार में भी दरारें बढ़ती जा रही हैं। वृद्ध आश्रमों की संख्या बढ़ती जा रही है। सभी सम्बन्धों का आधार आर्थिक स्थिति है। भौतिक सुखों की प्राप्ति की अन्धी दौड़ तथा स्वार्थपरता के कारण भारतीय समाज भी अपना गौरव खोता जा रहा है। केवल योग साधना द्वारा इस भौतिकवादी दौड़ पर विराम (ब्रेक) लगाया जा सकता है तथा एक सुखी और आनन्दमय समाज का निर्माण किया ज़ा सकता है।

❖ आध्यात्मिक महत्त्व (Spiritual Importance)

यौगिक क्रियाओं का सामाजिक, शारीरिक, मानसिक तथा नैतिक क्षेत्र में ही महत्त्व नहीं है वरन् आध्यात्मिक क्षेत्र में भी इनका बहुत महत्त्व है। योग-साधना तन तथा मन को पुष्ट तथा कोमल बनाकर आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर करती है।

आध्यात्मिक क्षेत्र में योग का महत्त्व निम्नलिखित तथ्यों से स्पष्ट हो जाता है—

1. भारतीय दर्शन के अनुसार व्यक्ति के दो शरीर हैं—स्थूल तथा सूक्ष्म। यौगिक साधना शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों से परे अति सूक्ष्म तथा सुप्त दैविक तथा अलौकिक शक्तियों के जागरण में मददगार होती है।
2. भारतीय दर्शन में शरीर की अपेक्षा आत्मा को अधिक महत्त्व दिया जाता है। यौगिक क्रियाएँ व्यक्ति को अपनी आत्मा को जानने तथा पहचानने का अवसर प्रदान करती हैं।
3. यौगिक साधना से आत्मा को ईश्वर में लीन करने की प्रेरणा मिलती है। ईश्वर सभी मनुष्यों के घट-घट में निवास करता है। प्रत्येक व्यक्ति का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना है। आत्मा तथा परमात्मा का मिलन ही मोक्ष है।
4. भारतीय दर्शन इस सिद्धान्त में विश्वास करता है कि सभी प्राणी सर्वशक्तिमान् पूर्ण ब्रह्म (ईश्वर) के अंश हैं। यदि हम ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करते हैं तो हमें सभी के प्रति (ईश्वर के अंश होने के कारण) प्रेम तथा आदरभाव रखना चाहिए। योग-साधना से ऐसे सात्त्विक तथा आध्यात्मिक विचार पनपते हैं।
5. मनुष्य जब पैदा होता है तो खाली हाथ होता है, मरने पर भी वह कुछ साथ लेकर नहीं जाता। यदि वह लेकर जाता है तो भौतिक सुखों तथा साधनों को नहीं वरन् सत्कर्मों को लेकर जाता है। समाज ऐसे व्यक्तियों को याद रखता है जो अपने लिए नहीं वरन् दूसरों के लिए जीते हैं। यौगिक क्रियाओं से इस शाश्वत सत्य का ज्ञान होता है कि व्यक्ति का अन्तिम उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना है।
6. योग के विभिन्न साधनों तथा विधाओं से आत्मा-परमात्मा के मिलन सम्बन्धी विभिन्न उपायों से परिचय होता है तथा उन पर चलने का अवसर भी प्राप्त होता है।
7. योग की विभिन्न विधाएँ मनुष्य को उसके सामान्य सांसारिक कर्मों के लिए शारीरिक तथा मानसिक शक्तियाँ प्रदान करने के अतिरिक्त उसे ईश्वर से मिलने की प्रेरणा भी देती हैं। नियम, साधना, संयम, तप आदि के कठिन पथों से गुजर कर योगी अन्ततः अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हो जाता है, आत्मा तथा परमात्मा का मिलन हो जाता है।

यौगिक क्रियाओं के ऊपरवर्णित महत्त्व का अध्ययन करने से स्पष्ट हो जाता है कि योग मानव समाज को शारीरिक तथा मानसिक रूप से स्वस्थ रखने में पूरी तरह सक्षम है। वर्तमान भौतिकवादी दुनिया, जहाँ दैहिक तथा मानसिक शोषण है, जहाँ अधिकांश लोग तनाव का जीवन व्यतीत करने को विवश हैं, जहाँ धन की हवस बढ़ती जा रही है, ऐसे दूषित वातावरण में योग साधना की संजीवनी बूटी की काफी आवश्यकता है। यौगिक

साधना से व्यक्ति शरीर तथा मन से शांत हो जाता है। स्वभाव में नम्रता तथा कोमलता आ जाती है। आप दुर्व्यवहार का बदला दुर्व्यवहार से नहीं वरन् सद्-व्यवहार से देंगे। आप झूठ नहीं बोलेंगे। किसी को धोखा नहीं देंगे।

आप देश को घोर नैतिक पतन के गर्त से बचाने का प्रयास करेंगे।

बच्चे में अच्छे संस्कार डाले जाएँ तो बड़ा होकर उनका विकास करेगा।

योग शिक्षा से बच्चों को आरम्भ से ही शरीर, मन तथा आत्मा से सबल एवं कान्तिमय बनाकर उन्हें समाज, राष्ट्र तथा मानवता के कल्याण की प्रेरणा दी जा सकती है।

?
सम्भावित प्रश्न

1. आप योग से क्या समझते हैं? इसके उद्देश्य बताइए।
   (What do you understand by Yoga ? What are its aims?)

2. योग से आप क्या समझते हैं? योग के क्षेत्र एवं कार्यों का वर्णन करें।
   (What do you understand by Yoga ? What are the scope and functions of Yoga?)

3. योग से आप क्या समझते हैं? व्यक्ति के जीवन में इसका क्या महत्त्व है?
   (What do you understand by Yoga? What is its importance in Man's life?)

◆◆◆

2

योग का दार्शनिक आधार
[Philosophical Bases of Yoga]

❖ भारतीय दर्शन की आधारभूत धारणाएँ (Basic Aptitude of Indian Systems of Philosophy)

भूमिका (Introduction)–पिछले अध्याय में यह बताने का प्रयास किया गया है कि हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि हजारों साल का लम्बा तथा स्वस्थ जीवन व्यतीत करते थे। उनके लम्बे तथा स्वस्थ जीवन का रहस्य योग, साधना तथा संयम था।

योग जीने की कला है। शरीर के अन्दर की शक्ति को योग जगाता है। यौगिक क्रियाओं से शरीर बलिष्ठ तथा मन कोमल बनता है।

शरीर में विजातीय द्रव्य (विकार) के रुक जाने से रोग पैदा होते हैं। आज जितने भी रोग हैं अथवा कल होंगे, उन सबका कारण शरीर में विकार को उत्पन्न करने वाले अवान्छित तत्त्वों का रुक जाना ही है। यदि हम अपने शरीर का थोड़ा-सा भी ध्यान रखें तथा विकार को शरीर में रुकने न दें, तो रोगी होने से हम बच सकते हैं। नीरोग रहने की स्थिति में न डॉक्टर की आवश्यकता होगी तथा न ही दवाई की।

योग मानव जीवन को शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ रखने में पूरी तरह सक्षम है। योग व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

योग साधना एक तरह से जीवन की सरल तथा सफल साधना है जिसके माध्यम से व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय तथा सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता है।

भारत के प्राचीन दार्शनिकों एवम् ऋषि-मुनियों ने योग के महत्त्व को जाना, समझा तथा जीवन में ढाला था। भारतीय दर्शन में योग का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

यहाँ हम दो शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं–योग तथा दर्शन विशेष रूप से भारतीय सन्दर्भ में। यहाँ हम योग के दार्शनिक आधार की चर्चा करने का प्रयास करेंगे।

दर्शन (Philosophy) संस्कृत के दृश् धातु से निकला है। दृश् का सीधा-सा अर्थ है–देखना। यौगिक क्रियाओं से तन तथा मन सुन्दर बनता है। इस तरह योग दर्शन से अभिप्राय हुआ वह दृष्टि, विचार तथा प्रक्रिया जिसके द्वारा योग विज्ञान के सिद्धान्त तथा क्रियात्मक स्वरूप को जन्म मिलता है।

भारतीय दर्शन शास्त्र के अनुसार मुख्य रूप से छः प्रकार की विचार प्रणाली अथवा दर्शन हैं जो निम्नलिखित हैं–

1. न्याय दर्शन–गौतम ऋषि को न्याय दर्शन का जन्मदाता माना जाता है। इस दर्शन में व्यक्ति के अन्तिम लक्ष्य की चर्चा की गई है। व्यक्ति के जीवन का अन्तिम लक्ष्य अथवा उद्देश्य–मोक्ष, मुक्ति अथवा निर्वाण प्राप्त करना है, जिससे आत्मा तथा परमात्मा का मिलन हो तथा इस आवागमन के चक्र से छुटकारा मिले। इस दर्शन को तर्क विज्ञान (Science of Logic) तथा सत्य और प्रमाण शास्त्र (Means of acquiring true and right knowledge) भी कहा जाता है।

2. वैशेषिक दर्शन–इस दर्शन के नाम से ही स्पष्ट हो जाता है। यह दर्शन सामान्य तथा विशेष अन्तर के रूप में हमारे सामने आता है। यह दर्शन सत्य तथा वास्तविक ज्ञान की खोज के रूप में ऐसे विचारों तथा

सिद्धान्तों पर बल देता है, जिनके द्वारा आत्म-साक्षात्कार तथा कैवल्य प्राप्त होता है। इस दर्शन के जन्मदाता 'कणाद' मुनि माने जाते हैं।

3. सांख्य दर्शन–सांख्य दर्शन के प्रमुख आचार्य कपिल माने जाते हैं। सांय दर्शन के अनुसार सृष्टि के मूल में दो तत्त्व कार्य करते हैं–1. प्रकृति, 2. पुरुष।

प्रकृति जड़ है और पुरुष चेतन है। संसार की उत्पत्ति से पूर्व प्रकृति और पुरुष अलग-अलग रहते हैं। जब दोनों मिलते हैं तो एक-दूसरे के सहायक बनकर कार्य करते हैं प्रकृति अन्धे की तरह है तथा पुरुष लगड़े की तरह है। ये दोनों मिलकर सृष्टि का सम्पादन करते हैं। दार्शनिक दृष्टि से 'सांख्य' का अर्थ है–'विवेक ज्ञान'। प्रकृति और पुरुष का ज्ञान होने पर ही मुक्ति होती है। सांख्य दर्शन में 25 तत्त्वों का उल्लेख है–पुरुष, प्रकृति, महत्त्व, अहंकार, मन, पाँव ज्ञानेन्द्रियाँ (नेत्र, कर्ण, घ्राण, जिह्वा, त्वचा), पाँच कर्मेन्द्रियाँ (मुख, हाथ, पैर, मलद्वार, जननेन्द्रिय), पाँच तन्मात्राएँ (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) तथा पाँच महाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश)।

इन पच्चीस तत्त्वों के आधार पर समस्त सृष्टि का निर्माण होता है। इन 25 तत्त्वों मूल दो तत्त्वों के प्रकृति और पुरुष में समाहित होने पर सृष्टि प्रलय को प्राप्त होती है। सांख्यदर्शन परिणामवादी है। प्रकृति में विकार आने पर सृष्टि का ठीक उसी प्रकार निर्माण होता है, जैसे दूध से दही बनती है। सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण विशेष भूमिका निभाते हैं।

4. योग दर्शन–योग दर्शन का आधार शरीर तथा मन (चित्त) पर पूर्ण नियन्त्रण करके समाधि की अवस्था आती है। अष्टांग योग में ध्यान तथा समाधि का सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारतीय दर्शन में मुक्ति अथवा मोक्ष पर अधिक बल दिया गया है। जीवन का अन्तिम लक्ष्य मुक्ति अथवा कैवल्य प्राप्त करना है। यह दर्शन सिद्धान्तों पर आधारित न होकर पूर्ण क्रियात्मक तथा व्यवाहारिक है।

महर्षि पंतजलि ने योग दर्शन पर विस्तार से व्याख्या की है।

5. मीमांसा दर्शन–मीमांसा दर्शन को प्रारम्भिक दर्शन माना जाता है। भारतीय दर्शन में धर्म के महत्त्व पर बहुत अधिक बल दिया गया है। यदि यूं कहा जाए कि इस दर्शन में धर्म के महत्त्व तथा आवश्यकता को पराकाष्ठा तक पहुंचा दिया है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस दर्शन में धर्म की प्रकृति तथा नियमों पर विस्तार से चर्चा की गई है। तर्क तथा धर्म दो अलग-अलग विचार है। जहाँ तर्क है वहाँ धर्म नहीं तथा जहाँ धर्म है, वहाँ तर्क नहीं। धर्म का आधार विश्वास तथा आस्था है। यह दर्शन इसी तथ्य पर आधारित है। धर्म विचार का विषय नहीं है। धर्म को इस दर्शन में रूढ़ियों तथा नैतिकता के रूप में देखा गया है।

इस दर्शन के प्रणेता जैमिनी मुनि माने जाते हैं।

6. वेदान्त दर्शन–वेदों के उत्तर अर्थात् पिछले भाग से सम्बन्धित होने के कारण इसे उत्तर मीमांसा भी कहा जाता है। ब्रह्म सूत्र के रचियता बद्रायण मुनि को इस दर्शन का प्रणेता माना जाता है। यद्यपि वेदान्त दर्शन के प्रणेता मुनि बाद्रायण को माना जाता है परन्तु वर्तमान सन्दर्भ में इसे अपने विस्तृत रूप में लाने का श्रेय रामानुजाचार्य के अतिरिक्त वल्लभाचार्य, माधवाचार्य, शंकराचार्य तथा गौडपाद जैसे अनेक आचार्यो को जाता है।

इन आचार्यो ने इस दर्शन में अनेक गूढ़ रहस्यों पर चर्चा की है। इन्होंने द्वैत तथा अद्वैत जैसी दार्शनिक विचारधाराओं के माध्यम से आत्मा तथा परमात्मा का सम्बन्ध बताने का प्रयास किया है। ब्रह्म अथवा ईश्वर क्या है? आत्मा क्या है? आत्मा तथा परमात्मा का क्या सम्बन्ध है। विश्व में जो कुछ गोचर अथवा अगोचर है, जो दिखाई देता है और ज़ो दिखाई नहीं देता, उसका परमात्मा से क्या सम्बन्ध है। वेदान्त दर्शन में ऐसे बहुत से गूढ़ विषयों पर खुलकर विचार किया गया है।

इन आचार्यों के पश्चात् भी बहुत से सन्त महात्माओं ने इन गूढ़ रहस्यों को जानने तथा बताने का प्रयास किया है। आज भी ये गूढ़ रहस्य व्यक्ति की जानकारी से दूर है। व्यक्ति मरकर कहाँ जाता है तथा वह कहाँ से आता है।

'मैं कौन हूँ।' यह जानने का व्यक्ति जितना प्रयास करता है, उतना ही वह उलझता चला जाता है।

वेदान्त दर्शन के इन तर्कपूर्ण तथा गूढ़ रहस्यों को जानने का प्रयास भारतीय दार्शनिकों ने ही नहीं वरन् पश्चिमी देशों के विद्वानों ने भी जानने का प्रयास किया है। व्यक्ति का प्रयास समाप्त नहीं हुआ है। विश्व के दार्शनिक इन गूढ़ रहस्यों को जानने के लिए प्रयत्नशील हैं।

ऊपरवर्णित भारतीय षट् दर्शन भारतीय दर्शन के रूप में योग विज्ञान के वृहद स्वरूप और विशेषताओं को प्रकट करते हैं। इन दर्शनों में जहाँ एक ओर विचार प्रक्रिया, सिद्धान्त तथा उनके प्रतिपादन की दृष्टि से काफी अन्तर देखने को मिलता है तो दूसरी ओर आधारभूत धारणाओं की दृष्टि से बहुत समानता भी दिखाई देती है।

❖ भारतीय दर्शनों की आधारभूत सिद्धान्त (Basic Principles of Indian Systems of Philosophy)

यद्यपि भारतीय दार्शनिकों के विचारों में काफी मतभेद हैं परन्तु भारतीय दर्शन के कुछ ऐसे सिद्धान्त हैं जिन सिद्धान्तों के सम्बन्ध में सभी दार्शनिक एक सहमत हैं।

भारतीय दर्शन के निम्नलिखित सिद्धान्त इस तथ्य को प्रकट करते हैं–

1. कर्म का सिद्धान्त–भारतीय दर्शन कर्म के सिद्धान्त पर बहुत विश्वास करता है। हजारों लाखों व्यक्ति प्रतिदिन जन्म लेते हैं तथा मरते हैं। कहा जाता है कि व्यक्ति अपने जन्म के समय कुछ नहीं लाता है और मरने पर कुछ साथ लेकर नहीं जाता। खाली हाथ आता हे तथा खाली हाथ जाता है। तथ्य इसके विपरीत है। व्यक्ति अपने कर्मों के अनुसार जन्म लेता है। कर्मों के अनुसार फल भोगता है। जैसा कर्म करता है, वैसा ही उसको फल मिलता है। भारतीय दर्शन इसी बात पर जोर देता है। बबूल का पेड़ बोने से आम नहीं मिलते। मनुष्य जैसा बोता है, वैसा ही काटता है। यदि मनुष्य अपने जीवन में अच्छे कर्म करता है तो अच्छा फल मिलेगा तथा बुरे कर्म का फल भी बुरा होता है।

2. पुनर्जन्म का सिद्धान्त–भारतीय दर्शन पुनर्जन्म के सिद्धान्त में भी विश्वास रखता है। भारतीय दर्शन शरीर तथा आत्मा में अन्तर करता है। भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं कि आत्मा अमर है जो न मरती है, न जलती है। आत्मा तो अमर है। व्यक्ति के मरने पर स्थूल शरीर जला दिया जाता है अथवा दफना दिया जाता है परन्तु आत्मा एक शरीर को त्याग कर दूसरे शरीर को उसी प्रकार धारण कर लेती हैं, जिस प्रकार व्यक्ति कपड़े फट जाने पर उन्हें छोड़कर नवीन वस्त्र धारण कर लेता है। जब तक व्यक्ति को मोक्ष नहीं मिल जाता। वह ईश्वर में एकाकार नहीं हो जाता है। उसकी इच्छाएँ समाप्त नहीं हो जातीं, तब तक वह बार-बार जन्म लेता रहता है, बार-बार मरता रहता है। मुक्ति प्राप्त होने से ही वह आवागमन के चक्कर से छुटकारा पाता है।

3. धर्म का सिद्धान्त–व्यक्ति के जीवन के दो रूप हैं–लौकिक तथा पारलौकिक। धर्म ही ऐसा अस्त्र है जिससे इह लोक तथा परलोक दोनों सुधरते हैं। धर्म व्यक्ति को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है। ईश्वर के प्रति श्रद्धा भावना रखना ही धर्म है। धर्म का विस्तृत अर्थ है धारण करना, क्षमा, मनोयोग, पवित्रता, चोरी न करना, इन्द्रिय निग्रह, बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य करना विद्या प्राप्त करना, सच बोलना, क्रोध न करना आदि। जो व्यक्ति धर्म के इन सिद्धान्तों पर अमल करता है, वह सन्मार्ग पर चलता हे एवम् समाज में यश तथा सम्मान पाता है।

4. मोक्ष का सिद्धान्त–भारतीय दर्शन में सबसे महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त मोक्ष का है। आवागमन के चक्र से मुक्त होना है। ईश्वर में एकाकार होना है। भारतीय दर्शन के चार मुख्य लक्षणों यथा–धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष। इन चारों पुरुषार्थों में मोक्ष का स्थान सर्वोपरि है। मोक्ष प्राप्त करना मानव जीवन का परम लक्ष्य है। मोक्ष को निर्वाण, मुक्ति, आत्म-दर्शन आदि अनेक नाम दिए जाते हैं। योग आत्मनियन्त्रण का ऐसा साधन है जिसके द्वारा मोक्ष प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

5. विश्व दुःखों का घर–यह दुनिया दुःखों का घर है। कोई भी व्यक्ति सुखी नहीं है। जिसके पास सभी भौतिक साधन हैं, वह भी दुःखी है तथा जिसके पास साधनों का अभाव है, वह भी दुःखी है। मोह, माया ममता के इस भ्रम जाल में सभी फंसे हुए हैं। सांसारिक चक्र अथवा बन्धन मानव को जन्म मरण के चक्कर में बांधे रखता है। यही बन्धन सभी दुःखों का मूल कारण है मनुष्य प्रायः निम्नलिखित दुःखों से ग्रस्त रहता है–

(अ) **आधि दैविक**–समय-समय पर प्राकृतिक अथवा दैवीय अपदाओं के कारण व्यक्ति दुःखी रहता है। अकाल, बाढ़, तूफान, भूकम्प, कम अथवा अधिक वर्षा, ओले आदि अनेक प्राकृतिक विपदाएँ व्यक्ति

को झेलनी पड़ती हैं। पिछले वर्षों में सुनामी लहरों के कारण अनेक परिवारों को अनेक कष्ट झेलने पड़े। कितने ही लोग मौत के ग्रास में चले गये। इन प्राकृतिक अथवा दैविक विपदाओं के कारण व्यक्ति को बहुत कष्ट झेलने पड़ते हैं।

(ब) **आधि दैहिक दुःख**–यह शरीर दुःखों का घर है। अनेक व्याधियाँ व्यक्ति को घेरे रखती हैं। भौतिकवादी युग में अनेक व्यक्ति तनावपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। नित्य नये-नये रोग जन्म ले रहे हैं। हैजा, तपेदिक, अंगों में दर्द के साथ-साथ कैंसर, एड्स जैसी भयानक जानलेवा बीमारियाँ बढ़ती जा रही हैं। वृद्धावस्था में बीमारियाँ और भी तंग करती हैं। इन भयानक बीमारियों के कारण भी व्यक्ति दुःखी है।

(स) **आधि भौतिक दुःख**–वर्तमान भौतिकवादी युग में सबसे बड़ा दुःख है भौतिक साधनों का अभाव। आज पैसे का महत्त्व इतना बढ़ गया है कि व्यक्ति तन तथा मन बेचने को विवश है। पैसे की हवस दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। सांसारिक आवश्यकताओं की पूर्ति न होने पर जो कष्ट होता है उन्हें भौतिक दुःख कहा जाता है। जब मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताएँ (रोटी, कपड़ा और मकान) पूरी नहीं होतीं तो उसके कष्टों की कल्पना ही की जा सकती है। इसलिए भारतीय दर्शन इस बात पर बल देता है कि इच्छाओं पर नियन्त्रण रखना चाहिए। जितनी इच्छाएँ बढ़ेगीं उतना ही अधिक दुःख होगा।

योगीं इसीलिए सुखी होता है क्योंकि उसकी इच्छाएँ सीमित होती हैं। योगी सभी प्रकार के दुःखों से विमुख होता है।

6. वेद आविर्भाव सम्पूर्ण ज्ञान का स्रोत–भारतीय दर्शन के धार्मिक ग्रन्थों में वेद सबसे प्राचीन है। आदिकाल में ब्रह्माजी के मुख से वेदों का हुआ। चार वेद भारतीय ज्ञान का प्रमुख स्रोत हैं। वेदों का अध्ययन करके मानव आध्यात्मिक विकास की चरम सीमा तक पहुँच सकता है।

योग तो मुक्ति का मुख्य साधन है ही परन्तु योग के साथ-साथ वेदों का अध्ययन भी अनिवार्य है।

ऊपरवर्णित छः सिद्धान्त भारतीय दर्शन के आधार स्तम्भ हैं। इन सभी दर्शनों में आशा की झलक दृष्टिगोचर होती है। यदि इन सिद्धान्तों पर चलते हुए तथा इन सिद्धान्तों को धारण करते हुए अपने कर्तव्यों का पालन करें तो वह निश्चित रूप से अपने अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हो सकता है। ये सभी दर्शन भारत की आदि देवभाषा संस्कृत में लिखे गये हैं।

❖ योग का दार्शनिक आधार (Philosophical bases of Yoga)

योगदर्शन अन्य पाँच दर्शनों से मुख्य-मुख्य आधारभूत दार्शनिक धारणाओं की दृष्टि से बहुत कुछ साम्य रखता है। समय-समय पर यह प्रश्न उठता रहता है कि योग का दार्शनिक आधार क्या है, तो हमारा ध्यान बरबस ही भारतीय षट्दर्शनों की ओर जाता है। इन षट्दर्शनों में वर्णित विशेष सिद्धान्त, सुझाए गए विशेष मार्ग तथा गूढ़ तथा रहस्यमयी बातें ही योग विज्ञान का पथ प्रदर्शित करती हुई जान पड़ती हैं। परन्तु वास्तव में योग का वास्तविक दार्शनिक आधार सांख्य दर्शन तथा योग दर्शन की समन्वित धारा में ही निहित है। सांख्यदर्शन योग का सैद्धान्तिक पक्ष है तो योग दर्शन उसका क्रियात्मक तथा व्यावहारिक पक्ष प्रस्तुत करता है।

एक योगी के जीवन में सिद्धान्त तथा क्रिया, विचार तथा उसके फल का सुन्दर संगम होता है। योग को दार्शनिक चिन्तन के आधार पर व्यावहारिक जीवन में उतारी गई सफलतम अनुभूति कहा जा सकता है।

सांख्यदर्शन की निम्नलिखित अवधारणाएँ तथा मान्यताएँ हैं जिनसे एक योगी द्वारा सम्पन्न की जाने वाली योग साधना को एक स्पष्ट दार्शनिक आधार प्राप्त हो जाता है–

1. प्रकृति तथा पुरुष
2. पुरुष विशेष
3. पुरुषार्थ
4. त्रिगुण।

1. प्रकृति और पुरुष (Nature & Man)

प्रकृति (Nature)—प्रकृति शब्द दो शब्दों के मेल से बना है— प्र + कृति। प्र का अर्थ है—पूर्व तथा कृति का अर्थ है—किया हुआ। इसका अर्थ हुआ जो सृष्टि की रचना के पूर्व विद्यमान था। भगवान् कपिल अपनी माता देवहूति को बताते हैं कि जो त्रिगुणात्मक (सत्त्व, रजस्, तमस्) अव्यक्त, नित्य तथा कार्य-कारण रूप हैं तथा स्वयं निर्विशेष होकर भी सम्पूर्ण विशेष धर्मों का आश्रय है, उस प्रधान नामक तत्त्व को ही प्रकृति कहते हैं।

पाँच महाभूत, पाँच तन्मात्राएँ, चार अन्तःकरण तथा दस इन्द्रियाँ—इन चौबीस तत्त्वों के समूह को विद्वान् लोग प्रकृति का कार्य मानते हैं।

रजस्, तमस्, सत्त्व तीनों गुणों के मिलन से ही संसार की रचना होती है। प्रकृति संसार की रचना का स्रोत व कारण है। प्रकृति हमें दिखाई नहीं देती परन्तु उससे उत्पन्न वस्तुएँ तथा पदार्थ हमें दिखाई देते हैं। प्रकृति अपने सभी रूपों में बहुत सूक्ष्म तथा रहस्यमयी है।

यह जगत् मिथ्या है, मृगतृष्णा है परन्तु प्रकृति शाश्वत है, सत्य है, सदैव रहने वाली है। जिसका आदि तथा अन्त न हो जिसका अनुमान न लगाया जा सके, जो सदैव शाश्वत तथा सत्य है, वही प्रकृति है।

पुरुष (Man)—प्रकृति का सम्बन्ध चराचर जगत् के भौतिक पदार्थों से है तो पुरुष का सम्बन्ध आध्यात्मिक धरातल पर उपस्थित आत्मा से लगाया जाता है।

भगवान् कपिल कहते हैं कि यह सारा जगत् जिससे व्याप्त होकर प्रकाशित होता है वह आत्मा ही पुरुष है। वह अनादि, निर्गुण, प्रकृति से परे, अन्तःकरण में स्फुरित होने वाला और स्वयं प्रकाश है। अपने सभी रूपों में पुरुष (आत्मा) को अति सूक्ष्म तथा चेतन माना गया है। आत्मा को देखा तथा छुआ नहीं जाता परन्तु सभी मानते हैं कि मनुष्य आत्मा के बिना हो ही नहीं सकता। आत्मा का अस्तित्व निर्विवाद है। 'मैं' और 'मेरा' सभी के स्वाभाविक अनुभव हैं। आत्मा अर्थात् पुरुष का अस्तित्व स्वयंसिद्ध है।

सांख्यदर्शन के अनुसार पुरुष में चेतना है परन्तु वह निष्क्रिय है। प्रकृति जड़ है परन्तु सक्रिय है।

आत्मा शरीर से परे है। आत्मा शरीर का प्रयोग करती है परन्तु वह शरीर के बन्धन में नहीं है। आत्मा अजर-अमर है। उसे एक शरीर छोड़कर दूसरा शरीर ग्रहण करने में कोई कष्ट नहीं होता। आत्मा सुख तथा दुःख से परे है। उदाहरण के लिए चुम्बक में अपनी ओर आकर्षित करने की शक्ति है परन्तु वह निष्क्रिय है जब तक लोहा उसके सम्पर्क में नहीं आता। लोहे के सम्पर्क में आने से ही चुम्बक सक्रिय होता है।

पुरुष तथा प्रकृति का भी यही सम्बन्ध है। आत्मा समस्त इन्द्रियधारी प्राणियों में आत्म-निर्णय के तत्त्व के रूप में विद्यमान है। सभी प्राणियों की आत्मा का स्वरूप समान है परन्तु प्राणियों के भौतिक संस्थानों की भिन्नता के कारण आत्मा का स्वरूप भिन्न दृष्टिगोचर होता है।

सांख्यदर्शन इस बात पर जोर देता है कि आत्मा अजर-अमर है जिसका आदि तथा अन्त नहीं है। पुरुष (आत्मा) निर्गुण है, सूक्ष्म तथा सर्वव्यापी है। आत्मा बुद्धि, काल, देश तथा कार्य-कारण की सीमा से परे हैं। यह विशेषताओं से रहित है। यथार्थ तथा अनेक है।

प्रकृति तथा पुरुष में सम्बन्ध (Relation between Nature and Man)

प्रकृति तथा पुरुष का गहरा सम्बन्ध है। दोनों ही शाश्वत तथा सत्य हैं। प्रकृति को जगत् का आदि कारण माना जाता है। प्रकृति सृष्टि से पहले भी थी। प्रकृति जगत् का आदि कारण है तो पुरुष सहकारी कारण है। पुरुष के सम्पर्क तथा सहयोग के बिना प्रकृति जगत् में किसी प्रकार का निर्माण कार्य नहीं कर सकती। उदाहरण के लिए एक लंगड़ा तथा अन्धा अकेले-अकेले अपनी मंजिल तक नहीं पहुँच सकते क्योंकि अन्धा देख नहीं सकता तथा लंगड़े को चलने में परेशानी होती है परन्तु दोनों परस्पर सहयोग से अपनी मंजिल तक पहुँच सकते हैं। यही स्थिति प्रकृति तथा पुरुष की है। दोनों एक-दूसरे के बिना अधूरे हैं। प्रकृति जड़ है इसलिए अन्धी है। उसमें गतिविषयक क्षमता तो है परन्तु दृष्टिविषयक क्षमता नहीं है। पुरुष में गतिविषयक क्षमता नहीं है केवल दृष्टिविषयक

क्षमता है। दोनों मिलकर जगत् को रचना तथा जीवन प्रदान करते हैं। लंगड़े तथा अन्धे व्यक्ति का साथ अपनी मंजिल तक पहुँचने तक है। जैसे ही वे अपनी मंजिल तक पहुँच जाते हैं, उनका साथ भी छूट जाता है। उसी तरह मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य तथा मंजिल मोक्ष प्राप्त करना है। जैसे ही प्रकृति के सहयोग से व्यक्ति अपनी अन्तिम मंजिल अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर लेता है तो उसका प्रकृति से सम्बन्ध समाप्त हो जाता है।

प्रकृति तथा पुरुष में अन्तर
(Differentiation between Nature and Man)

पुरुष तथा प्रकृति के आपसी सम्बन्धों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि पुरुष तथा प्रकृति एक-दूसरे के पूरक हैं। उनका गहरा सम्बन्ध है। जगत् अर्थात् सृष्टि का सर्जन अकेले पुरुष अथवा अकेली प्रकृति से सम्भव नहीं है। प्रकृति तथा पुरुष के सम्पर्क से ही सृष्टि का सर्जन होता है। यद्यपि पुरुष तथा प्रकृति का अटूट सम्बन्ध है परन्तु फिर भी दोनों एक नहीं हैं। दोनों में मूलभूत अन्तर है।

निम्नलिखित तथ्यों से दोनों में अन्तर स्पष्ट हो जाता है–

1. प्रकृति जड़ है परन्तु पुरुष चेतन है।
2. प्रकृति सृष्टि की रचना से पूर्व थी, पुरुष का उद्भव बाद में हुआ।
3. प्रकृति त्रिगुणात्मक है, पुरुष निर्गुण है।
4. प्रकृति एक है परन्तु पुरुष अनेक हैं।
5. प्रकृति जगत् का आदिकारण है, पुरुष सहकारी कारण है।
6. प्रकृति विषय है, पुरुष विषयी है।
7. प्रकृति भोग्या है तो पुरुष भोक्ता है।
8. प्रकृति देश, काल से युक्त है, पुरुष देश व काल से परे हैं।
9. प्रकृति क्रियाशील है तो पुरुष निष्क्रिय है।
10. प्रकृति ज्ञान-शून्य है, पुरुष ज्ञान का स्वरूप है।
11. प्रकृति बन्धन का कारण है पुरुष बन्धन-मुक्त है।
12. प्रकृति जगत् का कारण है, पुरुष कार्यकारण से रहित है।

इस तरह प्रकृति तथा पुरुष भिन्न होते हुए भी एक-दूसरे के पूरक तथा सहायक हैं। दोनों एक-दूसरे पर निर्भर हैं।

2. पुरुष विशेष
(Man Special)

योगदर्शन का महत्त्व सांख्यदर्शन से अधिक है क्योंकि योग दर्शन सांख्यदर्शन की तुलना में अधिक आस्तिक है। सांख्यदर्शन केवल प्रकृति तथा पुरुष के अस्तित्व को स्वीकार करता है तथा इस बात पर बल देता है कि व्यक्ति अपना अन्तिम लक्ष्य अर्थात् मोक्ष केवल प्रकृति के सहयोग से ही प्राप्त कर सकता है। जैसे ही पुरुष मोक्ष प्राप्त कर लेता है उसका सम्बन्ध प्रकृति से समाप्त हो जाता है। योगदर्शन प्रकृति तथा पुरुष से परे एक अन्य सर्वोच्च सत्ता के अस्तित्व को भी स्वीकार करता है जिसे पुरुष विशेष कहा जाता है। योगदर्शन के अनुसार यह पुरुष विशेष ईश्वर जो आत्माओं में सर्वश्रेष्ठ आत्मा ही है। आत्मा तथा परमात्मा का मिलन अर्थात् आत्मा का परमात्मा में एकीकरण ही मोक्ष है। सभी पुरुषों की मंजिल अथवा लक्ष्य एक ही है (मोक्ष प्राप्त करना) परन्तु अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के साधन अथवा रास्ते भिन्न-भिन्न हैं। सभी अपने-अपने पथ पर चलते हुए पुरुष विशेष अर्थात् परमात्मा से मिलन का प्रयास करते हैं। एक सच्चा साधक इसी तरह से अपने अन्तिम लक्ष्य अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। पुरुष विशेष (परमपिता परमात्मा) सभी प्रकार के अज्ञान, मोह व वासना से मुक्त होता है। उसमें क्लेश, कर्मफल तथा इच्छाओं का वास नहीं होता। सारा जगत् उससे व्याप्त होकर प्रकाशित होता है। वह अनादि, निर्गुण, प्रकृति से परे, अन्तःकरण में स्फुरित होने वाला और स्वयं प्रकाश है। वह दिव्य गुणों व प्रकाश का ऐसा तेज पुंज है जिसमें सभी आत्माएँ आकर विलीन हो जाती हैं।

3. पुरुषार्थ (Manliness)

जीवन में प्रत्येक पुरुष कुछ न कुछ पाने के लिए प्रयत्नशील रहता है। प्रत्येक पुरुष अर्थात् आत्मा प्रकृति के साथ मिलकर अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में प्रयत्नशील रहता है। पुरुष अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जो प्रयास करता है उसे पुरुषार्थ कहा जाता है। भारतीय दर्शन के अनुसार ये पुरुषार्थ निम्नलिखित हैं–

1. अर्थ (Mean)–ईश्वर ने प्रत्येक व्यक्ति के साथ पेट लगाया है तथा व्यक्ति पहला पुरुषार्थ करता है उदर पूर्ति करने का। वह सारा जीवन धर्नोपजन में लगा रहता है। जीवन निर्वाह के लिए जो उपयोगी तथा अनिवार्य वस्तुएँ हैं उनका संग्रह करने में व्यक्ति लगा रहता है। इस प्रकार अर्थ का संबंध भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति है। वर्तमान भौतिकवादी युग में भौतिक आवश्यकताओं का कोई अंत नहीं। वर्तमान संदर्भ में अधिकांश व्यक्ति अर्थोपार्जन में अपना सारा जीवन लगा देते हैं। परिणामस्वरूप वे जीवन के अन्य उच्च उद्देश्यों अर्थात् पुरुषार्थ के लिए समय नहीं निकाल पाते।

एक योगी अथवा साधक को अपनी इच्छाएँ सीमित रखनी चाहिए। इच्छा पूर्ति से इच्छाएँ कम नहीं होती वरन् बढ़ती हैं। एक इच्छा पूरी होती है तो दो इच्छाएँ मुँह बाए खड़ी हो जाती हैं। घोड़ा लगाम के बिना बेकाबू हो जाता है। लगाम घोड़े को काबू में रखती है। इसी तरह एक साधक अथवा योगी को अपनी इच्छाओं पर लगाम कसकर रखनी चाहिए। अपनी इच्छाएँ सीमित रखते हुए उनकी पूर्ति के लिए अर्थोपार्जन करना चाहिए। इसीलिए कहा गया है–सांई इत्ता दीजिए जामें कुटुम्ब समाये, मैं भी भूखा न रहूँ साधू ना भूखा जाए।

2. काम (Sex)–धन उपार्जन के पश्चात् अर्थात् जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के पश्चात् मनुष्य में इन्द्रियजनित शारीरिक सुखों को पूरा करने की इच्छा जागृत होती है। यह इच्छा मनुष्य में ही नहीं सभी जीव-जन्तुओं में दृष्टिगोचर होती है। इस इच्छा अथवा चाह को काम-इच्छा कहा जाता है। इसके बिना सृष्टि का निर्माण संभव नहीं है। साधारण तथा विषय-वासनाओं की पूर्ति कामेच्छा कहलाती है परन्तु भारतीय दर्शन में काम शब्द का अर्थ मात्र यौन-सुख-प्राप्ति नहीं है वरन् समस्त इन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों से प्राप्त सुख के रूप में माना जाता है। शरीर की रचना पाँच महाभूतों (आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी) से हुई है। इन पाँच तत्त्वों का प्रतिनिधित्व हमारे शरीर की पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ करती हैं। पाँच कर्मेन्द्रियाँ नाक, कान, आँख, जिह्वा तथा त्वचा।

आकाश का गुण है शब्द तथा शब्द हम कान से सुनते हैं। आज हम रेडियो तथा टेलीविजन द्वारा सारे विश्व को देख तथा सुन सकते हैं और इस प्रकार सुख का अनुभव करते हैं।

वायु का गुण है स्पर्श, स्पर्श हम त्वचा से करते हैं। अग्नि का गुण है प्रकाश तथा प्रकाश हम आँखों से देखते हैं। इससे हमें अग्नि भी मिलती है। जठराग्नि से पाचन का काम भी होता है। जल का गुण है स्वाद तथा स्वाद का अनुभव हमें जिह्वा से होता है। मीठा, नमकीन, कड़वा, खट्टा आदि स्वादों को हम जिह्वा से चखकर ही जान सकते हैं। पृथ्वी का गुण है गन्ध, गन्ध का ज्ञान हमें नाक से होता है। इस प्रकार सभी प्रकार के इन्द्रिय-जनित सुख जैसे ज्ञानेन्द्रियों–नाक कान आँख, जिह्वा तथा त्वचा से प्राप्त स्वाद, रस तथा आनन्द की अनुभूति तथा कर्मेन्द्रियों से प्राप्त सुख, भोग विलास, मैथुन, आहार तथा निद्रा आदि द्वारा प्राप्त आनन्द कामानन्द के अंतर्गत आते हैं। यही विषय वासना तथा काम की लालसा मानव को भौतिक धरातल से ऊपर नहीं उठने देती। महाराज ययाति अपने पुत्र का यौवन लेने के पश्चात् भी काम वासनाओं से तृप्त नहीं हो सके। अन्ततः उन्हें वैराग्य ही लेना पड़ा। पशु-पक्षियों में भी जीवन का उद्देश्य इसी रूप में कार्य करता है। अतः मानव जीवन जो अति दुर्लभ है 84 लाख यौनियों में भटकने के पश्चात् प्राप्त होता है। मानव जीवन निस्संदेह श्रेष्ठ तथा मूल्यवान है। इसे काम वासनाओं में खोना उचित नहीं है। मनुष्य को कुछ उच्च स्तर के उद्देश्यों की पूर्ति की कामना करनी चाहिए।

3. धर्म (Religion)–मनुष्य इस जीवन के साथ-साथ दूसरे जीवन को सुधारना चाहता है। भारतीय दर्शन पुनर्जन्म में विश्वास करता है। अपने पिछले जन्म में किए गए कर्मों के अनुसार व्यक्ति को दूसरा जन्म मिलता है। इसीलिए कहा जाता है कि माता-पिता जन्म के साथी होते हैं, कर्म के साथी नहीं। सभी मनुष्यों को स्वयं

अपने कर्मों का फल भोगना पड़ता है। व्यक्ति को सद्‌कर्मों की ओर प्रेरित करना धर्म का कार्य है। इसलिए धर्म का महत्त्व अर्थ तथा काम से अधिक माना जाता है। भय, भूख, निद्रा तथा संतान उत्पत्ति के तत्त्व तो पशु-पक्षियों में भी होते हैं। मानव जीवन तो पशु-पक्षियों के समान व्यतीत करने के लिए नहीं मिला। मानव जीवन तभी सार्थक हो सकता है जब वह पशु-पक्षियों से भिन्न कार्य करें। यहाँ धर्म का अर्थ हम संकुचित दृष्टि से नहीं करते। धर्म का अर्थ है—धारण करना। अपने कर्त्तव्यों को निष्ठा तथा ईमानदारी से पूरा करना। कर्त्तव्यपालन के लिए उचित आचरण अपनाना तथा उचित आचरण के लिए अपने को अनुशासन में रखना तथा समाज के नियमों का पालन करना। धर्म ही सही अर्थों में मानव को पूर्ण मानव बनाता है।

धर्म कभी भी मनुष्य को कुमार्ग चलने की प्रेरणा नहीं देता वरन् सद्‌मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है। अपने लिए सभी जीते हैं परन्तु धर्म दूसरों के लिए जीने की कला सिखाता है। मनुष्य धर्म के कारण परोपकारी बनता है तथा समाज में अपने कर्त्तव्यों को निभाने की लगन पैदा करता है।

धर्म संबंधी उद्देश्य तथा पुरुषार्थ की प्राप्ति की लालसा मनुष्य को मनुष्य के स्तर से ऊपर उठाती है।

भारतीय दर्शन तथा धर्मशास्त्र इस सिद्धांत पर बल देते हैं कि धर्म का अनुयायी धैर्यवान होता है। उसमें दया, क्षमा, मनोयोग तथा पवित्रता की भावनाएँ होती हैं। उसका अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण होता है। वह बुद्धिमत्तापूर्वक कार्य करता है। विद्या प्राप्ति करना, सत्य वचन बोलना तथा क्रोध न करना उसके गुण होते हैं। धर्मशास्त्र में जिन दस गुणों की चर्चा की गई है, धर्म का पालन करने वाले में वह सभी दस गुण होते हैं। योग साधना में भी यम तथा नियमों तथा अन्य योग साधनाओं द्वारा तन तथा मन के विकारों को दूर करके धर्म आचरण करते हुए अपने अंतिम लक्ष्य (मोक्ष) को प्राप्त करता है। मनुष्य को अपने जीवन में धर्म संबंधी उद्देश्य की प्राप्ति को अपने जीवन का आधार बनाना चाहिए।

4. मोक्ष (Moksha)—भारतीय दर्शन में अर्थ, काम तथा धर्म के साथ जिस तत्त्व पर सबसे अधिक जोर दिया गया है वह मोक्ष है। मानव जीवन का सर्वोत्तम उद्देश्य आवागमन के इस चक्र से छुटकारा प्राप्त करके मोक्ष अर्थात् मुक्ति प्राप्त करना है। मोक्ष प्राप्त होने से सभी दुःखों से छुटकारा मिल जाता है। आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप में अत्यन्त निर्मल तथा निष्पाप है। विषय-वासनाओं में लिप्त होने के कारण वह भोग-विलास में ही अपना जीवन समाप्त कर देता है। भोग-विलास के कारण उसके ज्ञान पर पर्दा पड़ा रहता है। परिणामस्वरूप मोक्ष-प्राप्ति का लक्ष्य पुरुष का प्रकृति से पृथक् हो जाना है। जब तक उस पर अज्ञान का पर्दा पड़ा रहता है, वह मोक्ष से दूर रहता है। प्रकृति के सही स्वरूप की पहचान हो जाने पर ही वह मुक्ति को प्राप्त करने में सफल हो सकता है। सांख्यदर्शन में जहाँ इस कार्य में पुरुष को किसी बाह्य उच्च शक्ति की आवश्यकता नहीं होती। वहाँ योगदर्शन इस कार्य में पुरुष विशेष अर्थात् ईश्वर सत्ता को स्वीकार करता है।

ईश्वर में आत्मा के एकाकार (पुरुष का पुरुष विशेष में विलय) होने को ही वेदान्तदर्शन तथा योगदर्शन में मोक्ष अथवा मुक्ति कहा गया है। जब कोई नदी समुद्र में गिर जाती है तो उस नदी का अपना अस्तित्व समाप्त हो जाता है। वह समुद्र का ही एक भाग बन जाती है उसी तरह आत्मा अपनी सारी यात्राएँ पूरी करके अपने अंतिम लक्ष्य को प्राप्त करती हुई मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

योग के साधन पुरुष को अपने अन्तिम लक्ष्य अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करने में सहायता प्रदान करते हैं। कोई भी व्यक्ति किसी तरह के साधन अपनाये बिना साध्य की प्राप्ति नहीं कर सकता। साध्य को प्राप्त करने के लिए कोई न कोई साधन अवश्य अपनाना पड़ता है। इसी तरह मोक्ष प्राप्त करना एक साध्य है तथा यौगिक क्रियाएँ साधन हैं।

सांख्यदर्शन के मत में ज्ञान साध्य अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करने का साधन है तो दूसरी ओर योगदर्शन यौगिक क्रियाओं (साधन) को मोक्ष (साध्य) प्राप्त करने का आधार बताता है।

यौगिक साधनों से मन पर नियन्त्रण रखकर मन को निर्मल बनाया जा सकता है। अपने चित्त पर नियन्त्रण रखकर अर्थात् प्रकृति के बन्धनों से मुक्त करके मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है।

त्रिगुण (Triguna)—यह चराचर जगत् त्रिगुणात्मक है। प्रत्येक पदार्थ त्रिगुणात्मक होने के कारण हर समय किसी-न-किसी गुण से प्रभावित होता रहता है। प्रत्येक व्यक्ति में तीन तरह की वृत्तियों का वर्णन भारतीय धार्मिक ग्रन्थों में किया गया है।

ये तीन वृत्तियाँ अथवा गुण हैं—

सात्त्विक, राजसी और तामसिक। यूं भी कहा जा सकता है कि तीन गुण हैं—सत्त्व गुण, रजोगुण तथा तमोगुण।

1. सात्त्विक वृत्ति अथवा सतोगुण–'सत्व' शब्द की उत्पत्ति 'सत्' से हुई है। जिसका अर्थ है यथार्थ अथवा विद्यमान। गौण अर्थ में सत् का अर्थ पूर्णता भी है। सत्गुण अथवा सात्त्विक वृत्ति मनुष्य को यथार्थ अर्थात् सच की ओर प्रेरित करती है। श्वेत रंग जो शान्ति तथा पवित्रता का परिचायक है, वह सतोगुण का प्रतीक है। भारत का राष्ट्रीय ध्वज भी त्रिगुणात्मक है जो तीन गुणों का परिचायक है। राष्ट्रीय ध्वज का श्वेत रंग शान्ति तथा पवित्रता का परिचायक है। सतोगुण सच्चाई, ईमानदारी, अहिंसा, धर्मपालन, दया, सहानुभूति प्राणी मात्र से प्यार की भावना पर आधारित है। सात्त्विक वृत्ति का मनुष्य इन गुणों से ओत-प्रोत होता है। सात्त्विक वृत्ति का मनुष्य चन्द्रमा की तरह स्वयं शीतल होता है तथा दूसरों को भी शीतलता प्रदान करता है। ऐसे मनुष्य में सांसरिक प्रलोभन तथा इन्द्रिय- सुखों की भावना नहीं होती। सतोगुण शीतलता प्रदान करता है तथा मन में कोमल भावनाएँ जागृत करता है। सात्त्विक वृत्ति मनुष्य को ईर्ष्या तथा द्वेष, घृणा तथा हिंसा से दूर रखती है।

सात्त्विक गुणों की प्रधानता वाले वयिकत का बाह्य व्यक्तित्व स्थिर-सा दिखाई देता है, लेकिन उसकी बुद्धि तथा आत्मा सदैव चिन्तनशील रहती है।

2. रजोगुण अथवा राजसी वृत्ति–रजोगुण की व्युत्पत्ति 'रजस्' शब्द से हुई है जो समस्त भौतिक क्रियाओं का स्रोत है। रजोगुण अथवा राजसी वृत्ति व्यक्ति को उत्तेजनात्मक वृत्तियों की ओर प्रेरित करती है। उसमें सांसारिक सुखों को प्राप्त करने की लालसा बढ़ती जाती है। उसको इन्द्रिय-सुख में आनन्द की अनुभूति होती है। इन्द्रियाँ चंचल बनी रहती हैं। विषय-वासनाओं में मन लगा रहता है, जितना सुख मिलता है, उससे और अधिक सुख प्राप्त करने की लालसा बनी रहती है। जब सुख नहीं मिलता तो उसे दुःख होता है। स्वादिष्ट तथा तरह-तरह के व्यंजनों में उसकी रुचि रहती है। ऐश्वर्यपूर्ण जीवन जीने की प्रवृत्ति ही रजोगुण है।

लाल रंग इस गुण का प्रतीक है। लाल रंग शक्ति, ऊर्जा तथा गतिशीलता का प्रतीक है।

3. तमोगुण अथवा तामसी वृत्ति–तमोगुण की व्युत्पत्ति 'तमस्' शब्द से हुई है जिसका अर्थ है अंधकार अर्थात् अन्धेरा। इस गुण अथवा वृत्ति के लोग दुष्ट प्रकृति के होते हैं। हिंसा, चोरी, धोखा, छल-कपट निर्दयता, निद्रा, आलस्य, द्वेष, ईर्ष्या आदि में ऐसी वृत्ति के लोग आनन्द प्राप्त करते हैं। आलस्य के कारण व्यक्ति की क्रियाशीलता बाधक होती है। उसमें उदासीनता पैदा करके उसे अज्ञानता तथा अन्धकार की ओर ढकेलता है। बासी, मिर्च मसाले वाला भोजन उसे स्वादिष्ट लगता है। दूसरों को दुःख पहुँचाने में उसे आनन्द की अनुभूति होती है।

अमावस्या की रात काली तथा अन्धेरे वाली होती है। इसी तरह काला रंग तमोगुण का प्रतीक है। तमोगुण अन्ततः मनुष्य को पतन की ओर अग्रसर करता है।

इस प्रकार सत्त्वगुण तथा तमोगुण एक-दूसरे के बिल्कुल विपरीत हैं। सत्त्वगुण व्यक्ति में ज्ञान, दया, सहानुभूति, प्रेम, सहनशीलता की भावनाएँ विकसित करता है। व्यक्ति को अज्ञानता के अन्धकार से निकालकर ज्ञान के उजाले की ओर लेकर जाता है। व्यक्ति को जीवन की अच्छाइयों की ओर अग्रसर करके आध्यात्मिक शिखर पर ले जाने का प्रयत्न करता है।

तमोगुण व्यक्ति को घोर अन्धकार तथा अज्ञानता की ओर अग्रसर करता है। व्यक्ति को बुराईयों की ओर धकेलता है। परिणामस्वरूप व्यक्ति का पतन हो जाता है।

त्रिगुण की इस व्यवस्था के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि ये तीनों गुण यथा सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण एक-दूसरे के विरोधी हैं तथा व्यक्ति को विभिन्न धाराओं में बहाते हैं। सत्त्वगुण जहाँ व्यक्ति में ज्ञान तथा क्रियाशीलता पैदा करता है तो तमोगुण अज्ञानता तथा निष्क्रियता को जन्म देता है। रजोगुण ऐश्वर्यपूर्वक जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा देता है। सिद्धान्त रूप में ये तीनों गुण अलग-अलग दिखाई देते हैं। यथार्थ में ये तीनों गुण कभी पृथक् नहीं होते। प्रत्येक व्यक्ति में तीनों गुण विद्यमान होते हैं। अन्तर केवल मात्रा का होता है। किसी व्यक्ति में एक गुण की प्रमुखता होती है तो किसी में दूसरे गुण की अधिकता होती है। जिस गुण

की अधिकता होती है उसी के आधार पर निष्कर्ष निकाला जाता है कि व्यक्ति किस वृत्ति का स्वामी है।

प्रत्येक मानव में तीनों गुण अलग-अलग मात्रा में उपस्थित होते हैं तथा प्रायः एक-दूसरे की पुष्टि करते हैं। इन तीनों गुणों का पारस्परिक सम्बन्ध दीपशिखा, तेल व बाती के समान है। रोशनी के लिए तीनों गुणों अथवा वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। दीपक, तेल व बाती तीनों अलग-अलग होते हुए भी एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं। रोशनी इन तीनों के मिले बिना सम्भव नहीं है।

अन्ततः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ये तीन गुण सत्त्व, रजो तथा तमो अपने आप में प्रकृति के सार तत्त्व माने जाते हैं। संसार की सभी वस्तुओं में इन तीनों की विद्यमानता होती है। संसार में यदि भेदभाव अथवा भिन्नता पाई जाती है तो इसका मूल कारण इन तीनों गुणों की भिन्न मात्रा है।

?

सम्भावित प्रश्न

1. योग के दार्शनिक आधार क्या हैं? वर्णन करो।
   (What are the Philosophical Bases of Yoga ? Explain.)

2. चित्त 'बुद्धि' की पाँच अवस्थाएँ क्या हैं? इनमें से किस अवस्था को प्राप्त करने का योगी प्रयास करता है और क्यों?
   (What are the five states of Chitta 'Mind' ? Which of these states a yogitries to attain and why ?)

3. निम्नलिखित के संदर्भ में योग के दार्शनिक आधार की चर्चा करें—
   (a) जीवन के लक्ष्य (Goals of Life)
   (b) प्रकृति (Prakriti)

◆◆◆

योग का मनोवैज्ञानिक आधार
[Psychological Bases of Yoga]

❖ भूमिका (Introduction)

जर्मन के महान् दार्शनिक हीगल का कथन है कि व्यक्ति की सभी क्रियाओं का सम्बन्ध मन से है। व्यक्ति जब कोई कार्य करता है तो कार्य करने से पूर्व उसके मन में विचार उत्पन्न होता है। एक विचार उठता है तो उसके विरोध में दूसरा विचार उत्पन्न होता है, विचारों में द्वन्द्व होता है। अन्ततः विचारों के उस द्वन्द्व के अन्त में कोई न कोई निर्णय करना पड़ता है। मन में गुणों के अनुसार वह निर्णय लेता है। हीगल ने इन तीनों को वाद, प्रतिवाद तथा संवाद का नाम दिया है।

हीगल का कहना है कि चेतन जगत् में हमारी सामाजिक संस्थाओं में, विचार के क्षेत्र में तथा अन्य सभी क्षेत्रों में विकास की यह प्रक्रिया दृष्टिगोचर होती है। वाद, प्रतिवाद तथा संवाद मन की दशाएँ हैं।

भारतीय दर्शन में मन की इस स्थिति को अधिक महत्त्व दिया गया है। व्यक्ति में सोचने, समझने, अनुभव करने तथा कर्मेन्द्रियों द्वारा किए जाने वाले सभी आन्तरिक तथा बाह्य व्यवहार की कुंजी मानव के अपने भीतर ही होती है जिसका संचालन उसके मन द्वारा होता है। मन द्वारा किए गए इन कार्यों को ही मनोविज्ञान अर्थात् मन का विज्ञान कहा जाता है। व्यक्ति के सभी बाह्य कार्यों को नियन्त्रित करना मन अथवा चित्त का कार्य है।

किसी व्यक्ति का मन जितना निर्मल होगा उतना ही वह अपने व्यवहार पर नियन्त्रण रखने में सफल हो सकेगा। मन को जो बहुत चंचल है वश में करना तथा उसकी कार्यशक्ति को अपने अनुरूप ढालना ही व्यवहार नियन्त्रण की दृष्टि से सबसे उपयुक्त तथा आवश्यक कार्य समझा जा सकता है।

भारतीय दर्शन के अनुसार मन अर्थात् चित्त को नियन्त्रण में करने का सबसे सरल उपाय योग है। महर्षि पतंजलि ने योग के सम्बन्ध में कहा है कि 'अपने सभी रूपों में चित्त की वृत्तियों का निरोध योग द्वारा किया जा सकता है। मन की चंचलता पर नियन्त्रण तथा अंकुश लगाकर उसे सही रास्ते पर चलाना तथा अन्ततः निर्मल चित्त की प्राति कर पूर्ण शान्ति तथा परमानन्द की अनुभूति केवल योग द्वारा ही सम्भव है।'

ध्यान तथा धारणा से निर्मल चित्त की प्राप्ति तथा चंचल मन पर नियन्त्रण करने के विभिन्न उपायों की चर्चा करने का प्रयास इस अध्याय में किया जाएगा।

❖ चित्त (Chitta)

चित्त-मन, बुद्धि तथा अहंकार का योग है। मन त्रिगुणात्मक है।

चित्त शब्द चिति धातु से बना है। चित्त ज्ञान स्वरूप जीवात्मा के संयोग से कर्म द्वारा समस्त भोगों का सम्पादन करता है। योगी यौगिक क्रियाओं से मन को निर्मल बनाने के लिए चित्तवृत्तियों का दमन करते हैं। मन को विषयों की तरफ जाने से रोकना चित्त नियन्त्रण कहलाता है।

चित्त उस नदी के समान है जिसकी दो धाराएँ हैं। एक धारा व्यक्ति को विषय-वासनाओं तथा सांसरिक सुखों की ओर उन्मुख अथवा प्रेरित करती है तो दूसरी धारा संसार की मोह माया से मुक्त करवा कर उसे कल्याण की ओर ले जाती है। जर्मन विचारक हीगल का भी यही कथन है कि मन में विचार उठते रहते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति के मन में अच्छे-बुरे विचार उठते हैं। जो व्यक्ति अच्छे विचार नहीं रखता वह कर्म भी अच्छे नहीं करता। वह सांसारिक सुखों को भोगने के लिए संसार में ही रहता है। पुनर्जन्म के चक्कर में फँसा रहता है।

नदी की दूसरी धारा व्यक्ति को सद्‌मार्ग पर लगाती है। व्यक्ति सदैव भलाई के कार्य करता है उसकी वृत्तियाँ सद् विचारों के कारण उसे कल्याण के मार्ग पर लगाती हैं। कल्याण के मार्ग पर चलते हुए वह अन्ततः मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है। जन्म-मरण के चक्र से सदैव के लिए छुटकारा पाने में सफल हो जाता है।

चित्त की तुलना पवन अर्थात् हवा से भी की जा सकती है। यदि पवन का संसर्ग सुगन्धित पुष्पों से होता है तो वह वातावरण में सुगन्ध फैलायेगा। लोग उस सुगन्ध से आनन्द की अनुभूति करेंगे। यदि वायु का संसर्ग सड़े हुए पदार्थों से होता है तो वह वातावरण में दुर्गन्ध फैलाएगा।

वायु के समान चित्त की स्थिति है। चित्त राग, द्वेष, काम-क्रोध, मोह, ममता, भय तथा माया में पड़ा रहता है। इन्द्रियसुख की लालसा उसे अपनी ओर आकर्षित करती है। वह इस भ्रमजाल में ही पड़ा रहता है। अन्त में दुःख उठाता है तथा आवागमन के चक्र में पड़ा रहता है।

चित्त का स्वरूप व प्रकृति
(Nature and Composition of Chitta)

चित्त गौण रूप से मन, बुद्धि तथा अहंकार का योग है। वास्तव में चित्त का सम्बन्ध जीवात्मा से है।

सृष्टि के आरम्भ से ही जीव के साथ चित्त का संयोग बना हुआ है। अहंकार के साथ भी चित्त का सम्बन्ध है। जीवात्मा तथा चित्त एकदेशीय है। जीव है तो चित्त है, चित्त है तो जीव है। दोनों को एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता।

चित्तवृत्ति क्या है?
(What is Chittavrati ?)

चित्त का अर्थ है मन तथा वृत्ति का अर्थ है स्वभाव। प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वभाव के अनुसार व्यवहार करता है।

वृतु—'वर्तने' धातु से वृत्ति शब्द बना है। वृत्ति का शाब्दिक अर्थ है 'व्यवहार करना'।

व्यवहार दो प्रकार का होता है—स्थूल तथा सूक्ष्म।

व्यक्ति की दिन-प्रतिदिन की क्रियाओं में जो व्यवहार दृष्टिगोचर होता है वह स्थूल व्यवहार कहलाता है। जो व्यवहार दिखाई नहीं देता उसे सूक्ष्म व्यवहार कहा जाता है। अन्तःकरण अर्थात् मन का जितना कर्म व्यापार अथवा कार्य होता है, वह सब गुप्त तथा सूक्ष्म होता है। सूक्ष्म व्यवहार खुली आँखों से दिखाई नहीं देता। निद्रा में किया गया कार्य अथवा किसी को याद करना आदि सभी सूक्ष्म व्यवहार की श्रेणी में आता है। अन्तःकरण की सभी गतिविधियों को सूक्ष्म व्यवहार कहा जाता सकता है।

इन सूक्ष्म व्यापारों तथा व्यवहार से ही वृत्ति अथवा स्वभाव का सम्बन्ध होता है।

मनुष्य की वृत्तियाँ निम्न प्रकार की हैं—

1. प्रमाण—किसी तथ्य की सत्यता को जानने के लिए प्रमाण की आवश्यकता पड़ती है। प्रमाण के अभाव में दूसरों से अपनी बात मनवाना सरल नहीं होता। यहाँ पर प्रमाण का अर्थ ज्ञान से लिया गया है। ज्ञान रूपी साधन को साधक के सम्मुख लाना ही प्रमाण कहलाता है।

प्रमाण तीन प्रकार के होते हैं—

(अ) **प्रत्यक्ष**—जो सामने दृष्टिगोचर होता है, जो स्वयं देखा जा सकता है। कहा भी जाता है कि प्रत्यक्ष को प्रमाण की क्या आवश्यकता।

(ब) **अनुमान**—जब किसी विषय को प्रत्यक्ष न देखा जा सके तो उसके बारे कल्पना की जाती है कि उसका स्वरूप वैसा हो सकता है। जब कल्पना के आधार पर किसी विषय का चित्रण किया जाता है तो उस चित्रण को अनुमान का आधार माना जाता है।

(स) **आगम**–ज्ञानी, तपस्वी तथा सत्यवादी पुरुषों द्वारा जो ज्ञान की बातें कही जाती हैं ऐसे पुरुष अपने अनुभव के आधार पर तथ्यों की पुष्टि करते हैं। उनकी वाणी को आगम कहा जाता है। सज्जन पुरुषों की ऐसी वाणी को लोग स्वीकार कर लेते हैं।

2. विपर्यय–यह विश्व भ्रम-जाल है। व्यक्ति मोहमाया, ममता के भ्रमजाल में फँसा रहता है। जो असत्य है, उसी को सत्य मान बैठता है। हम ऐसी वस्तु की कल्पना करते हैं जो कि वास्तव में नहीं है। इसे विपर्यय कहा जाता है। रात के अन्धेरे में सर्प को रस्सी समझने का भ्रम होता है अथवा रस्सी को सर्प समझने से भय उत्पन्न होता है।

3. विकल्प–जिस ज्ञान के आधार पर हम ऐसी वस्तु की कल्पना करते हैं जो उसका स्थान ले सके, एक के स्थान पर दूसरी उसकी पूर्ति कर सके।

4. निद्रा–शरीर की वह अवस्था जिसमें मनुष्य की चेतना शून्य हो जाती है। गहरी निद्रा में व्यक्ति मृतप्राय होता है। निद्रा तथा जागरण के बीच की अवस्था को सुषुप्ति अवस्था कहा जाता है जिसमें व्यक्ति सपने देखता है। सपना यथार्थ नहीं होता।

5. स्मृति–पूर्व अनुभवों के आधार जो पुनः स्मरणात्मक चेतना होती है, उसे स्मृति कहते हैं। वास्तव में हमारी आत्मा का मन के साथ एक विशेष प्रकार का सम्बन्ध होता है। मन में जो पूर्व अनुभवों के संस्कार शेष रह जाते हैं, उनकी पुनरावृत्ति को ही स्मृति कहा जाता है। भारतीय दर्शन में ऋषि-मुनियों ने स्मृति के आधार पर ग्रन्थों की रचना की है। धार्मिक ग्रन्थों में स्मृति का महत्त्वपूर्ण योगदान है। साधारण व्यक्ति अपने पूर्व जीवन के सुख-दुःख जो उसके स्मृति पटल पर छाये होते हैं, उन्हें शाश्वत मानकर दुःख तथा सुख की अनुभूति करता है।

❖ चित्त-वृत्तियों पर नियन्त्रण की विधि (Method of Control over Chitta)

हमारा मन अर्थात् चित्त बड़ा चंचल है। बे-लगाम घोड़े की तरह यह दौड़ता रहता है। इस चंचल चित्त पर नियन्त्रण करना बहुत अनिवार्य है। कोई भी साधक मन पर नियन्त्रण किए बिना साधना नहीं कर सकता। योग ही एक ऐसा साधन है, जिससे चित्त पर नियन्त्रण किया जा सकता है। महर्षि पतंजलि ने भी योग को ही सहायक साधन बताया है। वैराग्य, मित्रता तथा अभ्यास से चित्त पर नियन्त्रण किया जा सकता है।

चित्त जब सांसारिक विषय वासनाओं में लिप्त रहता है। भोग-विलास से उसे सन्तुष्टि नहीं होती। मन चंचल बना रहता है। मन में चंचलता उत्पन्न होने का नाम वृत्ति है। चित्त की इस वृत्ति को नियन्त्रित करना ही योग है। 'रजस् तथा तमस् गुण तथा विषय-वासनाओं आदि से वृत्ति की उत्पत्ति होती है जिससे चित्त बाह्यमुखी हो जाता है। योग से चित्त-वृत्तियों पर नियन्त्रण करके उसे बाह्यमुखी से अंतःमुखी बनाया जा सकता है।

चित्त की अवस्था का ज्ञान–

चित्त पर नियन्त्रण तभी रखा जा सकता है, यदि चित्त की अवस्थाओं की जानकारी हो। चित्त की अवस्थाओं की जानकारी के बिना उस पर नियन्त्रण रखना सम्भव नहीं है।

महर्षि पतंजलि ने चित्त की निम्नलिखित अवस्थाएँ बताई हैं–

1. **मूढावस्था**–यह अवस्था विवेकशून्य व्यक्ति की होती है। तमोगुण की प्रधानता के कारण मनुष्य लोभ, क्रोध, हिंसा, भोग-विलास आदि में लिप्त रहता है। समाज में उसका कोई सम्मान नहीं होता है। ऐसा व्यक्ति समाज में सबसे निम्न होता है।
2. **क्षिप्तावस्था**–इस अवस्था में व्यक्ति का मन चंचल तथा अस्थिर होता है। रजोगुण तथा तमोगुण से अभिभूत रहता है। रजोगुण तथा तमोगुण की अधिकता के कारण ऐसा व्यक्ति राग-द्वेष तथा मोहमाया आदि में लिप्त रहता है। समाज में ऐसे व्यक्तियों की संख्या अधिक होती है।
3. **विक्षिप्तावस्था**–इस अवस्था में तमोगुण का प्रभाव कम हो जाता है। तमोगुण के स्थान पर रजोगुण तथा सत्त्वगुण सक्रिय होते हैं। साधक पर कभी रजोगुण तथा कभी सत्त्वगुण का प्रभाव रहता है।

वह सत्त्वगुण तथा रजोगुण के बीच खड़ा होता है। उसके मन में कभी काम, क्रोध व ऐश्वर्य प्राप्ति की इच्छा होती है तो कभी सभी कुछ त्याग कर आध्यात्मिकता की ओर बढ़ने की चाह पैदा होती है। मन अस्थिर रहता है। किसी एक विषय पर स्थिर नहीं रहता। समाज में साधारण एवम् उच्च दोनों स्तरों के व्यक्तियों में ऐसी मनोदशा देखी जाती है।

4. **एकाग्रावस्था**–इस अवस्था में साधक के मन में तमोगुण तथा रजोगुण का प्रभाव समाप्त हो जाता है। केवल सत्त्वगुण ही क्रियाशील रहता है। सत्त्वगुण के कारण मन की चंचलता समाप्त हो जाती है। विषय-वासनाओं से मन हटकर आध्यात्मिकता की ओर लगता चला जाता है। उसका मन स्थिर हो जाता है। योगी के अन्दर यह अवस्था दिखाई देती है।

5. **निरुद्धावस्था**–चित्त वृत्ति पर नियन्त्रण अथवा वृत्ति की यह अन्तिम तथा महत्त्वपूर्ण अवस्था होती है। इस अवस्था में साधक तीनों गुणों से रहित हो जाता है। उसके चित्त में सत्त्वगुण, रजोगुण तथा के कारण उत्पन्न होने वाली भावनाएँ अथवा विचार समाप्त हो जाते हैं। तीनों गुणों से मुक्त होकर साधक ब्रह्म में लीन हो जाता है। साधक जन्म-मरण अर्थात् आवागमन के चक्र से छूटकर मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

चित्त की उन सभी अवस्थाओं का ज्ञान साधक को अपने चित्त पर नियन्त्रण करने व जीवन के अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति करने में सहायक होता है।

चित्त नियन्त्रण में योग साधन
(Withdrawal)

प्रत्याहार–प्रत्याहार दो शब्दों के मेल से बना है– प्रति + आहार।

प्रति का अर्थ है विपरीत तथा आहार का अर्थ है भोजन। प्रत्याहार का अर्थ हुआ इच्छा रूपी भोजन पर नियन्त्रण करना। दूसरे शब्दों में इन्द्रियों को विषयों की ओर अग्रसर होने से रोकना।

स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।

इन्द्रियों के अपने-अपने विषय रूप-रस आदि का सन्निकर्ष न होने पर चित्त वृत्ति के अनुरूप ही इन्द्रिया हो जाती है। इसलिए जब साधक विवेक-वैराग्य आदि से अपने मन के ऊपर नियन्त्रण कर लेता है, तब इन्द्रियों का जीतना अपने आप आसान हो जाता है, क्योंकि कि मन ही इन्द्रियों को चलाने वाला है।

यह मनोजय अथवा विषयों से विमुख होकर मन तथा इन्द्रियों को अन्तर्मुखी करना ही प्रत्याहार है।

योगशास्त्र में कहा गया है कि इन्द्रियाँ स्वभाव से ही विषयों की ओर आकर्षित होती हैं। योग साधना द्वारा बलपूर्वक इन्द्रियों को विषयों की ओर जाने से रोकना ही प्रत्याहार है। हमारी पाँच इन्द्रियाँ–आँख, कान, नाक, जिह्वा व त्वचा स्वभावतः रूप, रस, गन्ध व स्पर्श आदि स्व-विषयों की ओर आकृष्ट होती हैं। इन विषयों के प्रति उनकी आसक्ति को रोकना ही प्रत्याहार है।

ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम।

प्रत्याहार के द्वारा साधक का इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण हो जाता है। इन्द्रिय-आसक्ति मन को विचलित कर देती है। इन्द्रियों के विषय-भोगों में आसक्ति रखने वाले व्यक्ति की प्रीति भोगो में ही होती है, ईश्वर में नहीं।

जिस प्रकार सूर्य देव दिन के तीसरे पहर के पश्चात् अपनी किरणों को समेटने लग जाता है, कछुआ अपने बचाव के लिए अपने अंगों को समेट लेता है, उसी प्रकार साधक अभ्यास और वैराग्य के द्वारा यथार्थ बोध से प्रत्याहार सिद्ध होने पर इन्द्रियजयी होता है। वह यम, नियम, आसन, प्राणायाम का अभ्यास करता हुआ इन्द्रियों के विकारों को दूर करने में सफल हो जाता है। विषय-वासनाओं से चित्त हट जाता है तथा साधक को ईश्वर में प्रीति, परम रस व परम सुख का अनुभव होने लगता है। उसे संसार दुःखमय प्रतीत होने लगता है। प्रत्याहार एक तरह से 'इन्द्रिय तप' है। चित्तवृत्तियों का निरोध होने पर ही इन्द्रियों का निग्रह होता है।

इन्द्रियनिग्रह से शक्तिसिद्धि तथा अन्त में मोक्ष की प्राप्ति होती है।

परिणाम-ताप-संस्कार-दुखैगुर्णवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वविवेकिनः ।

कर्माशय (संचित कर्मों का समूह) का फल ही जन्म, आयु तथा भोग होता है ये जन्म, आयु तथा भोग पुण्य कर्मों के कारण सुखमय तथा अपुण्य कर्मों के कारण दुःखमय होते हैं परन्तु योगी के लिए लौकिक विषयों का सुख भी दुःखमय ही होता है। इसका कारण है कि यह शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि वासना रूप विषय-सुख व्यक्ति को अविद्यावश ही प्रतीत होता है। जब इन सुखों के परिणाम आदि पर विचार किया जाता है तो निश्चित रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि समस्त सांसारिक सुख भी दुःखमय होते हैं क्योंकि ये सुख प्राणियों को पीड़ा दिए बिना नहीं भोगे जा सकते तथा इन सुखों में भी सूक्ष्म परिणाम-संताप व संस्कार रूप से जो दुःख मिश्रित है, उसे सामान्यजन अनुभव कर पाते। योगी ही इनके परिणामों को जान लेने में सफल होता है।

हिरण, हाथी, पतंगा तथा मछली केवल एक इन्द्रिय की प्रबलता के कारण दुःख झेलते हैं तथा विनाश को प्राप्त हो जाते हैं। मनुष्य को पंच इन्द्रियों का दास है ऐसी स्थिति में वह विनाश की ओर तो प्रवृत्त होगा ही।

साधक दुःख की अत्यधिक निवृत्ति के लिए तथा ईश्वर प्राप्ति के लिए पूर्ण पुरुषार्थ करता है।

प्रत्याहार ही एक प्रबल साधन है जिसके द्वारा मन को वश में किया जा सकता है।

इन्द्रियों पर नियन्त्रण करके साधक अपने जीवन के परम लक्ष्य अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करने की ओर अग्रसर होता है। जो दुःख सामान्य जन को अनुभव नहीं होते, योगी उनके परिणामों को जान लेते हैं। इसलिए लोगों को 'सुख' प्रतीत होने वाला 'लौकिक सुख' भी उन्हें 'दुःख' लगता है।

❖ धारणा (Concentration)

धारणा शब्द का अर्थ है धारण करना अर्थात् चित्त वृत्तियों को सम्भालना। नाभिचक्र, हृदय पुण्डरीक, मूर्धाज्योति, भ्रूमध्य, नासिकाग्र, जिह्वाग्र आदि शारीरिक स्थानों में से किसी एक स्थान पर मन का निग्रह अथवा एकाग्र होना धारणा कहलाता है।

प्रत्याहार द्वारा जब इन्द्रियाँ तथा मन अन्तर्मुख होने लगें, तो उनको किसी स्थान विशेष पर वृत्ति मात्र से स्थिर करने का नाम 'धारणा' है।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि से उचित अभ्यास के पश्चात् यह कार्य सरलता से होता है। 'प्राणायाम' से प्राण, वायु तथा 'प्रत्याहार' से इन्द्रियों के वश में होने से चित्त में 'विक्षेप' नहीं रहता। धारणा एक प्रयास है, जिसमें ध्याता, ध्येय व ध्यान का अलग-अलग अस्तित्व रहता है। धारणा में चित्त अपनी तीन अवस्थाओं—मूढ़, क्षिप्त तथा विक्षिप्त में रहता है जो रजोगुण से प्रभावित होती है। इसी के कारण चित्त एक विषय पर एकाग्र नहीं होता। इसमें सत्त्वगुण सुप्तावस्था में रहता है। शांत चित्त को ही एक साधक किसी एक लक्ष्य पर सफलतापूर्वक लगा सकता है। विक्षिप्त चित्त वाले साधक का धारणा में स्थित होना बहुत कठिन है। मन को एक प्रकार से स्थूल विषय से हटाकर सूक्ष्म लक्ष्य अर्थात् आत्मा परमात्मा आदि पर केन्द्रित करने को धारणा कहते हैं।

धारणा ध्यान की नींव है। जैसे-जैसे धारणा का अभ्यास होगा, ध्यान भी स्थिर होने लगेगा।

ध्यान (Contemplation)

ध्यान शब्द की उत्पत्ति ध्यै-धातु से 'ल्युट्' प्रत्यय लगाने से हुई है, जिसका अर्थ है चिन्तन अथवा मनन करना।

साधारण शब्दों में ध्यान का तात्पर्य है, वर्तमान में जीना। वर्तमान में जीकर ही मन की चंचलता को समाप्त किया जा सकता है, एकाग्रता लाई जा सकती है। इसी से मानसिक शक्ति के सारे भण्डार खुलते हैं।

महर्षि पतंजलि के अनुसार धारणा करते समय चित्त वृत्तियों का स्थिर बने रहना ही ध्यान है।

प्रत्याहार द्वारा एकीकृत चित्तवृत्तियों को धारणा का अभ्यास करते हुए एक लक्ष्य पर निर्धारित किया जाता है। इन एकीकृत चित्तवृत्तियों के बीच कोई अन्य वृत्ति न आए। निरन्तर उसका ही मनन होता है, उसे ध्यान कहते हैं। दूसरे शब्दों में ध्येय विषय का लगातार मनन ही ध्यान है।

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्

उस धारणा किए हुए अर्थात् नाभिचक्र, भ्रूमध्य अथवा हृदय आदि में ध्येय रूप परमेश्वर में प्रत्यय एकान्तता-ज्ञान का एक-सा प्रवाह ध्यान है। उदाहरण के लिए जब नदी समुद्र में प्रवेश करती है, तब वह समुद्र के साथ एकाकार हो जाती है, सदृश प्रवाह हो जाती है। वैसे ही ध्यान के समय सच्चिदानन्द परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य विषय का स्मरण न करना, वरन् उसी अन्तर्यामी ब्रह्म के आनन्दमय, ज्योतिर्मय व शान्तिमय स्वरूप में मग्न हो जाना ध्यान है।

ध्यान चित्त की स्थिरता का माध्यम है, जिसमें चित्त एकाग्र हो जाता है, रजोगुण व तमोगुण का प्रभाव समाप्त हो जाता है तथा सत्त्वगुण की प्रधानता हो जाती है। इसमें चित्त की क्षिप्त, विक्षिप्त तथा मूढ़ अवस्थाएँ विलीन हो जाती हैं।

ध्यान हमारे जीवन के साथ प्रतिपल जुड़ा हुआ है। भारतीय संस्कृति में तो ध्यान प्रत्येक क्रिया का पूरक होता था। आज भी हमें अपने घर व परिवार के बड़े व्यक्ति किसी कार्य को विधिवत् सम्पन्न करने से पहले यह अवश्य कहते हैं कि भाई जरा ध्यान से यह कार्य करना।

आज हम ध्यान शब्द का प्रयोग तो करते हैं परन्तु ध्यान क्या है, इस ओर किसी का ध्यान नहीं जाता। ध्यान जीवन का अपरिहार्य अंग है। ध्यान के बिना जीवन अधूरा है। ड्राईवरों के विषय में विशेष रूप से कहा जाता है कि 'ध्यान हटा दुर्घटना हुई।'

ध्यान के बिना हम अपने किसी भी भौतिक व आध्यात्मिक लक्ष्य में सफल नहीं हो सकते। ध्यान से ही आनन्दमय व शान्तिमय जीवन व्यतीत कर सकते हैं। यद्यपि ध्यान अपने आप में एक बहुत बड़ी यौगिक प्रक्रिया है फिर भी ध्यान जन-साधारण के लिए भी बहुत महत्त्वपूर्ण है।

ध्यान के प्रकार
(Types of Contemplation)

धिरंड ऋषि ने ध्यान के तीन प्रकार बताएँ हैं–

1. **स्थूल ध्यान**–व्यक्ति का जिस भी देवी-देवता में विश्वास तथा श्रद्धा होती है, उस इष्ट देवता की मूर्ति का ध्यान स्थूल ध्यान कहा जाता है।
2. **ज्योतिर्मय ध्यान**–इस ध्यान की प्रक्रिया में ज्योति स्वरूप ब्रह्म का ध्यान किया जाता है।
3. **सूक्ष्म ध्यान**–सूक्ष्म ध्यान कठिन ध्यान है। वहुत प्रयास के पश्चात् ही यह ध्यान सम्भव होता है। इस ध्यान में कुंडलिनी का ध्यान किया जाता है। कुंडलिनी रीढ की हड्डी के सबसे नीचे के भाग में होती है। यह वहुत सूक्ष्म है। इसे योग द्वारा ही जागृत किया जाता है।

भक्ति सागर के अनुसार ध्यान–

भक्ति सागर के अनुसार ध्यान के निम्न प्रकार हैं–

1. **पदस्थ ध्यान**–इस ध्यान में साधक अपने किसी भी इष्ट देव की मूर्ति को आधार बनाता है। वह अपने इस इष्टदेव का नख से शिख तक ध्यान करता है। उसके पश्चात् इष्ट के चरणों में अपना ध्यान केन्द्रित कर, कुंभक लगाकर 'ओइम्' का जाप करता है। जाप करने से मन निश्छल हो जाता है। वह अपने तीनों प्रकार के दुःख दैविक, दैहिक तथा से मुक्त हो जाता है।
2. **पिण्डस्थ ध्यान**–पिण्डस्थ ध्यान में साधक विभिन्न चक्रों का ध्यान करता है। सबसे पहले वह मूलाधार चक्र पर ध्यान केन्द्रित करता है। जहाँ चार पंखडियों वाला कमल है, जिसका रंग लाल व देवता गणेश है। इसके पश्चात् साधक क्रमानुसार अन्य चक्रों पर अपना ध्यान एकाग्र करता है। इस एकाग्रता के कारण वह आलौकिक ज्योति के दर्शन करता है, जिससे उसे अपने पूर्व जन्मों का ज्ञान भी प्राप्त होता है।

अन्त में साधक अथवा योगी हजार पंक्तियों वाले चक्र में ध्यान लगाता है, जहाँ से अमृत की वर्षा होती रहती है। यह ध्यान की सर्वोत्तम विधि मानी जाती है।

3. **रूपस्थ ध्यान**–जैसा कि इस ध्यान के शब्द से स्पष्ट है। इस ध्यान में साधक अपने ध्यान को भ्रूमध्य में स्थिर करके कई प्रकार के दृश्यों का अवलोकन करता है।
   सर्वप्रथम वह अग्नि का फूल देखता है, उसके पश्चात् वह दीपक व तारों का समूह देखता है इसके पश्चात् वह अनेक चन्द्रमा व सूर्य देखता है। इस प्रकार दृश्य बदलते रहते हैं। साधक को चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश दिखाई देता है।
4. **रूपाति ध्यान**–यह ध्यान सभी ध्यानों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इस ध्यान में निराकार ब्रह्म का ध्यान किया जाता है, जो कि शंकराचार्य के 'अद्वैतवाद' से जुड़ा हुआ है। इसमें साधक के समक्ष कोई चित्र अथवा आकार नहीं होता। साधक ऐसे ब्रह्म में मन को लगाता है, जिसका कोई आकार नहीं अर्थात् शून्य है। इसमें साधक का मन एकाग्र होकर ब्रह्म में लीन हो जाता है। यह ध्यान की अन्तिम अवस्था होती है।

ध्यान के पश्चात् अन्तिम चरण समाधि है। ध्यान समाधि की आरम्भिक अवस्था है।

ध्यान प्रत्येक व्यक्ति के लिए परमावश्यक है। सन्यासी, गृहस्थी, विद्यार्थी तथा अन्य सभी व्यवसायों में लगे हुए स्त्री पुरुष सबको ध्यान से लाभ मिलता है। ध्यान स्वस्थ लोगों के लिए भी और रोगियों के लिए भी अनिवार्य है। पूर्ण लगे अथवा अधूरा प्रतिदिन जितना भी समय मिल जाए ध्यान अवश्य करना चाहिए।

ध्यान के सम्बन्ध में कुछ दिशा निर्देश–

1. ध्यान के लिए स्थान शुद्ध, हवादार, एकान्त, विघ्न रहित हो। नित्य एक ही स्थान हो तो ज्यादा अच्छा है।
2. ध्यान करने से पहले प्राणायाम अवश्य करें। क्योंकि प्राणायाम के द्वारा मन पूर्ण शान्त व एकाग्र हो जाता है। शान्त मन के द्वारा ही धारणा व ध्यान सम्भव हैं।
3. रात को सोने से पहले मुँह, हाथ, पैर धोकर कुछ मिनट का ध्यान बहुत लाभदायक है। मन शान्त होगा। नींद अच्छी आएगी।
4. कपाल भाति तथा अनुलोम-विलोम-प्राणायाम विधिपूर्वक करने से मन निर्विषय हो जाता है। परिणामस्वरूप ध्यान स्वतः लगने लगता है।
5. ध्यान में एक दिन का भी अवकाश न पड़े। नियमपूर्वक प्रतिदिन ध्यान करें।
6. ध्यान के लिए सर्वोत्तम समय ब्रह्म मुहूर्त है—सूर्योदय के दो ढाई घण्टे पूर्व से सूर्य के प्रकट होने तक।
7. ध्यान करते समय ध्यान को ही सर्वोपरि महत्त्व दें। ध्यान के समय किसी भी अन्य विचार को चाहे कितना भी शुभ क्यों न हो, महत्त्व न दें। जैसे—दान करना, सेवा, परोपकार करना, विद्याध्ययन, गुरु-सेवा आदि यद्यपि पवित्र कार्य हैं, परन्तु इनका ध्यान के समय चिन्तन न करें।
8. ध्यान के समय मन व इन्द्रियों को अन्तर्मुखी बनाएँ।
9. बाह्य सुख प्राप्ति का विचार व सुख के समस्त साधन सब कुछ दुःख स्वरूप हैं। विश्व में जब तक सुख-बुद्धि बनी रहेगी तब तक भगवत् सम्पूर्ण, ईश्वर प्रणिधान नहीं हो सकेगा तथा बिना ईश्वर प्रणिधान के ध्यान व समाधि तक पहुँचना कठिन है।
10. ध्यान के लिए अर्थपूर्वक ओंकार जप का अवलम्बन सर्वोत्तम है। भगवान् ने भ्रुवों, आँख, नाक, कान, ओष्ठ, हृदय व छाती समस्त अंगों की आकृति ओंकारमयी बनाई है।
11. श्वास-प्रश्वास पर मन को एकाग्र करके प्राण के साथ ओंकार की उपासना करनी चाहिए।

सभी इन्द्रियाँ सदोष हैं। क्योंकि आँखें शुभ-अशुभ दोनों देखती हैं। कान भ्रद-अभद्र सब सुनते हैं। नाक सुगन्ध-दुर्गन्ध दोनों को ही सूँघती है, वाणी झूठ और सत्य बोलती है, रसना भक्ष्य तथा अभक्ष्य दोनों प्रकार का भक्षण करती है। मन में भी कुविचार तथा सुविचार आते हैं। प्राण ही पूर्ण निर्दोष तथा निर्विकार है। इसलिए निर्विकार व निर्दोष ब्रह्म के साक्षात्कार के लिए हमें निर्दोष प्राण का आश्रय लेकर प्राण के साथ उपासना करनी चाहिए।

ध्यान के साधन
(Means of Contemplation)

ध्यान के विभिन्न साधन हैं, जो निम्नलिखित हैं–

1. आसन–ध्यान का सबसे महत्त्वपूर्ण साधन आसन है। आसन करते समय जिस अंग पर आसन का दबाव पडे, उसी अंग पर मन स्थिर करें। इससे चित्त एकाग्र होने लगता है। आसन मन को एकाग्र करने का सरल साधन है। इससे शारीरिक स्वास्थ्य तो मिलता ही है, साथ ही मानसिक स्वास्थ्य तथा शक्ति भी मिलती है।

2. प्राणायाम–मन तथा प्राण का गहरा सम्बन्ध है। चित्त की अस्थिरता के दो ही कारण होते हैं–एक वासना तथा दूसरा प्राण (श्वास)। इनमें से एक पर विजय मिल जाए तो दूसरे पर स्वयं ही विजय मिल जाती है।

मन को श्वास पर टिकाने से मन इन्द्रियों तथा उनके विषयों से अलग हो जाता है। मन में कोई विचार, कोई कल्पना नहीं उपजती। न कोई इच्छा होती है तथा न ही कोई चिन्ता। मन इन्द्रियों से, उनके विषयों से, विचार तथा कल्पना से भी हट जाता है।

केवल श्वास में ही लय है। श्वास एक ऐसी वास्तविकता है, जिसे मन अनुभव करता है। श्वास वर्तमान की, इस क्षण की सबसे बड़ी सच्चाई है। श्वास हमारे अन्दर भी है तथा बाहर भी।

साधारणतया मन के स्वभाव के विरुद्ध कोई कार्य करे तो वह विद्रोह कर देता है, परेशानियाँ खड़ी कर देता है, परन्तु श्वास पर लगा मन अपने स्वभाव के बिल्कुल विपरीत कार्य कर रहा होता है तथा उसे इस बात का पता भी नहीं चलता।

मन की चंचलता को दूर करने का, मन को एकाग्र करने का, मन को शान्त करने का प्राणायाम सबसे सरल व सबसे उत्तम साधन है।

3. विचार-दर्शन–ध्यान में बैठ जाइए। मन में जो भी जैसे भी विचार आएं, उन्हें आने दीजिए। विचारों को लाना नहीं है, रोकना नहीं है, दबाना नहीं है। केवल द्रष्टा बनकर विचारों को चुपचाप देखते जाना है कि मन कैसे एक विचार से दूसरे विचार, एक घटना से दूसरी घटना पर घूमता है। पुरानी घटनाओं को दोहराता है तथा भविष्य की कल्पना करता है। ऐसा भाव लाइए कि आप मन नहीं है, आप मन तथा उसके कार्यों को देख रहे हैं। कुछ दिनों के अभ्यास से विचार अपने आप ही थमने लगेंगे। मन की गति रुकने लगेगी तथा मन स्वतः ही स्थिर होने लगेगा।

4. विचार-सर्जन–विचार सर्जन में विचारों को सायास लाया जाता है तथा फिर उसे दूसरे विचार से हटा दिया जाता है। एक समय में मन में एक ही विचार रह सकता है। योगी अथवा साधक को चाहिए कि वह ध्यान में बैठे। मन में एक विचार लाए, थोड़ी देर उस पर ध्यान लगाने का प्रयास करे। फिर दूसरा, तीसरा विचार मन में लाता रहे तथा उसे मन से हटाता रहे। इस विधि से अभ्यास करने पर योगी मन पर काबू पाने में सफल हो जाएगा। यह मन को वश में करने का बहुत उत्तम साधन है।

5. त्राटक–किसी वस्तु पर निश्चल दृष्टि स्थिर करना त्राटक है। आसन में बैठकर आँखों के सामने, उतनी ही ऊँचाई पर अपने इष्ट देवता की मूर्ति रख लें। अपने भ्रूमध्य पर अथवा नासिकाग्र पर दृष्टि टिका कर, दोनों नेत्रों को पूरा खोलकर इष्ट देव पर टकटकी बाँधकर बिना पलक झपकाएँ तब तक देखें, जब तक आँखों में आँसू न आ जाएँ। आंसू गिरने से पूर्व ही आँखे बंद कर लें। इस तरह बार-बार करने से मन में एकाग्रता आ जाती है।

6. विचार-विसर्जन–मन में कोई विचार स्वतः आने दें। फिर उस विचार को हटा दे। मन में विचार आने दें तथा उन्हें हटाते रहें। इस विधि में विचारों को लाना नहीं है तथा न ही विचारों को आने से रोकना है। केवल विचारों को हटा देना है। जो विचार अपने आप आएँ, उन्हें रुकने नहीं देना है, हटा देना है। इसी प्रकार 10, 12 मिनट प्रतिदिन अभ्यास करें। मन में विचारों का आगमन थमने लगता है, मन विचारों से शून्य, स्थिर तथा शांत हो जाता है।

7. ध्वनि योग–ध्वनि योग भी ध्यान के विभिन्न साधनों में महत्त्वपूर्ण साधन है। इस विधि में ध्वनि की गति एक समान हो तथा स्वर में मधुरता हो। ध्वनि को ध्यान से सुनें, पूर्णश्रवण शक्ति को उस ध्वनि पर केन्द्रित करें। नित्य अभ्यास करें।

बिना आवाज निकाले 'ओउ्म' का उच्चारण तथा ध्यान से उसे सुनने का प्रयास करें। इसके अभ्यास से मन ध्वनि में डूबने लगता है तथा मन शीघ्र एकाग्र होता है।

8. अजपा जप–ध्यान के साधन के रूप में इस विधि का प्रयोग भी साधक द्वारा किया जाता है। मन ही मन किसी मंत्र का जप करें। परन्तु जप में आवाज नहीं निकालनी है, वरन् जप मन ही मन करना है। हर श्वास के साथ मंत्र को मिलाना है। श्वास और मन को एक ही डोर में बांधना है।

उदाहरण के लिए ॐ के साथ श्वास लेना तथा ॐ के साथ ही श्वास छोड़ना।

पूरी चेतना श्वास तथा मंत्र के साथ रहनी चाहिए। इससे श्वास स्थिर होता है। जिससे मन भी स्थिर होता है। जिस समय मानसिक तनाव हो, काम, क्रोध आदि की मात्रा बढ़ जाए तो श्वास क्रिया के साथ मंत्र का जप करने से कुछ ही क्षणों में मानसिक तनाव दूर हो जाता है।

अजपा जप मन को शान्त करने का बहुत ही सरल उपाय है।

9. चक्रों पर ध्यान–सृष्टि सतत् प्रवाह की कहानी है। उत्पत्ति तथा विनाश का खेल सदैव चलता रहता है। यह प्रकृति का अटल नियम है। इसीलिए इसे मृत्यु लोक कहा जाता है। आवागमन का क्रम अबाध गति से चलता रहता है। जीवन इन दोनों ही घटनाओं के बीच का अंतराल है।

जन्म से मृत्यु के बीच का जीवन तथा मृत्यु से जन्म से बीच का जीवन।

मृत्यु तथा जन्म सापेक्ष है। एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसलिए ऐसे जीवन को मृत्यु तथा जन्म से परे की सच्चाई कहा जाता है। इस प्रकार का जीवन शाश्वत है जो कभी समाप्त नहीं होता। यह चक्र ही सृष्टि का शाश्वत नियम है। यह एक परम सिद्धान्त है।

यदि व्यावहारिक रूप से जीवन की इन घटनाओं को देखें, तो सृष्टि की उत्पत्ति सूक्ष्म से स्थूल की ओर होती है। भारतीय दर्शन में इसी को व्यक्त होना कहा जाता है। इसमें जो था, पर दिखाई नहीं दे रहा था, वह दिखाई देने लगता है तथा यह स्थूल से सूक्ष्म की ओर यात्रा है। साधक को निकास के लिए स्थूल से सूक्ष्म का सहारा लेना पड़ता है। इसी को 'चन्द्र शाखा न्याय' कहते हैं।

योग के पाँच बहिरंगों–यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार को जीवन में अपनाने से पाँचों ज्ञानेन्द्रियों की क्षमताओं का विकास होता है। इससे हम अपने उस स्वभाव में आ जाते हैं। जो हम दूसरों से अपने लिए चाहते हैं, यही हमारा वास्तविक स्वभाव है। यही धर्म है। उसी निरपेक्षित भाव में स्थित होना आत्मा में स्थित होना है। इस उत्कर्ष की स्थिति में योगी को समस्त सृष्टि में परमात्मा के दर्शन होने लगते हैं। चरम स्थिति 'परमात्ममयता' है, जहाँ सृष्टि का बोध नहीं रहता। परमात्मा केवल परमात्मा रहता है।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि ध्यान एक ऐसी व्यापक विधि है जिसके अभ्यास से व्यक्ति अपने मन को ठीक प्रकार से अनुशासित व नियन्त्रित करके अपने अन्तर्मन को जागृत करता है तथा इच्छा शक्ति को साधन बनाकर शरीर तथा मन के विकारों से मुक्त होकर असीम आनन्द की अनुभूति करता है।

❖ समाधि अवस्था
(Stage of Samadhi)

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः

ध्यान ही जब केवल अर्थ ध्येय, ईश्वर के स्वरूप अथवा स्वभाव को प्रकाशित करने वाला अपने स्वरूप से शून्य जैसा होता है, तब उसे समाधि कहते हैं।

ज्योतिर्मय सूक्ष्म निर्मल चित्त, आनन्दमय व शान्तिमय परमेश्वर का ध्यान करता हुआ साधक ओंकार ब्रह्म परमेश्वर में इतना तल्लीन, तन्मय व तद्रूप-सा हो जाता है कि वह स्वयं को भी भूल सा जाता है, मात्र भगवान के दिव्य आनन्द का अनुभव करता है तो यह स्थिति शून्यता की है। मृत्युंजयी महान् योगी महर्षि दयानन्द जी महाराज कहते हैं कि ध्यान तथा समाधि में इतना ही भेद है कि ध्यान में तो ध्यान करने वाला, जिस मन से, जिस चीज का ध्यान करता है, वे तीनों (ध्यान करने वाला, मन, वस्तु) विद्यमान रहते हैं। इसके विपरीत समाधि में केवल परमपिता परमेश्वर के आनन्दमय, शान्तिमय, ज्योतिर्मय स्वरूप व दिव्य ज्ञान-आलोक में आत्मा निमग्न हो जाती है तथा तीनों का भेद समाप्त हो जाता है।

उदाहरण के लिए जैसे मनुष्य जल में डुबकी लगाकर थोड़ा समय भीतर ही रुका रहता है। वैसे ही जीवात्मा परमेश्वर के आनन्द में निमग्न होकर समाधि का आनन्द लेता है।

अन्य उदहारण के रूप में ऋषिगणों का कहना है कि जैसे अग्नि के बीच लोहा डालने पर वह भी अग्नि रूप हो जाता है, इसी प्रकार परमेश्वर के दिव्य-ज्ञान के आलोक में आत्मा के प्रकाशमय होकर अपने शरीर आदि

को भी भूले हुए के समान जानकर स्वयं को परमेश्वर के प्रकाश स्वरूप आनन्द तथा पूर्ण-ज्ञान में परिपूर्ण होना ही समाधि है।

श्री भोजराज के शब्दों में– सम्यगाधीयत एकाग्री क्रियते विक्षेपान् परिहृत्य मनो यत्र स समाधिः।

जिसमें मन को विक्षेपों से हटाकर यथार्थता से धारण किया जाता है अर्थात् एकाग्र किया जाता है, वह समाधि है।

योग दर्शन के प्रथम पाद में वर्णित सवितर्क सभापति को ध्यान की एक अवस्था समझना चाहिए क्योंकि उसमें शब्द, अर्थ एवं ज्ञान के विकल्प होते हैं। निर्वितर्क सभापति को समाधि की अवस्था समझना चाहिए। यह सम्प्रज्ञात समाधि उन्नत अवस्था में ऋतम्भरा प्रज्ञा साधक को भागवत् प्रसाद के रूप में प्राप्त होती है।

समाधि की सबसे उन्नत श्रेणी है–निर्बीज समाधि। इस स्थिति में संसार के विषय भोग वासनाओं के चित्त में संस्कार नहीं रहते। जब सभी तरह के संस्कारों के बीज नष्ट हो जाते हैं तो सब वृत्तियों का निरोध अपने आप हो जाता है। ऐसी स्थिति में बन्धन में गिरने की सम्भावना भी नष्ट हो जाती है। यह योग अथवा जीवन की पूर्णता है जिसे प्राप्त करके महर्षि व्यास के शब्दों में कहा जा सकता है–

प्राप्तं प्रापणीयं क्षीणः क्षेतव्याः क्लेशः छिन्नः शिलष्टपर्वाभवसंक्रमः। यस्याविच्छेदाज्जनित्वा।
म्रियते मृत्वा च जायत इति। ज्ञानस्येव पराकाष्ठा वैराग्यम्।
एतस्यैव हि नान्तरज्ञीयकं कैवल्यभिति।।

ज्ञान की पराकाष्ठा ही वैराग्य है। समाधि द्वारा ज्ञान के इस उच्चतम क्षितिज की प्राप्ति होने पर मोक्ष अवश्यम्भावी है, जिसे पाकर साधक अथवा योगी इस प्रकार अनुभव करता है कि उसने प्राप्त करने योग्य सब कुछ पा लिया है। अब और कुछ पाने की इच्छा नहीं रही। क्षीण करने वाले सभी क्लेश नष्ट हो गये हैं। जिसके पर्व (खण्ड) मिले हुए हैं ऐसा भव संक्रमण (आवागमन) छिन्न-भिन्न हो गये हैं जिसके छिन्न-भिन्न होने से प्राणी उत्पन्न होकर मरता है तथा मर कर पुनः उत्पन्न होता है।

विक्षेप हटाकर चित्त का एकाग्र होना ही समाधि है। ध्यान में जब चित्त ध्यानाकार को छोड़कर केवल ध्येय वस्तु के आकार को ग्रहण करता है, तब उसे समाधि कहा जाता है। इस स्थिति में ध्यान करने वाला ध्याता भी नहीं रहता, वह अपने आप को भूल जाता है, रह जाता है मात्र ध्येय, यही ध्यान की परिस्थिति है, यही समाधि है। समाधि ध्यान की चरम परिणति है। जब ध्यान की परिपक्वावस्था होती है, तब चित्त से ध्येय का द्वैत तथा तत्सम्बन्धी वृत्ति का भान चला जाता है।

समाधि स्थित योगी धीरे-धीरे अपने परम लक्ष्य ज्योतिर्मय निर्मल चित्त की प्राप्ति करने का प्रयास करता है तथा जब ऐसे साधक योगी पुरुष को ऐसे निर्मल चित्त की प्राप्ति हो जाए तब उसके परमात्मा से मिलन का मार्ग बिल्कुल बाधा हीन हो जाता है तथा वह अपने परम लक्ष्य परमात्मा में विलय को प्राप्त कर लेता है।

समाधि की ऊपरवर्णित मीमांसा से स्पष्ट होता है कि कोई भी साधक अथवा योगी एकदम अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकता। वह क्रमशः योग की विभिन्न अवस्थाओं यथा–जड़, चेतन, स्थूल, सूक्ष्म, चिन्तन तथा अन्तिम तुर्यावस्था को प्राप्त होता है। यही योग साधना की अन्तिम अवस्था है।

?
सम्भावित प्रश्न

1. योग के दर्शन तथा योग के मनोविज्ञान में क्या अंतर होता है? प्रकृति तथा पुरुष संप्रत्ययों की व्याख्या कीजिए।
   (Differentiate between the Philosophy and Psychology of Yoga. Explain the concept of Prakriti and Purusha.)
2. चितवृत्ति निरोध की विभिन्न विधियाँ कौन-कौन सी होती हैं? प्रत्याहार संप्रत्यय की विस्तार से व्याख्या कीजिए।
   (Describe different methods of Chitta control. Explain the concept of Pratyahara in detail.)

◆◆◆

4

योग का सामाजिक तथा नैतिक आधार
[Socio-Moral Base of Yoga]

❖ भूमिका
(Introduction)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसका जन्म, पालन, पोषण, शिक्षा-दीक्षा समाज की पहली तथा महत्त्वपूर्ण संस्था परिवार में होता है। परिवार में व्यक्ति के संस्कारों का जन्म होता है। जो संस्कार परिवार में डाले जाते हैं, व्यक्ति उन्हीं का विकास करता है।

व्यक्ति अपने साथ अपने कर्मों के अतिरिक्त कुछ भी साथ लेकर नहीं आता। जो कुछ भी उसके पास है तथा जो कुछ उसने प्राप्त किया है, सब कुछ समाज से ही प्राप्त किया है। मरने पर समाज उससे सब कुछ छीन लेता है। सिवाय उसके कर्मों के।

अन्तः व्यक्ति अपने कर्म लेकर आता है। पूर्व जन्मों के कर्मों का फल यहाँ भोगता है तो अच्छे-बुरे कर्म अपने साथ लेकर जाता है। उसके कर्मों के कारण ही उसकी मृत्यु पर कहा जाता है कि बहुत अच्छा हुआ अथवा बहुत बुरा हुआ।

व्यक्ति काम, अर्थ, धर्म के साथ अन्तिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना चाहता है अथवा मोक्ष से भी आगे जब मोक्ष की इच्छा भी समाप्त हो जाती है। वह अन्तिम लक्ष्य परमात्मा में लीन अथवा विलय को प्राप्त कर लेता है।

परमात्मा में विलय का लक्ष्य वैसे ही प्राप्त नहीं हो जाता। इसके लिए उसे अनेक प्रयास करने पड़ते हैं। इन प्रयासों में सबसे महत्त्वपूर्ण है—योग।

किसी भी समाज की उन्नति तथा अवनति में अन्य भौतिक साधनों की तुलना में महत्त्वपूर्ण साधन लोगों का चरित्र है। जिस राष्ट्र के लोग चरित्रहीन हैं, वह राष्ट्र कभी भी विकास की ऊँचाइयों को नहीं छू सकता।

यह कहावत पूर्णतया सत्य है कि धन खोने से व्यक्ति कुछ नहीं खोता, स्वास्थ्य खोने से वह जीवन में कुछ खोता है परन्तु चरित्र खोने पर वह सब कुछ खो देता है।

बच्चे में आरम्भ से ही अच्छे गुण विकसित हों, यह माता-पिता का कर्त्तव्य है। बच्चों का तन तथा मन दोनों स्वस्थ रहें, इसलिए उन्हें योग की शिक्षा दी जानी चाहिए।

योग से शरीर तथा मन दोनों का विकास होता है। योग का शारीरिक तथा मानसिक पक्ष जितना महत्त्वपूर्ण है उतना ही महत्त्वपूर्ण नैतिक तथा सामाजिक पक्ष है। समाज के नियम आचरण तथा मर्यादाओं का पालन कराने में योग द्वारा प्रशिक्षित मन तथा मस्तिष्क महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कहा जाता है कि स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क होता है। यदि तन स्वस्थ नहीं है तो मन भी स्वस्थ नहीं हो सकता। योगाभ्यास शरीर तथा मन दोनों को सशक्त तथा सबल बनाता है। योग से मन की वृत्तियों पर अंकुश लगता है जिससे चित्त निर्मल तथा शान्त होता है।

योग का अभ्यास करने वाला व्यक्ति संयमी, इन्द्रियों पर नियन्त्रण करने वाला तथा विचार और कर्म से श्रेष्ठ बनता चला जाता है। जब व्यक्ति कर्म तथा विचारों श्रेष्ठ बन जाता है तो उसमें सामाजिक तथा नैतिक गुणों का अंकुर अपने आप फूटने लग जाता है। इससे उस को लाभ तो होता ही है समाज भी एक नई दिशा

प्राप्त कर लेता है। समाज की भलाई के कारण वह समाज में आदर तथा सम्मान प्राप्त करता है। योग इस तरह सामाजिक-नैतिक उत्कर्ष की एक ऐसी पावन भूमि तथा सुरम्य पर्यावरण प्रस्तुत करता है जिसके आधार पर किसी भी समाज तथा राष्ट्र की प्रगति का भवन खड़ा किया जा सकता है।

विश्व के सभी व्यक्ति सुख व शान्ति चाहते हैं। जो भी कुछ व्यक्ति कर रहा है, उसका एक ही मुख्य लक्ष्य है कि इससे उसे सुख मिलेगा। मानव जीवन का लक्ष्य सांसारिक कष्टों से मुक्त होकर शाश्वत एवं चिरंतन आनन्द की प्राप्ति है। सांसारिक विषय-वासनाओं के मोह में पड़कर प्राणी क्लेश, अभाव आदि का अनुभव करता है। प्रत्येक व्यक्ति ही नहीं वरन् विश्व के सभी राष्ट्र भी इस बात पर सहमत हैं कि विश्व में शान्ति स्थापित होनी चाहिए। दो विश्व युद्धों के दुष्परिणाम विश्व के अनेक राष्ट्र भुगत चुके हैं। जो व्यक्ति-विशेष विश्व कल्याण के लिए सराहनीय कार्य करता है उसे नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया जाता है।

शान्ति प्राप्त करने तथा दुःखों से छुटकारा पाने के लिए नाना प्रकार के साधनों को अपनाकर उस परम-आनन्द अथवा परम-तत्त्व की प्राप्ति करने का प्रयास व्यक्ति द्वारा किया जाता है। कर्म, उपासना, ज्ञान, योग आदि विभिन्न पद्धतियाँ इसी ध्येय सिद्धि की साधनाएँ हैं।

श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार योगानुष्ठान में चित्त जहाँ रम जाता है, वहाँ परमात्मा को देखकर आत्मा की सन्तुष्टि होती है। इस स्थिति में अगोचर सुख की अनुभूति होती है। यहाँ न इन्द्रियाँ होती हैं, न ही विषय। इसमें मन डिगता नहीं है, कोई वस्तु उसे आकर्षित नहीं कर पाती। मन की वह स्थिति योग है, जहाँ बड़े से बड़े दुःख में भी मन विचलित नहीं होता। इसलिए शांतचित्त, निष्पाप, ब्रह्मभूत तथा कर्मबन्धन से मुक्त योगी वास्तविक आनन्द ही उपलब्धि करता है।

शास्त्रों में चित्त की मूढ, क्षिप्त, विक्षिप्त, एकाग्र तथा निरुद्ध ये पाँच अवस्थाएँ बताई गई हैं। काम, क्रोध, मोह व लोभ से मूढ़ अवस्था उत्पन्न होती है।

निद्रा, तन्द्रा, भय, मोह, आलस्य, दीनता से क्षिप्त अवस्था उत्पन्न होती है।

रजोगुण प्रधान क्षिप्त अवस्था का कारण राग-द्वेष है और लक्षण धर्म-अधर्म, राग-विराग, ज्ञान-विज्ञान, ऐश्वर्य-अनैश्वर्य आदि की प्रवृत्ति है।

कर्मयोग के कारण सत्त्व गुण की प्रधानता होने से धर्म, ज्ञान, ऐश्वर्य की प्रवृत्ति होकर सुख प्रसन्नता, क्षमा, श्रद्धा, धैर्य, चेतना, दया आदि गुणों से चित्त की विक्षिप्त अवस्था प्राप्त होती है।

सत्त्वगुण के कारण चित्त में एकाग्रता आती है। सत्त्वगुण के कारण चित्त शान्त तथा निर्मल हो जाता है। इस स्थिति में परम सत्य का साक्षात्कार होने लग जाता है। यह विवेक प्राप्ति की अवस्था है।

निरुद्ध अवस्था में चित्त तथा पुरुष (विशुद्ध चेतन) के स्वरूप के पूर्ण ज्ञान के साथ वैराग्य प्राप्त होता है। इस अवस्था में चित्त आत्म-रूप में स्थित हो जाता है। इस अवस्था में अविद्या का नाश हो जाता है। इसे निर्बीज समाधि भी कहा जाता है।

इस तथ्य को और स्पष्ट करने हेतु कहा जा सकता है कि पौधे का मूल तो बीज ही है। जब बीज ही नष्ट हो जाये तो पौधा पनपेगा, इसकी कोई सम्भावना ही नहीं रहती।

यही बात जीवात्मा के सम्बन्ध में है। जीवात्मा के सन्दर्भ में बीज है—विकार तथा अज्ञान। जब अज्ञानता तथा मन के विकार समाप्त हो जाते हैं तो भव-चक्र भी समाप्त हो जाता है।

इस प्रकार के आचरण से द्रष्टा की अपने स्वरूप में अवस्थिति हो जाती है तथा वह सबमें परमात्मा को देखने लगता है। यह समन्वय अथवा एकता बुद्धियोग है।

योग जीवन के सिद्धांत तथा व्यवहार दोनों ही पक्षों में महत्त्वपूर्ण है। किन्तु क्रियात्मक पक्ष का अधिकतम महत्त्व है। प्रत्येक अभ्यासी को योगाभ्यास करते समय सत्यता का अनुभव स्वयं होने लगता है। संसार में दुःख का कारण यह है कि मनुष्य अपने एक साथी—प्रकृति अर्थात् माया से सम्बन्ध बनाए रखता है। परन्तु दूसरे साथी परमात्मा की ओर उसका ध्यान कभी नहीं जाता। परमात्मा का ध्यान तो दुःख के समय ही आता है, जब व्यक्ति अपने प्रयास करके थक जाता है, बेबस हो जाता है तो उसके मुख से निकलता है 'ईश्वर तेरी इच्छा।' यदि व्यक्ति का सम्बन्ध सुख में भी परमात्मा से बन जाए तो उसका कल्याण हो जाए। इस सम्बन्ध को स्थापित करने के लिए योग का सहारा लिया जाता है।

योग शरीर, मन तथा चेतना इन तीनां के विकास का समन्वित साधन है। इसका उद्देश्य है कि मानव इन तीनों से सम्बन्धित क्षमताओं का पूर्ण रूप से विकास करे। क्योंकि इनके बिना आत्मज्ञान की बात तो की जा सकती है परन्तु व्यवहार में ऐसा हो पाना किसी भी रूप में सम्भव नहीं है।

शरीर ही सभी प्रकार के धर्मों के आचरण का मुख्य साधन है। योग में शरीर की साधना के साथ-साथ मोक्ष की साधना भी अनवरत रूप से चलती रहती है।

शरीर-साधना के सन्दर्भ में योग के अनेक अंगों का वर्णन योग ग्रन्थों में किया गया है।

एक ऐसा पथ जिस पर निर्भय होकर पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ दुनिया का प्रत्येक इन्सान चल सकता है तथा जीवन में पूर्ण सुख, शान्ति व आनन्द को प्राप्त कर सकता है तो यह है महर्षि पतंजलि प्रतिपादित 'अष्टांग योग' का पथ।

यह कोई मत, पन्थ अथवा सम्प्रदाय नहीं, अपितु जीवन जीने की सम्पूर्ण पद्धति है। यदि संसार के लोग वास्तव में इस बात को लेकर गम्भीर हैं कि विश्व में शान्ति स्थापित होनी ही चाहिए तो इसका एकमात्र समाधान है, अष्टांग योग का पालन। अष्टांग योग के द्वारा ही व्यक्तिगत व सामाजिक समरसता, शारीरिक स्वास्थ्य, बौद्धिक जागरण, मानसिक शान्ति तथा आत्मिक-आनन्द की अनुभूति हो सकती है।

महर्षि पतंजलि योग सूत्रों में लिखते हैं—

यम-नियमआसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधयोः-ऽष्टापङ्गानि।।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि। इन सब योगाङ्गों का पान किए बिना व्यक्ति योगी नहीं हो सकता।

इनमें पहले पाँच साधनों का सम्बन्ध मुख्य रूप से स्थूल शरीर से है। ये सूक्ष्म से स्पर्श मात्र करते हैं। बाद के तीनों साधन सूक्ष्म तथा कारण शरीर का गहरे तक स्पर्श करते हुए उसमें परिष्कार करते हैं। इसलिए पहले साधनों—यम, नियम, आसन, प्राणायाम व प्रत्याहार को **बहिरंग** साधन तथा धारणा, ध्यान तथा समाधि को **अंतरंग** साधन कहा गया है।

यह अष्टांग योग केवल योगियों के लिए नहीं वरन् जो भी व्यक्ति जीवन में स्वयं पूर्ण सुखी होना चाहता है, प्राणी मात्र को सुखी देखना चाहता है, उन सबके लिए अष्टांग योग का पालन अनिवार्य है।

अष्टांग योग धर्म, अध्यात्म, मानवता तथा विज्ञान, प्रत्येक कसौटी पर खरा उतरता है। इस दुनिया के खूनी संघर्ष को यदि किसी उपाय से रोका जा सकता है तो वह अष्टांग योग ही है, अन्यथा विश्व तीसरे विश्व युद्ध की तैयारी में संलग्न है। यदि कभी भी तीसरा विश्व युद्ध हुआ तो सारी मानवता का विनाश निश्चित है।

अष्टांग योग में जीवन के व्यवहार से लेकर ध्यान व समाधि सहित अध्यात्म की उच्चतम अवस्थाओं का अनुपम समावेश है। जो भी व्यक्ति अपने अस्तित्त्व की खोज में लगा है तथा जीवन के पूर्ण सत्य से परिचित होना चाहता है, उसे अष्टांग योग का अवश्य ही पालन करना चाहिए।

यम तथा नियम अष्टांग योग के आधार हैं। यम तथा नियम का यहाँ पर विस्तार से वर्णन करने का प्रयास करेंगे।

?

सम्भावित प्रश्न

1. योग के अनुसार, सार्वभौमिक मानव आचार संहिता क्या है तथा इसका जीवन में क्या महत्त्व है?
   (What is universal code of human conduct, according to Yoga and what is its importance in life.)
2. 'निर्मल चित्त' की प्राप्ति में, जो योगी का अन्तिम लक्ष्य है, 'ध्यान' की क्या भूमिका है?
   (What is role of 'Dhyana' for the attainment of 'Nirmal Chitta' which is the Yogi's Final goal ?)

◆◆◆

5

यम
[Yamas or Restraints]

अर्थ (Meaning)–यम अष्टांग योग का प्रथम अंग है तथा योग की आधारशिला है। यम शब्द 'यमु उपरमे' धातु से निष्पन्न होता है। यम का अर्थ है 'चित्त को धर्म में स्थिर रखने का साधन'। यम के द्वारा ही इन्द्रियों तथा मन को हिंसादि अशुभ भावों से हटाकर धर्म में केन्द्रित किया जा सकता है। यम वह अनुष्ठान है, जिससे साधक अथवा योगी बाह्यमुखता से अन्तर्मुखता की ओर अग्रसर होता है। इसका सम्बन्ध समाज से है, जिसके अभ्यास से जीवन पवित्र तथा सात्त्विक बनता है।

साधक के मन से ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार लोभ, मोह आदि सभी सांसारिक लगाव समाप्त हो जाते हैं। इसके अभ्यास से शारीरिक मानसिक तथा अध्यात्मिक उत्थान के साथ-साथ साधक को आत्म- साक्षात्कार भी होता है।

❖ यम के अंग (Components of Restraints)

यम के अंग साधक के लिए रक्षा पंक्ति का कार्य करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप हमें इन्द्रियों के नियन्त्रण में सहायता मिलती है। दूसरे शब्दों में कहा जाता है कि यम के अंगों का पालन करने से नैतिक मूल्यों का समावेश होता है। यम के अभ्यास से साधक अपने जीवन के परम लक्ष्य (परमात्मा में लीन होना) की पहली सीढ़ी चढ़ता है अर्थात् पहले पायदान पर कदम रखता है।

योगाचार्यों तथा आध्यात्मिक विद्वानों में यम की संख्या को लेकर एकमत नहीं है। विभिन्न योगाचार्यों के दृष्टिकोण के अन्तर्गत यम के निम्नलिखित अंग हैं।

भागवत् पुराण के अनुसार यम के बारह अंग निम्नलिखित हैं–

1. अहिंसा (Non-violence)
2. सत्य (Truthfulness)
3. अस्तेय (Non-stealing)
4. अंसगता (Non-attachment)
5. लज्जा अर्थात् बुराई से शर्म करना (Feeling of shame for evil)
6. अपरिग्रह अर्थात् आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह न करना (Not to collect more than require)
7. ईश्वर में विश्वास (Faith in God)
8. ब्रह्मचर्य (Continence)
9. मौन धारण करना (Observance of Silence)
10. स्थिरता (Firmness)
11. क्षमा (Forgiveness)
12. निर्भय (Fearlessness)

पाराशर संहिता में यम की संख्या निम्नलिखित बताई गई है–

1. अहिंसा (Non-violence)
2. सत्य (Truthfulness)
3. अस्तेय (Non-stealing)
4. ब्रह्मचर्य (Continence)
5. क्षमा (Forgiveness)
6. धृति अर्थात् धैर्य (Patience)
7. दया (Kindness)
8. सरलता (Simpleness)
9. थोड़ा आहार (Lessfood)
10. पवित्रता (Holiness)

महर्षि पतंजलि ने इन यमों की परिगणना इस प्रकार की है–

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहाः यमाः ।।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह–ये पाँच यम हैं।

❖ अहिंसा (Non-violence)

अहिंसा का शाब्दिक अर्थ है हिंसा का अभाव अर्थात् किसी भी प्राणी को मन, कर्म तथा वचन से कष्ट न देना अर्थात् प्राणीमात्र से प्रेम करना। किसी प्राणी को कष्ट न पहुँचाना, अपमान न करना, शारीरिक तथा मानसिक रूप से आहत न करना। किसी भी समय किसी को भी किसी भी प्रकार का कष्ट न देना ही अहिंसा है। अहिंसा का मार्ग कठिन तो अवश्य है परन्तु इस का फल बहुत मीठा होता है। महाराज मनु ने अहिंसा को मोक्ष का परम साधन कहा है।

महर्षि व्यास जी कहते हैं–

तत्राहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः

अर्थात् सब प्रकार से तथा सदैव अर्थात् कभी भी प्राणियों के प्रति द्रोह न करना ही अहिंसा है।

अहिंसा में किसी के साथ द्वेष रखते हुए उसे शारीरिक तथा मानसिक कष्ट पहुँचाने का प्रयास नहीं किया जाता।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने अहिंसा के मार्ग पर चलकर ही अंग्रेजों की दासता से भारत को स्वतन्त्रता दिलवाई। गांधी जी ने अपने जीवन का पहला संघर्ष असहयोग आन्दोलन के रूप में आरम्भ किया था। उनका कहना था कि यह आन्दोलन पूरी तरह अहिंसात्मक होगा। जब उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले के एक गाँव चौरा-चौरी में एक हिंसक भीड़ ने एक थाने पर धावा बोलकर थाने को आग लगा दी, जिसके कारण कुछ सिपाही जल कर मर गये। गांधी जी को जब इस छोटी-सी हिंसक घटना की जानकारी हुई तो उन्होंने तुरन्त असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया। गांधी जी ने बिना तलवार, तोप के भारत को स्वतन्त्रता दिलवाई। मन, कर्म, वचन किसी भी तरह किसी को कष्ट न पहुँचाना अहिंसा है। इस तरह अहिंसा के तीन रूप हैं–

मानसिक अथवा बौद्धिक अहिंसा (Intellectual Non-violence)–किसी को मन से भी पीड़ा न पहुँचाने की प्रवृत्ति को बौद्धिक अथवा मानसिक अहिंसा कहा जाता है। अहिंसा के मार्ग पर चलने के लिए सबसे पहले हमारी बुद्धि को क्रियाशील होना पड़ता है। हमारे मन में किसी को पीड़ा देने वाले विचारों का न आना ही बौद्धिक अहिंसा है।

'अहिंसा परमो धर्मः।'

अर्थात् अहिंसा ही परम धर्म है।

इस विचार का अनुपालन तभी हो सकता है यदि हम बुद्धि से इस पर विचार करें।

कायिक (शारीरिक) अहिंसा (Physical Non-violence)–किसी भी प्रकार से प्राणी को शारीरिक आघात न पहुँचाना ही कायिक अहिंसा है अर्थात् हाथ, पाँव, किसी शस्त्र-अस्त्र से किसी को शारीरिक हानि न पहुँचाना।

वाचिक अहिंसा (Speech Non-violence)–वाचिक अहिंसा से अभिप्राय है कि कभी भी ऐसे कड़वे वचन नहीं बोलने चाहिएँ, जिनसे किसी को कष्ट हो। अपशब्दों का प्रयोग, कटु वाणी, उत्तेजक वचन आदि का प्रयोग न करना ही वाचिक अहिंसा है। सदैव ऐसे मधुर वचनों का प्रयोग करना चाहिए, जिससे दूसरे के हृदय पर आघात न लगे।

यहाँ तक कहा गया है कि ऐसा सत्य भी नहीं बोलना चाहिए, जिससे दूसरे को बुरा लगे। अन्धे को अन्धा कहना सत्य है परन्तु यह भी हिंसा का ही नाम है। इसी लिए उसे अन्धा न कहकर सूरदास कहा जाता है, जबकि दोनों का अर्थ एक ही है। इसीलिए कहा गया है–

ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करै, आपहि शीतल होय।।
कागा कासे लेत है, कोयल काको देत।
केवल मीठे वचन से, जग वश में कर लेत।।

मीठे वचन बोलने से कोई हानि नहीं होती। मधुरभाषी व्यक्ति सबको अच्छा लगता है, जबकि कटु वचन बोलने वाला किसी को अच्छा नहीं लगता।

कौवा तथा कोयल दोनों का रंग एक जैसा होता है। कौवा किसी से कुछ नहीं लेता परन्तु उसे कोई पसंद नहीं करता। इसके विपरीत कोयल किसी को कुछ नहीं देती परन्तु वह सबको प्रिय लगती है। इसका मूल कारण मधुर वाणी है। कौवा कांय-कांय करता है, कोयल मधुर स्वर में गाती है।

मीठा वचन अथवा मधुर वाणी वचिक अहिंसा ही है।

❖ सत्य (Turthfulness)

जैसा देखा, सुना तथा जाना हो वैसा ही शुद्ध भाव मन में हो, वही वाणी में हो तथा उसी के अनुरूप कार्य हो तो वह सत्य कहलाता है। मन, वचन एवं कर्म में एकता ही सत्य है अर्थात् किसी बात को हम जैसा देखते हैं, सुनते हैं अथवा अनुभव करते हैं उसे उसी रूप में समझना, अभिव्यक्त करना तथा अपने आचरण में ढालना ही सत्य कहलाता है। दूसरों को ऐसी वाणी कभी नहीं बोलनी चाहिए, जिसमें छल-कपट हो, भ्रान्ति पैदा होती हो अथवा जिसका कोई प्रयोजन न हो। ऐसी वाणी बोलनी चाहिए जिससे किसी प्राणी को कष्ट न पहुँचे। वाणी 'सर्वभूतहिताय' होनी चाहिए। दूसरों की हानि करने वाली वाणी पापमयी होने से दुःखजनक होती है। अतः परीक्षा करके सब प्राणियों का हित करने वाली वाणी का ही प्रयोग करना चाहिए। इसीलिए कहा गया है कि

सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जा के हृदय सांच है, ता के हिरदय आप।।

सत्य रूपी तपस्या करने से ही ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है।

सत्य भी तीन प्रकार का माना गया है–

1. **बौद्धिक सत्य (Intellectual Truthfulness)**–साधक अपनी बुद्धि से किसी बात के यथार्थ स्वरूप का निर्णय लेता है। जो बातें जैसी देखी, जैसी सुनी अथवा जैसा उसने अनुभव किया उसे उसी रूप में समझना बौद्धिक सत्य कहलाता है। बौद्धिक सत्य के द्वारा ही वाणी तथा व्यवहार में सत्य को अपनाया जा सकता है।
2. **वाचिक सत्य (Vocal Truthfulness)**–जो बात जिस रूप में देखी, सुनी तथा अनुभव की गई, उसका उसी रूप में वर्णन करना वाचिक सत्य कहलाता है।

3. **कायिक सत्य (Physical Truthfulness)**–किसी रूप में देखी गई, सुनी गई तथा अनुभव की गई बात को उसी रूप में व्यवहार में अपनाना अथवा कर्म द्वारा व्यक्त करना ही कायिक अथवा शारीरिक सत्य कहलाता है।

❖ अस्तेय (Non-Stealing)

अस्तेय का शाब्दिक अर्थ है–चोरी न करना। दूसरों की वस्तुओं पर बिना पूछे अधिकार करना अथवा शास्त्र विरुद्ध ढंग से वस्तुओं का ग्रहण करना, किसी ऐसी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा अथवा चेष्टा करना जो स्वयं द्वारा उपार्जित न की गई हो, चोरी अर्थात् अस्तेय है। मन, वचन, कर्म के आधार पर भी चोरी नहीं करनी चाहिए। योगी पुरुष को न तो चोरी करनी चाहिए तथा न ही किसी से करवानी चाहिए। उसे भगवान् ने जो कुछ प्रदान किया है, उसमें पूर्ण सन्तुष्ट व आनन्दित रहना चाहिए। अस्तेय भी तीन प्रकार के हो सकते हैं–

1. **बौद्धिक अस्तेय**–किसी दूसरे व्यक्ति की वस्तु को प्राप्त करने का विचार भी मन में न लाना बौद्धिक अस्तेय कहलाता है।
2. **वाचिक अस्तेय**–किसी अन्य व्यक्ति की वस्तु प्राप्त करने के लिए किसी अन्य व्यक्ति से आग्रह न करना अथवा अपने वचन से चोरी करने के लिए न उकसाना वाचिक अस्तेय है।
3. **शारीरिक अस्तेय**–किसी दूसरे व्यक्ति की वस्तु को प्राप्त करने के लिए शारीरिक शक्ति का प्रयोग न करना अर्थात् बल अथवा शक्ति से न छीनना शारीरिक अस्तेय कहलाता है।

❖ ब्रह्मचर्य (Continence)

मन, कर्म, वचन से इन्द्रियों पर नियन्त्रण करना ब्रह्मचर्य कहलाता है। जीवन के परम लक्ष्य की प्राप्ति में ब्रह्मचर्य को प्रमुख साधन माना गया है। ब्रह्मचर्य का पालन करने पर ही साधक को उस आत्मिक बल की प्राप्ति होती है, जो उसे मोक्ष तक पहुँचाने में सहायक होता है। योग दर्शन में महर्षि पतंजलि ने कहा है कि 'गुप्त इन्द्रियों का संयम ही ब्रह्मचर्य है। काम वासना को उत्तेजित करने वाले खान-पान, रहन-सहन, दृश्य-श्रव्य व शृंगार आदि का परित्याग कर सतत वीर्य रक्षा करते हुए ऊर्ध्वरेता होना ब्रह्मचर्य है।

अष्टविध मैथुन, वासना की दृष्टि से किसी का दर्शन, स्पर्श, एकान्त सेवन, भाषण, विषय कथा, परस्पर क्रीड़ा, विषय का ध्यान तथा संग ये आठ प्रकार के मैथुन हैं।

साधक को इनसे बचने का भरसक प्रयास करना तथा जितेन्द्रिय होकर अपनी समस्त इन्द्रियाँ आँख, कान, नाक, त्वचा व रसना को सदा शुभ की ओर प्रेरित करना चाहिए तथा मन में सदा भद्र, सुविचार, शिव संकल्प रखना चाहिए।

उसे सदैव यह याद रखना चाहिए कि मेरी स्वाभाविक अवस्था विकार रहित है अर्थात् मेरे मन में विकारों के लिए कोई स्थान नहीं है।

उदाहरण के लिए जल का स्वाभाविक गुण शीतलता प्रदान करना है। जमना, गर्म होना, वाष्प बनना तथा वाष्प बनकर उड़ जाना उसके स्वाभाविक गुण नहीं हैं।

गर्म करने, बर्फ बनने पर ठोस हो जाने के थोड़े समय के पश्चात् वह पुनः अपने वास्तविक रूप में आ जाता है। इसी तरह ब्रह्मचर्य हमारी स्वाभाविक अवस्था है।

काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहंकार आदि के विषय में यदि एकान्त स्थान पर बैठकर चिन्तन किया जाए तो आप पाएंगे कि आप में ये विकार है ही नहीं। ये विकार तो आप स्वयं पैदा करते हैं। ये विकार चोरी-छुपे चोर लुटेरों की भाँति हमारे शरीर में प्रवेश करते हैं तथा थोड़ी देर ही ठहरते हैं। परन्तु इससे पहले कि हम होश में आयें, ये विकार हमारे तन, मन तथा आत्मा की शक्ति को लूटकर, विकृत करके हमारा सब कुछ बिगाड़कर तथा छीनकर भाग जाते हैं।

काम तथा क्रोध का आवेग क्षणिक होता है। थोड़े से समय में ही हमारे शरीर को हिला कर रख देते हैं। शरीर को शक्तिहीन, ओजहीन तथा निस्तेज कर देते हैं। एक ब्रह्मचारी ओजस्वी तथा तेजस्वी हो सकता है। विषय-वासनाओं का दास तेजस्वी तथा ओजस्वी नहीं हो सकता। इसलिए उठो, जागो, सचेत हो जाओ, अपने स्वाभाविक धर्म (स्वधर्म) को पहचानो। विकार आपके स्वधर्म नहीं ये पर धर्म है। भगवान् श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं कि–

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।

अर्थात् अपने धर्म के पालन में मृत्यु भी श्रेष्ठ है, दूसरे का धर्म भयप्रद होता है।

काम, लोभ, मोह, माया, ममता, अहंकार आदि विकारों का परित्याग करो।

भय, भूख, निद्रा तथा सन्तानोत्पत्ति तो पशु-पक्षियों के भी गुण हैं। हिन्दूदर्शन के अनुसार 84 लाख योनियों के पश्चात् बहुत सत् कर्मों से मानव शरीर मिलता है। क्या ये कार्य करने के लिए ईश्वर ने तुम्हें इस दुनिया में भेजा है, नहीं आप केवल शरीर नहीं वरन् आत्मा हैं। आपके स्वाभाविक गुण मैत्री, करुणा, प्रेम, सहानुभूति, सेवा-समर्पण, परोपकार, शान्ति तथा आत्मिक-आनन्द हैं। आप निर्विकार हैं, विकारों को तो हम स्वयं निमन्त्रण देते हैं। जैसे कोई व्यक्ति बड़े कष्टों से कंजूसी करके धन-सम्पदा व वैभव को संचित करे। ऐसा करके वह चोरों को स्वयं आमन्त्रित करता है। जब चोर उसकी धन-सम्पदा, भूमि, भवन सब लूटकर ले जाएँ। वह खड़ा-खड़ा सब कुछ देखता रहे तथा कहे कि हाय यह सब क्या हुआ। वह बेबस यह सब कुछ होता देखता रहता है। मनुष्य बाहर की सम्पत्ति को लुटाने के लिए तो चोरों को निमन्त्रण नहीं देता क्योंकि यह सम्पत्ति तथा वैभव वह स्वयं एकत्रित करता है। इसके विपरीत ईश्वर ने मनुष्य के भीतर असीम आनन्द, शान्ति, अपार सुख, शक्ति, ओज, तेज, बल, बुद्धि, पराक्रम, मैत्री, करुणा आदि अनन्त ऐश्वर्य प्रदान किए हैं। ये सब सुख-सुविधाएँ ईश्वर ने व्यक्ति को उससे कुछ लिए बिना प्रदान की हैं परन्तु मनुष्य इतना मूर्ख है कि ईश्वर से प्राप्त ऐश्वर्य तथा असीम आनन्द के साधनों का काम, क्रोध व वासना रूपी चोरों को बार-बार बुलाकर उन्हें लुटाता है तथा कहता है कि यह तो स्वाभाविक है, मैं इसमें क्या करूँ? मैं क्रोध करना तो नहीं चाहता, मैं ईर्ष्या, द्वेष करना तो नहीं चाहता, पर हो जाता है। हे मनुष्य! अपने आपको पहचान, भगवान् द्वारा दी गई इतनी अमूल्य धन सम्पदा को यूं ही व्यर्थ मत गवां। इस सुविचार-शिव संकल्प को अपने भीतर दृढ़ कर लो कि मैं निर्विकार हूँ तथा ब्रह्मचर्य मेरा स्वधर्म है, ब्रह्मचारी रहना स्वाभाविक है बाकी सब अस्वाभाविक है। विषय-वासना रूपी विकारों में जीवन बर्बाद करना छोड़ दे। अपने भीतर की शक्तियों को पहचानो। ब्रह्मचर्य का पालन करके ओजस्वी, तेजस्वी तथा बुद्धिमान् बनो। मानव-जीवन बार-बार नहीं मिलता। दूसरों की सेवा करके, मानव के प्रति करुणा तथा दया दिखाकर अपने जीवन को सुन्दर बनाओ।

योग साधना के पथ पर चलकर ही अपने आपको तथा भीतर विराजमान सच्चिदानन्द स्वरूप प्रभु को जान पाओगे, उस महाप्रभु को पहचान पाओगे।

ईश्वर को जानना तथा पहचनाना ही जीवन का सत्य है। यही शाश्वत सत्य है। यही जीवन का लक्ष्य व उद्देश्य है।

संक्षेप में ब्रह्मचर्य के भी तीन प्रकार हो सकते हैं–

1. **बौद्धिक ब्रह्मचर्य**–कामवासना अर्थात् विषय वासनाओं पर नियन्त्रण करने के लिए इन्द्रियों को वश में करने के लिए प्रयत्न करना। विचारों को शुद्ध रखना। ऐसे ग्रन्थों का अध्ययन करना जिससे मन में कुविचार ही उत्पन्न न हों बौद्धिक ब्रह्मचर्य कहलाता है।
2. **वाचिक ब्रह्मचर्य**–बाह्य कार्य से पहले मन में विचारों का द्वन्द्व होता है। किसी भी विषय के सम्बन्ध में मन में विचारों का तर्क-वितर्क होता है। इन्द्रिय-सुख के विषय में वार्तालाप, अश्लील वार्तालाप नहीं करने से मन में शुद्ध विचार उत्पन्न होंगे। विषय-भोगों के सम्बन्ध में वार्तालाप भी न करना वाचिक ब्रह्मचर्य कहलाता है।

3. **शारीरिक ब्रह्मचर्य**–गुप्त इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण ही शारीरिक ब्रह्मचर्य कहलाता है। शारीरिक ब्रह्मचर्य के लिए अनिवार्य है कि बौद्धिक तथा वाचिक ब्रह्मचर्य बनाए रखा जाए।

अपरिग्रह–स्वार्थ पूर्ति के लिए धन-सम्पत्ति तथा भोग-विलास की सामग्रियों के संचय को परिग्रह कहा जाता है। जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं से अधिक संचय न करना तथा न ही संचय करने का प्रयास करना अपरिग्रह कहलाता है।

ईश्वरीय व्यवस्था के अनुसार जीवन में जो कुछ भी धन, वैभव, भूमि, भवन तथा अन्य ऐश्वर्य के साधनों को कभी भी अहंकार के वशीभूत होकर अपना नहीं मानना चाहिए। ऐश्वर्य तथा सुख साधन सदैव रहने वाली वस्तुएँ नहीं है। लक्ष्मी बड़ी चंचला है जो कभी स्थायी रूप से किसी एक के पास नहीं ठहरती। जो वस्तु अपनी नहीं है, उस पर कैसा अहंकार?

सच्चे साधक अथवा योगी को इन बाह्य सुखों का दास नहीं बनना चाहिए। उसे तो अनासक्त भाव से जीवन जीना चाहिए। उसके पास जो भी सुख साधन उपलब्ध हैं, उनका उपयोग भी दूसरों को सुख पहुँचाने के लिए करना चाहिए।

अतः योगी पुरुष को विषयों के प्रति अनासक्त रहकर अपरिग्रह का पालन करना चाहिए। महर्षि व्यास जी का कहना है कि–

विषय रूप धनादि भोग्य पदार्थों के अर्जन करने में दोष, संग्रह किए हुए पदार्थों की रक्षा में दोष, संगृहीत किए हुए पदार्थों के नाश होने में दोष, संगृहीत ऐश्वर्यों में आसक्त होने में दोष तथा प्राणियों को दण्ड देकर सुख का उपभोग करने में दोष। साधक को इन सबका परिग्रह नहीं वरन् अपरिग्रह करना है।

मन कर्म वचन के आधार पर अपरिग्रह के भी तीन प्रकार हैं–

1. **बौद्धिक अपरिग्रह**–मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने से अधिक का संचय नहीं करना चाहिए। अधिक वस्तुओं का संचय करने का विचार भी मन में न लाना बौद्धिक अपरिग्रह कहलाता है।
2. **वाचिक अपरिग्रह**–साधक के लिए वाणी पर भी नियन्त्रण रखना आवश्यक है। उतना ही बोलना चाहिए, जितना आवश्यक है। काम, क्रोध, मोह, लोभ, माया, ममता पर संयम रखकर अनुचित शब्दों का प्रयोग न करना, किसी की निन्दा न करना, असत्य वचनों का प्रयोग न करना आदि वाचिक अपरिग्रह के लक्षण हैं।
3. **शारीरिक अपरिग्रह**–अपनी मूलभूत आवश्यकाताओं से अधिक धन, भूमि, भवन, अन्न, वस्त्र आदि का संग्रह न करना शारीरिक अपरिग्रह कहलाता है।

रोगी पुरुष को विषयों के प्रति आसक्ति छोड़कर अपरिग्रह का पालन करना चाहिए।

महर्षि पतंजलि ने कहा है कि–

जातिदेशकालसमयानवछिन्नाः सार्वभौमः महाव्रतम्।

अर्थात् जाति, देश, काल तथा समय आदि की सीमाओं के बन्धन से ऊपर उठ कर इन अहिंसादि का चित्त की सभी अवस्थाओं में पालन किया जाता है तो यह अहिंसावादी महाव्रत कहलाता है।

इन व्रतों के पालन करने में यदि सामान्य व्यक्ति की दृष्टि से देखा जाए तो बड़ी कठिनाई आती है। महर्षि पतंजलि द्वारा बताए गए यम के ये पाँच अंग व्यक्ति की नैतिकता तथा उसके विकास, उसकी स्थिरता से तो जुड़े हुए हैं ही, समाज के संदर्भ में भी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, विशेषकर तब, जब विकास तथा उन्नति भौतिकता की धुरी पर घूम रही हो।

ये पाँचों साधन मानव को अपने जीवन के परम उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए आत्मिक बल, उत्साह तथा स्फूर्ति प्रदान करते हैं।

?

सम्भावित प्रश्न

1. निम्नलिखित पर नोट लिखो– (Write notes on the following—
   (a) पाँच यम (Five Yamas)
   (b) ध्यान के प्रकार (Kinds of Dhyana)
2. यम और नियम, किस प्रकार सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन में आदर्श समायोजन में सहायक हैं—व्याख्या कीजिए।
   (Explain, how Yamas and Niyamas lead to ideal adjustment in social and personal life.)

◆◆◆

6

नियम

[Niyamas or Observances]

❖ नियम के अंग (Components of Observances)

नियम अष्टांग योग का दूसरा महत्त्वपूर्ण अंग है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। कोई भी व्यक्ति जो समाज के बिना रह सकता है, वह पशु है अथवा देवता। समाज के बिना रहना यदि असम्भव नहीं है तो कठिन अवश्य है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को समाज द्वारा स्वीकृत नियमों के अनुसार आचरण करना पड़ता है। समाज-विरुद्ध कार्य करने वाले व्यक्ति को समाज सम्मान तथा प्रतिष्ठा नहीं देता। समाज के नियमों का पालन करने वाला व्यक्ति ही समाज में एक आदर्श पुरुष के रूप में जाना जाता है। साधक इन नियमों पर चलकर अपने व समाज के मध्य सामाजिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक समन्वय स्थापित कर लेता है।

जहाँ तक समाज में नियमों का प्रश्न है, वहाँ धर्माचार्यों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से नियमों के भिन्न-भिन्न अंग अथवा संख्या बताई हैं। ये निम्नलिखित हैं–

याज्ञवल्क्य संहिता में नियम के दस अंगों का वर्णन किया गया है–

1. तप (Austerity)
2. सन्तोष (Contentment)
3. ईश्वर तथा वेदों में विश्वास (Faith in God and Vedas)
4. दान (Charity)
5. ईश्वर पूजा (Worship of God)
6. दर्शन का ज्ञान (Knowledge of Philosophy)
7. मन्त्रों का जाप (Recitation of Mantras)
8. ध्यान (Modesty)
9. बुराई से शर्म (Shame for evils)
10. मति अथवा बुद्धि (Wisdom)

श्रीमद् भागवद् गीता में नियमों की संख्या ग्यारह है–

1. शुद्धता (Purity)
2. मन्त्रों का जाप (Recitation of Mantras)
3. तप करना (Austerity)
4. ईश्वर का नाम लेना अथवा पुकारना (Recitation of God's name)
5. ईश्वर में श्रद्धा (Faith in God)
6. अतिथि सत्कार (Hospitality)
7. ईश्वर की भक्ति (Devotion to God)

8. तीर्थों का भ्रमण करना (Pilgrimage)
9. दूसरों का कल्याण (Welfare of others)
10. गुरुसेवा (Service of guru)
11. सन्तोष (Contentment)

महर्षि पतंजलि का कहना है कि–

शौच-सन्तोष-तपः-स्वाध्यायेश्वर-प्रणि-धानानि-नियमाः ।

अर्थात् नियम के पाँच अंग हैं–शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर-प्रणिधान।

❖ शौच (Purity)

शौच का अर्थ है शरीर तथा मन की पवित्रता। यह शौच, शुचिता अथवा पवित्रता भी दो प्रकार की होती है। एक बाह्य तथा दूसरी आभ्यन्तर अर्थात् आन्तरिक शौच।

बाह्य शौच–साधक को प्रतिदिन जल से शरीर को शुद्ध करना चाहिए, सात्विक आहार लेना चाहिए तथा स्वच्छ वस्त्र धारण करने चाहिएं। इन क्रियाओं से साधक का मन प्रसन्न रहता है। यह बाह्य शौच है अर्थात् स्थूल शरीर की शुद्धि।

आन्तरिक शौच–शरीर की सुन्दरता के साथ-साथ मन की पवित्रता भी अनिवार्य है। मन की शुद्धि राग, द्वेष आदि को त्यागकर मन की वृत्तियों को निर्मल करने से होती है। मन की पवित्रता के लिए बुरे विचारों को त्यागकर भजन, कीर्तन, सत्संग, स्वाध्याय आदि का अभ्यास करना चाहिए। इससे रजोगुण तथा तमोगुण की निवृत्ति होती है तथा मन में सात्विक गुण आते हैं।

साधक का आन्तरिक तथा बाह्य शौच को प्राप्त करने के लिए अपने मन, वचन तथा कर्म में पवित्रता लाने का प्रयास करना चाहिए।

महर्षि मनु ने शौच के सम्बन्ध में बहुत ही सुन्दर कहा है–

अद्‌भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।।

साधक को प्रतिदिन जल से शरीर की शुद्धि, सत्याचरण से मन की शुद्धि, विद्या तथा तप से आत्मा की शुद्धि तथा ज्ञान से बुद्धि की शुद्धि करनी चाहिए। मन, बुद्धि तथा आत्मा की शुद्धि के लिए ऋषियों द्वारा बताये गए उपायों को अपनाना चाहिए।

❖ सन्तोष (Contentment)

अपने मानव धर्म अर्थात् कर्त्तव्य का पालन करते हुए जो भी प्राप्त हो, उसे ईश्वर का प्रसाद समझकर उसी में सन्तुष्ट रहना तथा ईश्वर की कृपा से जो मिल जाए उसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करना सन्तोष है।

सन्तोष, वह नियम है जिससे व्यक्ति अपने मन, शरीर तथा कर्म से उपार्जित वस्तु अथवा सम्पत्ति में ही अपने आप को सन्तुष्ट रखे। अपने पास विद्यमान समस्त साधनों से पूर्ण पुरुषार्थ करे। जो कुछ प्रतिफल मिलता है, उससे पूर्ण सन्तुष्ट रहना तथा अप्राप्त की इच्छा न करना अर्थात् पूर्ण पुरुषार्थ तथा ईश्वर कृपा से जो प्राप्त हो, उसका तिरस्कार न करना तथा अप्राप्त की तृष्णा न रखना ही सन्तोष है। दूसरों को देखकर उससे अधिक प्राप्त करने की चेष्टा करना असन्तोष है।

वर्तमान भौतिकवादी युग में तनाव अथवा दुःख का मूल कारण असंतोष ही है। व्यक्ति अपने अभावों से कम दुःखी है परन्तु दूसरे के पास अधिक क्यों है? इससे अधिक दुःखी है। इसका परिणाम है–तनावपूर्ण जीवन।

महर्षि व्यास कहते हैं–

सन्तोषामृततप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम्।

कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम्।।

अर्थात् सन्तोष रूपी अमृत को पान करने से तृप्त हुए, शान्तचित्त मनुष्यों को जो आत्मिक व हार्दिक सुख मिलता है, वह धन वैभव की व्याकुलता में इधर-उधर भटकने वाले मनुष्यों को कभी भी नहीं मिल सकता।

अन्यत्र भी कहा गया है कि–

सन्तोषमूलं ही सुखं दुःखमूलं विपर्ययः

अर्थात् सुख का मूल आधार ही सन्तोष है। इसके विपरीत तृष्णा (लालसा) दुःखों का मूल है।

सभी धर्माचार्य तथा विद्वान् इस तथ्य से सहमत हैं कि हमारी जितनी तृष्णाएँ तथा लालसाएँ पूरी होती हैं उससे अधिक लालसाएँ बढ़ती चली जाती हैं। इच्छाएँ कभी पूरी नहीं होती। जब इच्छाएँ पूरी नहीं होतीं तो व्यक्ति को दुःख होता है।

असन्तोष सबसे बड़ा दुःख का कारण तथा सन्तोष सुख का कारक है।

उपनिषद् में कहा गया है कि–

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः।

अर्थात् धन के द्वारा मनुष्य की कभी भी तृप्ति नहीं होती।

साधक को पूर्ण पुरुषार्थ करते हुए उसका जो भी प्रतिफल ईश्वर अपनी न्यायव्यवस्था के अनुसार प्रदान करता है, उसमें पूर्ण सन्तुष्ट रहना चाहिए तथा यह सदैव याद रखना चाहिए कि ईश्वर सदा ही हमारी आवश्यकताओं तथा पात्रता से अधिक ही हमें रूप-रंग, यौवन, धन-धान्य, समृद्धि तथा समस्त वैभव प्रदान करता है। मानव को ईश्वर का कृतज्ञ होना चाहिए कि उसने बिन माँगे ही हमें इतना कुछ प्रदान किया है।

साधक को चाहिए कि अपनी इच्छाओं पर अंकुश लगाए। ऐसा करने पर ही उसे भौतिक ऐश्वर्य के क्षणिक सुख की भावना से छुटकारा मिल सकता है और वह परम सुख का अनुभव कर सकता है जाएगा।

मन की इच्छाओं पर नियन्त्रण करने के लिए साधक में सन्तोष का होना बहुत अनिवार्य है। इसलिए कहा गया है कि 'जब आवे सन्तोष धन, सब धन धूरि समान।'

सन्तोष धन के आगे सब धन धूल के समान हैं। यदि मन में सन्तोष नहीं तो कितना भी भौतिक वैभव मिल जाए, वह कभी प्रसन्न नहीं रह सकता। सुख-सुविधाओं तथा भौतिक साधनों की कोई सीमा नहीं है।

सन्तोषी साधक ही पूरी लग्न से योग-साधना में रत हो सकता है।

❖ तप
(Austerity)

'सुख-दुःख, सर्दी-गर्मी भूख-प्यास आदि द्वन्द्वों को सहन करते हुए मन तथा शरीर को साधना तप है'। महर्षि व्यास द्वन्द्वों को सहन करना ही तप मानते हैं।

महर्षि पतंजलि ने योग दर्शन में तप की व्याख्या करते हुए कहा है कि–

तपो द्वन्द्वसहनम्

अर्थात् द्वन्द्वों को सहन करना ही तप है। सिद्धि में जो भी कष्ट, बाधा अथवा प्रतिकूलता आए उनको सहजता से स्वीकार करते हुए निरन्तर बिना विचलित हुए अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते रहना ही तप है।

एक साधक तप के द्वारा चित्त का निग्रह करके, बुरे कार्यों तथा विचारों का दमन करके तथा भोग-विलास, विषय-वासनाओं से विमुख होकर ही इन द्वन्द्वों पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

उदाहरण के लिए सोने को तपाने से ही वह कुन्दन बनता है। अग्नि में तपाने से उसकी समस्त मलिनता नष्ट हो जाती है। इसी तरह तप की भट्ठी में तपने से साधक का अपने मन, वचन, प्राण तथा इन्द्रियों पर अधिकार हो जाता है।

तप साधना से शरीर में तेज की वृद्धि होती है तथा वह पुरुषार्थ की ओर अग्रसर होता है। उसके मानसिक व बौद्धिक विकार दूर हो जाते हैं।

महाभारत में एक प्रसंग आता है कि चारों पाण्डव पुत्र यक्ष के प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ होने के कारण मृत्यु का वरण करते हैं। अन्त में महाराजा युधिष्ठिर पानी की तलाश में तालाब पर पहुँचते हैं और पानी पीने का प्रयास करते हैं। तव यक्ष युधिष्ठिर से भी अन्य भाईयों की तरह प्रश्न पूछता है।

यक्ष युधिष्ठिर से प्रश्न करते हैं कि 'तपसः किं लक्षणम!' अर्थात् तप का क्या लक्षण है? युधिष्ठिर उत्तर देते हैं—'तपः स्वधर्मवर्तित्वम्'। हे यक्ष, अपने कर्त्तव्य के पालन में जो भी विघ्न-बाधाएँ आएँ, उन्हें सहते हुए निरन्तर अपने धर्म का पालन करना ही तप है। ये द्वन्द्व हैं—भूख, प्यास, गर्मी-सर्दी, सुख-दुःख, लाभ-हानि, मान-अपमान, स्तुति-निन्दा, जय-पराजय, आदर-निरादर आदि। अपने कर्त्तव्य का पालन करना ही तप है।

❖ स्वाध्याय
(Self-Study)

स्वाध्याय का शाब्दिक अर्थ है—स्वयं अध्ययन, आत्मचिन्तन तथा मनन करना। विचारों की शुद्धि तथा ज्ञान प्राप्ति के लिए विद्याभ्यास, धर्मशास्त्रों का अध्ययन, सत्संग तथा विचारों के आदान-प्रदान को भी स्वाध्याय कहा जाता है। नित्य ओऽम्, गायत्री मंत्र आदि पवित्र मन्त्रों का जाप तथा वेद, उपनिषद्, पुराण आदि शास्त्रों का ही स्वाध्याय है।

साधक को मन की शुद्धि तथा चित्त की कोमलता के लिए मन, कर्म, वचन से स्वाध्याय करना चाहिए। साधक परमार्थ तत्त्व को पहचानता है, उसके आचरण में सत्यता तथा पवित्रता आती है तथा वह पुरुषार्थ की ओर अग्रसर होती है।

ऐसा ही स्वाध्याय के सम्बन्ध में महर्षि व्यास ने कहा है। महर्षि व्यास कहते हैं—

'प्रणवादिपवित्राणां जपो मोक्षशास्त्राणामध्ययनं वा'

अर्थात् प्रणव ओंकार का जप करना तथा मोक्ष की ओर ले जाने वाले वेद-उपनिषद्, योग-दर्शन, गीता आदि जो सत्यशास्त्र हैं, इनका श्रद्धापूर्वक अध्ययन करना स्वाध्याय है। उत्तम ग्रन्थों का अध्ययन करने से हमारे विचारों तथा संस्कारों में पवित्रता, दिव्यता तथा दृढ़ता आती है। यदि विचार पवित्र हैं, दृढ़ हैं तो ही उनमें सात्त्विकता आती है। स्वाध्याय से मन में चिन्तन-मनन तथा विचार उत्पन्न होने आरम्भ हो जाते हैं। 'मैं कौन हूँ', 'कहाँ से आया हूँ' तथा 'कहाँ जाना है'? 'मुझे क्या करना चाहिए और मैं क्या कर रहा हूँ?' मेरे जीवन का वास्तविक लक्ष्य क्या है? ऐसे ही अनेक प्रश्न मन में बार-बार उठते रहते हैं।

इन प्रश्नों के उत्तर सरल नहीं हैं। ये ऐसे प्रश्न हैं, जिनका समाधान बहुत जटिल है।

यदि साधक सजग होकर विवेकपूर्वक विचार करे, बाहर के वैभव में न फंसकर प्रणव (ओंकार) का जप करे तथा पवित्र तथा धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन करते हुए वह परमेश्वर का सानिध्य प्राप्त करने में सफल हो सके, तभी इन प्रश्नों का उत्तर सम्भव हो सकता है।

❖ ईश्वर प्राणिधान
(Meditation on God)

मन, कर्म वचन से ईश्वर की भक्ति तथा उसके नाम, रूप, गुण, लीला आदि का श्रवण, कीर्तन, मनन तथा समस्त कर्मों को ईश्वर के प्रति अर्पित करना, ईश्वर प्राणिधान कहलाता है।

शरीर पंचभूतों अर्थात् जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी तथा आकाश से मिलकर बना है।

पंचभूतों से शरीर का निर्माण होता है तथा मरने पर शरीर इन पाँचों तत्त्वों में लीन हो जाता है। शरीर नश्वर है। पांचों तत्त्व अपने-अपने तत्त्वों में विलीन हो जाते हैं।

शरीर नश्वर है यदि कुछ अजर अमर है तो वह आत्मा है। शरीर कभी भी आत्मा का साथ नहीं दे सकता। आत्मा का उद्देश्य परमात्मा की प्राप्ति है। देहावस्था में परमात्मा के प्रति समर्पित रहना ही आत्मा का कर्त्तव्य है।

महर्षि व्यास जी कहते हैं कि—

''तस्मिन् परममगुरौ सर्वक्रियाणामर्पणम्''

अर्थात् उस गुरुओं के भी गुरु, परमगुरु परमात्मा में अपने समस्त कर्मों का अर्पण कर देना, ईश्वर प्राणिधान है। ईश्वर को वही समर्पित किया जाता है अथवा किया जाना चाहिए जो शुभ, दिव्य तथा पवित्र है। साधक को पूर्ण श्रद्धा, भक्ति व सर्वात्मना प्रयत्न से वही कार्य करने चाहिएँ, जिन्हें वह भगवान् के श्री चरणों में समर्पित कर सके। उसकी समस्त क्रियाओं का ध्येय ईश्वर-अर्पण होना चाहिए।

सच्चा साधक वही है जो सदैव यही विचार करता है कि मुझे जीवन में शरीर, मन, बुद्धि, शक्ति, रूप, यौवन, समृद्धि, ऐश्वर्य, पद प्रतिष्ठा, सम्मान आदि सभी वैभव जो कुछ उसे प्राप्त है, सब ईश्वर की कृपा का प्रतिफल है। जब सब कुछ उस ईश्वर द्वारा प्रदान किया गया है तो एक साधक को सदैव अपनी समस्त शक्तियों का प्रयोग उस महाप्रभु को प्रसन्न करने के लिए करना चाहिए।

एक सच्चे साधक का सदैव यह प्रयास रहना चाहिए कि सब कुछ प्रभु को प्रसन्न करने के लिए ही करना है। इस जीवन का सम्पूर्ण प्रयास व पुरुषार्थ यही है कि वह सब कुछ अपने सम्पूर्ण अस्तित्व सहित प्रभु के चरणों में अर्पित कर दे। भगवान् थोड़ा लेकर बदले में बहुत कुछ देता है। वह तो भाव का भूखा है।

उस भक्त पर भगवान् की कृपा व ईवरीय अमृत सदैव बरसता है जो ईश्वर के प्रति तन तथा मन से समर्पित हो जाता है। द्रौपदी की लाज बचाने भी भगवान् श्रीकृष्ण तभी पहुंचते हैं जब वह अपने प्रयास में असफल हो जाती है तथा दोनों हाथ ऊपर उठाकर अपने आपको ईश्वर भरोसे पर छोड़ देती है। अतः पूर्ण-समर्पण के बिना ईश्वर कृपा सम्भव नहीं होती। ऐसे बहुत से उदाहरणों से हमारे धार्मिक ग्रन्थ भरे पड़े हैं।

यम-नियम में बाधाएँ
(Difficulties in Yam & Niyam)

मानव जीवन का लक्ष्य सांसारिक कष्टों से मुक्त होकर शाश्वत तथा चिरंतन आनन्द की प्राप्ति है। सांसारिक विषय-वासनाओं के मोह में पड़कर प्राणी क्लेश, अभाव, दुःख, कष्ट आदि का अनुभव करता है। इनसे छुटकारा पाने के लिए वह नाना प्रकार के उपाय करता है। वह अनेक साधनों को अपना कर उस परम आनन्द अथवा परम तत्त्व की प्राप्ति का प्रयास करता है।

कर्म, उपासना, ज्ञान, योग आदि विभिन्न पद्धतियाँ इसी ध्येय-सिद्धि की साधनाएं हैं। मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य पुनर्जन्म नहीं, वरन् ज्ञान तथा कैवल्य के माध्यम से परम-आनन्द की अनुभूति है। इस अनुभूति के साधनों में योग मार्ग एक महत्त्वपूर्ण साधन है।

अष्टांग योग के विभिन्न अंगों में यम तथा नियम दो महत्त्वपूर्ण अंग हैं। परन्तु इन यम, नियमों का पालन करने में अनेक कठिनाईयां तथा बाधाएँ हैं जो हमें योगपथ से विचलित करती हैं।

महर्षि पतंजलि का कथन है—

वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ।।

यम-नियमों के अनुष्ठान में इनके विपरीत हिंसा, असत्य, चोरी, असंयम, परिग्रह तथा अशुचिता, असन्तोष, विलासिता, स्वाध्याय का अभाव तथा ईश्वर से विमुखता अधर्म है। इसके प्रतिपक्ष का चिन्तन करके इनसे बचना चाहिए।

यम-नियमों का पालन तभी हो सकता है यदि साधक यह दृढ़ निश्चय कर लें कि मैंने इस दुःखमयी संसार रूपी अग्नि के ताप से बचना है। मैंने यदि एक दफा हिंसा, असत्य, चोरी, असंयम, वितर्कों का त्याग कर दिया है तो मैं जीवन पर्यन्त इन्हें भूलकर भी ग्रहण नहीं करूंगा। मुझे इन अवगुणों का परित्याग करने में बहुत समय लगा है। मैंने इन बुराईयों का परित्याग किसी के कहने अथवा दबाव में आकर नहीं वरन् विवेक पूर्वक निश्चय करके इन दोषों का परित्याग किया है। मैंने हर स्थिति में श्वानवृत्ति का परित्याग करना है। मैं दृढ़ निश्चयी होकर यम तथा नियमों का पालन करूंगा। यही मेरे जीवन का धर्म है, यही जीवन का लक्ष्य है। यदि मुझे अपने धर्म का पालन करना पड़े, मुझे अपने प्राणों की आहूति देनी पड़े तो मुझे—

'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' स्वीकार है।

ये वितर्क क्या हैं? इनसे बचने की प्रतिपक्ष भावना क्या है?

इस विषय में महर्षि पतंजलि का कहना है कि ये हिंसा, असत्य, चोरी आदि वितर्क कृत्य हैं।

ये वितर्क कार्य तीन प्रकार के होते हैं–

1. स्वयं किए हुए।
2. दूसरों द्वारा कराये गए।
3. दूसरों के अनुमोदित किए गए गलत कार्य।

ये सभी लोभ, क्रोध तथा अज्ञान के कारण उत्पन्न होने वाले हैं।

विकृत कृत्यों के कारण साधक अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकता। उसे यम-नियमों का पूरी तरह पालन करना चाहिए, तभी साधक अपने अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हो सकता है।

यम-नियमों के अनुष्ठान का साधक को फल प्राप्त होता है।

यम-नियमों के अनुष्ठानों का क्या लाभ है अथवा फल मिलता है। इनका संक्षेप में वर्णन इस प्रकार है–

1. अहिंसा के अनुष्ठान का फल–

'अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।।'

साधक में अहिंसा की प्रतिष्ठा होने पर जो प्राणी योगी पुरुष के संग में रहते हैं, उनका भी हिंसा तथा वैरभाव छूट जाता है। योगी पुरुष पूर्ण रूप से अहिंसा का मनसा-वाचा-कर्मणा पालन करता है। जब योगी पुरुष सब प्राणियों के प्रति हृदय ये सहज, निश्छल, निःस्स्वार्थ स्नेह तथा प्रेम करता है तो यह कैसे संभव है कि उसके प्रति कोई भी वैरभाव रखेगा। योगी पुरुष के सानिध्य से केवल मनुष्यों का वैरभाव ही नहीं छूटता वरन् देखने में आया है कि प्रेम तथा स्नेह से हिंसक पशु भी मित्र बन जाते हैं। वे भी हिंसा छोड़ देते हैं।

2. सत्याचरण का फल–सत्य में बहुत शक्ति है। सत्य का आचरण करने वाले योगी पुरुष जो कह देते हैं, वही हो जाता है। सत्याचरण के कारण उसकी वाणी अमोघ हो जाती है। धर्म ग्रन्थों में हम पढ़ते तथा योगी पुरुषों के मुखारविन्द से सुनते हैं कि योगी पुरुषों ने जो कुछ भी कहा, वही हुआ।

योगी पुरुषों का लक्ष्य है कि कभी भी असंभव, अयुक्त तथा हानिकारक वाणी का प्रयोग नहीं करते।

योगी पुरुष सदैव शुभ तथा सत्य ही उच्चारण करते हैं। योगी सिद्ध पुरुषों का एक शब्द ही जीवन को रूपान्तरित कर देता है। जीवन के प्रवाह को शुभ की ओर बदल देता है।

3. अस्तेय के पालन का फल–पूर्णरूप से चोरी का त्याग करके साधक को चारों ओर से शान्ति प्राप्त होती है। यह नितान्त सत्य भी है कि योगी पुरुष चोरी करना तो बहुत दूर की बात है, चोरी करने का विचार भी मन में नहीं लाते। वस्तुओं के संग्रह करने की उनकी इच्छा अथवा लालसा ही नहीं होती। उनकी इच्छाएँ इतनी सीमित होती हैं कि भगवान् स्वतः ही उन्हे पूर्ण कर देता है।

योगी महापुरुष सभी तरह के प्रलोभनों, मोह, माया, ममता से निर्लिप्त रहते हैं। दुनिया के वैभवशाली पुरुष उन्हें सभी प्रकार के ऐश्वर्य तथा सुख-सुविधाएँ अर्पित करने को तत्पर रहते हैं परन्तु वे इन्हें स्वीकार नहीं करते। यदि स्वीकार कर भी लेते हैं तो सारी धन-सम्पदा, जो उन्हें अर्पित की जाती है, मानवता के हित में लगा देते हैं। अपने पास कुछ नहीं रखते।

4. ब्रह्मचर्य के पालन का फल–ब्रह्मचर्य का पूर्ण रूप से पालन करने के कारण योगी पुरुष ओजस्वी व तेजस्वी होते हैं। योगी पुरुष के चेहरे पर बड़ी चमक होती है। ब्रह्मचर्य के कारण योगी पुरुष का ओज-तेज, कान्ति, वीर्य, बल तथा पराक्रम बढ़ जाता है। बिना ब्रह्मचर्य के फल के कोई भी पुरुष योगी नहीं हो सकता।

5. अपरिग्रह के अनुष्ठान का फल–अपरिग्रह के कारण मनुष विषय-विकारों से रहित होकर सदैव जितेन्द्रिय रहता है। मैं कौन हूं, कहां से आया हूं? मुझे क्या करना चाहिए? आदि शुभ गुणों का विचार करके योगी पुरुष भौतिक पदार्थों का संग्रह नहीं करता। जिस आत्मबोध से जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा मिलता है, वह इस स्थिति को प्राप्त कर लेता है।

6. शौच के अनुष्ठान का फल–यह भौतिक शरीर पवित्र नहीं हैं। इस शरीर को कितना ही साफ करें यह भीतर से मलमूत्र, मवाद, रक्त से भरा हुआ है। शरीर को चाहे जितना शुद्ध करने का प्रयत्न किया जाए फिर भी शरीर मलीन ही रहता है। जब साधक को यह आभास हो जाता है कि शरीर में मलीनता के अतिरिक्त कुछ नहीं है तो उसे इस हाड-मांस के पुतले से घृणा होने लग जाती है। जब साधक को अपने ही शरीर से घृणा तथा ग्लानि होने लगती है तो वह दूसरे स्त्री-पुरुष आदि से अपने शरीर के स्पर्श की इच्छा नहीं करता। आलिंगन आदि से भी उसे घृणा होने लगती है।

इस प्रकार के विचार के प्रतिफल स्वरूप साधक की शरीर से आसक्ति हट जाती है उसका शरीर से मोह भंग हो जाता है। उसका प्रेम शरीर से नहीं आत्मा से हो जाता है। इस शुद्धि तथा सत्य, अहिंसा, विद्या-तप आदि से साधक मन की प्रसन्नता प्राप्त करने में सफल हो जाता है।

7. सन्तोष के अनुष्ठान का फल—सन्तोष सुख सब से उत्तम सुख है। ऐश्वर्य, वैभव, धन-सम्पदा का भण्डार होने के पश्चात् भी यदि सन्तोष नहीं है तो मनुष्य कभी सुखी तथा प्रसन्न नहीं हो सकता।

सन्तोष के सुख को तो योगी जन-मोक्ष सुख कहते हैं।

महर्षि व्यास जी कहते हैं—

यच्च कामं सुखं लोके दिव्यं महत्सुखम्।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशी कलाम्।।

संसार में कामरूप तथा दिव्य स्वर्ग की कल्पना युक्त जो स्वर्गीय महान सुख है, ये दोनों ही प्रकार के भौतिक सुख तृष्णा के नाश होने पर प्राप्त होने वाले सुख के सोहलवें अंश के भी समान नहीं हो सकते।

अतः सन्तोष सुख से बढ़कर दुनिया में और कोई सुख नहीं।

तृष्णा ही हमें पग-पग पर सताती है। भर्तृहरि कहते हैं—

तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः।

अर्थात् तृष्णा की पूर्ति करने वाले बूढ़े हो जाते हैं परन्तु तृष्णा कभी भी बूढ़ी नहीं होती।

8. तप के अनुष्ठान का फल—तप के अनुष्ठान से अशुद्धि के क्षीण होने से, साधक का शरीर तथा इन्द्रियाँ सदैव दृढ़ व नीरोग रहती हैं।

महर्षि दयानन्द जी ने तप के विषय में कहा है कि—यथार्थ शुद्ध भाव, सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना, मन को अधर्म की ओर जाने से रोकना, शरीर तथा मन से शुभ आचरण करना। वेदादि सत्य विद्याओं का अध्ययन करना तथा दूसरों से करवाना, वेदानुसार आचरण करना आदि उत्तम धर्म युक्त कार्यों को करना तप कहलाता है।

9. स्वाध्याय के अनुष्ठान का फल—स्वाध्याय का अनुष्ठान करने वाले साधक योगी को मन्त्र-द्रष्टा ऋषि तथा सिद्ध पुरुष दिखाई दे जाते हैं। ऐसे धर्माचारियों की अनुकम्पा साधक पर बनी रहती है। प्रणव-ओंकार का जप करते समय तथा मोक्षदायक शास्त्रों का अध्ययन करते समय साधक के मार्ग में यदि किसी प्रकार की कठिनाईयां आती हैं तो सिद्ध पुरुष प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से उसका मार्गदर्शन करने के लिए आ जाते हैं। ईश्वर कृपा से साधक को सिद्ध पुरुष के रूप में गुरु भी मिल जाता है।

10. ईश्वर प्राणिधान का फल—जब साधक अपनी समस्त क्रियाओं को परमपिता परमेश्वर के श्रीचरणों में अर्पित कर देता है तथा उसके मन में किसी तरह के फल की इच्छा भी नहीं रहती तो ईश्वर उस पर अपनी विशेष कृपा से उसे कृतार्थ करता है। ऐसी स्थिति में साधक को समाधि की सिद्धि सुगमता से प्राप्त हो जाती है।

यम-नियमों तथा उनके अनुष्ठान करने पर प्राप्त होने वाली सिद्धियों के उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि योग के पहले तथा दूसरे अर्थात् यम तथा नियम के अनुष्ठान से साधक को सिद्धि प्राप्त करने में सफलता मिल जाती है।

?

सम्भावित प्रश्न

1. टिप्पणी करें— (Define—)
   (क) त्रिगुण (Trigunas) (ख) नियम (Niyamas) (ग) पाँच नियम (Five Niyamas)
2. पाँच यम और पाँच नियम क्या हैं? वर्णन कीजिए।
   (What are the five YAMS and five NIYAMAS? Explain.)

◆◆◆

7
आसन
[Asanas]

यम-नियमों तथा उनका अनुष्ठान करने पर प्राप्त होने वाली सिद्धियों का वर्णन करने के पश्चात् योग के तीसरे अंग को आसन कहा जाता है। योग के आसनों का अपना महत्त्व है। आसन क्रियात्मक योग है।

उच्च प्रकार की शक्ति प्राप्त करने का एक मात्र साधन योग है। शक्ति प्राप्त करने के लिए नित्य प्रति आसन करने पड़ते हैं। आसन से शरीर तथा मन दोनों को शक्ति प्राप्त होती है। योगियों ने अनेक प्रकार के आसनों तथा प्राणायाम का वर्णन किया है, जिनके करने से शरीर तथा मन पर नियन्त्रण होता है।

'स्थिरम् सुखमासनम्'।

अर्थात् जिसमें शरीर स्थिर रहे तथा मन को सुख प्राप्त हो, उस स्थिति को 'आसन' कहते हैं।

लौकिक कार्यों में शरीर को अधिक कसने का नाम प्रयत्न है। इन कार्यों में शरीर को अधिक न थकाना, प्रयत्न की शिथिलता, विश्राम, शरीर को सामान्य आराम देने के कारण तथा परमात्मा का ध्यान करने से आसन की सिद्धि होती है।

पद्मासन, भद्रासन, सिद्धासन अथवा सुखासन आदि किसी भी आसन में स्थिर तथा सुखपूर्वक बैठना आसन कहलाता है। साधक को जप, उपासना व ध्यान आदि करने के लिए किसी भी आसन में स्थिर तथा सुखपूर्वक बैठने का अभ्यास करना चाहिए। जो साधक इन आसनों में सुविधापूर्वक नहीं बैठ सकते अथवा वीमार हैं, वे यदि आसन करना चाहते हैं तो कुर्सी अथवा दीवार का सहारा भी ले सकते हैं।

जप, ध्यान, उपासना आदि के लिए आसन का अभ्यास बहुत अनिवार्य है। किसी भी तरह के ध्यानात्मक आसन करते समय मेरुदण्ड सदैव सीधा रहना चाहिए।

इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि आसन के लिए भूमि समतल हो, गद्दी, कम्बल अथा कुशा का आसन ऐसा होना चाहिए जो आरामदायक हो। आसन में बैठते समय किसी तरह का कष्ट न हो। आसन ऐसा होना चाहिए जो विद्युत कुचालक तथा आरामदायक हो।

उपासना के लिए एकान्त स्थान, शुद्ध वायु, मक्खी-मच्छर रहित वातावरण का होना भी आवश्यक है।

आसन की सिद्धि से नाड़ियों की शुद्धि, अरोग्य की वृद्धि तथा तन-मन को स्फूर्ति प्राप्त होती है। उद्देश्यों के भेद के कारण आसन दो श्रेणियों में आते हैं–

1. वे आसन जिनका उद्देश्य प्राणायाम अथवा ध्यान का अभ्यास है।
2. वे आसन जो शरीर को नीरोग बनाये रखने के लिए किए जाते हैं।

वास्तव में शरीर तथा मन का सम्बन्ध गहरा है। इसलिए दोनों को अलग-अलग देखना उचित नहीं है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन हो सकता है। तन तथा मन दोनों ही स्वस्थ होने चाहिएँ।

वास्तव में प्राणायाम तथा ध्यान का अधिकारी तो वही है, जिसने शरीर का पूरी तरह से शोधन किया हो। शोधन बिना आसनों के सम्भव नहीं है। स्थिर तथा सहज बैठने के लिए जो शक्ति तथा धैर्य चाहिए वे भी आसनों से ही मिलते है।

आज के भौतिकवाद का प्रभाव योग पर भी पड़ता दिखाई दे रहा है। योग-आसनों के नित्य नए आचार्य पैदा हो रहे हैं। समाज में ऐसी भ्रान्ति फैल रही है अथवा फैलाई जा रही है कि योग ही सब समस्याओं का एक

मात्र समाधान है। कुछ लोग योग के कुछ आसनों को करके आपने को योगी समझने लग जाते हैं तथा कुछ लोग उन्हें योगी मानने भी लग जाते हैं।

आसन तो योग का एक अंग मात्र है। योगी होना इतना सरल नहीं है। योगी बनने के लिए तो अहिंसा, सत्य, अस्तेय व ब्रह्मचर्य, यम-नियमों सहित अष्टांग योग का पूर्ण पालन करते हुए दीर्घकाल तक श्रद्धापूर्वक समाधि का अभ्यास करना पड़ता है। इन सब के पश्चात् ही कोई व्यक्ति योगी बनने तथा कहलाने का अधिकारी होता है।

❖ प्राणायाम (Pranayam)

बहुत से लोग प्राण का अर्थ श्वास या वायु लगाते हैं तथा प्राणायाम का अर्थ श्वास का व्यायाम बताते हैं, किन्तु यह धारणा गलत तथा भ्रामक है क्योंकि प्राण वह शक्ति है, जो वायु में क्या विश्व के सभी सजीव तथा निर्जीव पदार्थों में व्याप्त है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इसका सम्बन्ध श्वास द्वारा ली जाने वाली वायु से भी है, किन्तु यह वायु मात्र नहीं है, वरन् उसके अन्तर में निहित प्राण शक्ति है।

जब किसी की अचानक मृत्यु हो जाती है तो कहा जाता है कि इसके प्राण-पखेरु उड़ गए। वायु और उसमें अन्तर्निहित प्राण की इस भिन्नता का हमें प्राणायाम के प्रसंग में ध्यान रखना चाहिए।

'प्राणायाम का शाब्दिक अर्थ हुआ प्राण का आयाम यानि विस्तार करना।' आसन के सिद्ध हो जाने पर श्वास-प्रश्वास की गति को यथाशक्ति नियन्त्रित करना 'प्राणायाम' कहलाता है।

शरीर की शुद्धि के लिए जैसे स्नान की आवश्यकता होती है, वैसे ही मन की शुद्धि के लिए प्राणायाम की आवश्यकता होती है।

प्राणायाम से हम स्वस्थ तथा नीरोग होते हैं, दीर्घायु प्राप्त करते हैं, स्मरण शक्ति बढ़ती है।

प्राणायाम से नाड़ियाँ शुद्ध होती हैं, हमारे स्नायु मण्डल को शक्ति मिलती है, मन की चंचलता नियन्त्रित होती है तथा मन में एकाग्रता आती है। प्राणायाम से मन तथा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

महर्षि व्यास जी का कथन है कि 'प्राणायाम से बढ़कर कोई तप नहीं है। इससे मल धुल जाते हैं तथा ज्ञान का उदय होता है।'

मनु महाराज का कहना है—जैसे अग्नि से धौंके हुए स्वर्ण आदि धातुओं के मल नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार प्राणायाम से इन्द्रियों के मल नष्ट हो जाते हैं।

महर्षि पतंजलि का कथन है कि प्राणायाम से पाप आदि दोष तथा इन्द्रियों की विषया-सक्ति के निवृत्त होने से ज्ञान का प्रकाश होता है।

प्राणायाम से ज्ञान को ढ़कने वाने अज्ञान का नाश होता है। मन 'धारणा' के योग्य होता है। प्राणायाम से अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, जिन्हें लोग चमत्कार कहते हैं।

सहज रूप से प्राप्त सिद्धियों का प्रयोग 'सिद्ध पुरुष' लोगों की आलौकिक शक्ति में आस्था जगाने के लिए भी करते हैं।

? सम्भावित प्रश्न

1. योग के तीसरे अंग 'आसन' क सविस्ता व्याख्या करें।
   (Write a detailed note on 'Asanas' – the third element of yoga.)
2. योग के आसनों का मनुष्य के जीवन के विकास में क्या योगदान है?
   (What is the important of Asanas of yoga is the development of an's life ?)

◆◆◆

8

योग का वर्गीकरण
[Classification of Yoga]

❖ भूमिका (Introduction)

योग शब्द वेदों, उपनिषदों, गीता एवं पुराण आदि में अति पुरातन काल से प्रयोग में होता आया है। भारतीय दर्शन में योग एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शब्द है। आत्मदर्शन व समाधि से लेकर कर्म क्षेत्र तक योग का व्यापक व्यवहार हमारे शास्त्रों में हुआ है। महर्षि पतंजलि को योग दर्शन का उपदेष्टा माना जाता है। उनके अनुसार 'योग' शब्द का अर्थ 'वृत्ति-निरोध' है। प्रमाण विपर्यय, विकल्प, निद्रा व स्मृति, ये पाँच वृत्तियाँ अभ्यास तथा वैराग्य से मन में लय को प्राप्त हो जाती हैं तथा मन आत्मा के स्वरूप में अवस्थित हो जाता है तब योग होता है।

महर्षि व्यास योग से अभिप्राय समाधि से लेते हैं।

साधारण शब्दों में योग शब्द का अर्थ है आत्मा का परमपिता परमात्मा से मिलन। संयम पूर्वक साधना करते हुए आत्मा का परमात्मा के साथ योग कर के समाधि का आनन्द लेना योग है।

योग का तात्पर्य स्वचेतना तथा चेतना के मुख्य केन्द्र परम चैतन्य प्रभु के साथ संयुक्त हो जाना है। सम्यग् बोध से रागोपहति होने पर जब व्यक्ति वैराग्य के भाव से अभिभूत होता है तब वह समस्त क्षणिक भावों, वृत्तियों से ऊपर उठकर आत्मसत्ता के सम्पर्क में आता है।

योग का अनादिकाल से महत्त्व बताया गया है परन्तु योग के सम्बन्ध में विभिन्न धर्माचार्यों, योगाचार्यों तथा धर्मग्रन्थों में बहुत मतभेद है। आत्मा तथा परमात्मा के इस एकीकरण के लिए क्या-क्या उपाय किए जाएँ तथा क्या निधि तथा साधन अपनाए जाएँ? यह मतभेद ऐसा ही है जैसा विभिन्न धर्मों की उपासना पद्धति में है। सबका एकमात्र उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना है।

सभी दर्शनों तथा धर्मों के मार्ग अलग-अलग हो सकते हैं परन्तु सबका लक्ष्य एक ही है, वह है, परमात्मा से मिलन। इस विचार को और स्पष्ट करने के लिए कहा जा सकता है,—सभी नदियों का लक्ष्य एक ही है और वह है समुद्र में मिलन, समुद्र के साथ आत्मसात् होना। लक्ष्य एक ही होते हुए भी उसके मार्ग भिन्न-भिन्न हैं। सभी नदियां अपने-अपने मार्ग से चलती हुई अपने गन्तव्य समुद्र में विलीन हो जाती हैं। धर्माचार्यों द्वारा सुझाए गए विभिन्न पथ उसी परमात्मा की ओर ले जाते हैं। यह बात योगाचार्यों द्वारा प्रतिपादित अलग-अलग योग-पद्धतियों पर लागू होती है। सभी योग-पद्धतियाँ अपने-अपने तरीकों से साधक को अपने-अपने रास्तों से चलते हुए ऐसी समाधि की अवस्था में पहुंचाने का प्रयत्न करती हैं, जहां पहुँचकर वह अपनी आत्मा के स्वरूप को दिव्यात्मा में लीन कर सके।

भारतीय वाङ्मय में गीता का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान है। गीता का विश्व की विभिन्न भाषाओं में अनुवाद इस बात का प्रमाण है कि गीता का कितना महत्त्व है। भारत के आधुनिक सन्तों ने तो गीता के योग का प्रचार विश्व भर में किया है।

गीता में योगेश्वर श्रीकृष्ण योग को विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त करते हैं। अनुकूलता, प्रतिकूलता, सिद्धि, असिद्धि, सफलता, विफलता, जय-पराजय, मान-सम्मान आदि इन सब स्थितियों में आत्मस्थ रहते हुए सम रहने को योग कहते हैं। सुख है तो भी ईश्वर कृपा है, दुःख है तो भी ईश्वर कृपा है।

महाभारत में प्रसंग आता है कि एक दफा भगवान् श्रीकृष्ण ने बुआ कुन्ती से कुछ मांगने को कहा तो उन्होंने भगवान् से ऐश्वर्य तथा वैभव नहीं मांगा वरन् विपत्ति तथा संकट मांगा। भगवान् की याद सुख में नहीं वरन् दुःख तथा विपत्ति में ही आती है। भगवान् की याद सदैव मन में बनी रहे इसीलिए कुन्ती ने सुख नहीं दुःख तथा कष्ट माँगा।

कहा भी गया है कि– दुःख में सुमरिन सब करें, सुख में करे न कोई।
जो सुख में सुमरिन करे तो दुःख काहे को होय।।

असङ्ग भाव से द्रष्टा बनकर अन्तर् की दिव्य प्रेरणा से प्रेरित होकर कुशलता पूर्वक कर्म करना गीता में योग माना गया है।

जैनाचार्यों के अनुसार जिन साधनों से आत्मा की सिद्धि तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है, वह योग है। अन्यत्र जैन दर्शन में मन, वाणी तथा शरीर की वृत्तियों को भी कर्म योग कहा गया है।

आधुनिक युग के महान् योगी श्री अरविन्द के अनुसार परमदेव के साथ एकत्व की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना तथा इसे प्राप्त करना ही सब योगों का स्वरूप है।

ऊपरवर्णित योग की विभिन्न मीमांसा से स्पष्ट होता है कि गंतव्य सब का एक है तथा वह है, समाधि अवस्था में पहुंचकर परमात्मा से ऐक्य।

इस गन्तव्य तक पहुँचने के लिए योगाचार्यों ने जो विभिन्न मार्ग अंकित किए हैं, उनके अनुरूप ही योग के कई प्रकार हैं।

भगवत्गीता में अठारह अध्यायों में अठारह प्रकार के योगों का वर्णन किया गया है। इसी तरह अन्य भारतीय ग्रन्थों में विभिन्न प्रकार के योगों का अलग-अलग वर्णन मिलता है। यथा–

हठयोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग, सांख्ययोग, ध्यानयोग, लययोग, प्रेमयोग, जपयोग, भक्तियोग, तन्त्रयोग, मन्त्रयोग, राजयोग, नादयोग, बुद्धियोग आदि योग के विभिन्न प्रकार हैं।

इस अध्याय में योग के विभिन्न प्रकारों में से कुछ महत्त्वपूर्ण योगों की व्याख्या करने का प्रयास करेंगे जिससे सर्वसाधारण को योगों के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त हो सकें तथा योग मार्ग पर चलकर अपने जीवन को सफल बना सकें।

1. राजयोग (Raja Yoga)

योग की अवधारणा के सम्बन्ध में धर्माचार्यों में एकमत नहीं है। विभिन्न धार्मिक ग्रन्थों में योग के विभिन्न प्रकारों का वर्णन किया गया है। यह निर्णय करना इतना सरल कार्य नहीं है कि किस योग का महत्त्व अधिक है तथा किस योग का महत्त्व कम है।

महर्षि पतंजलि ने अष्टांगयोग पद्धति का प्रतिपादन किया है। इस पद्धति में राजयोग स्वतः ही शामिल हो जाता है। यदि कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि महर्षि पतंजलि ने अपने अष्टांग योग को राजयोग का नाम दे दिया है। राजयोग एक प्रकार से अष्टांग योग ही है।

अष्टांग योग पद्धति की साधना से एक राजयोगी अपने बृहत् उद्देश्य की प्राप्ति करने में शीघ्र सफल हो सकता है।

राजयोग का विभिन्न योगों की पद्धतियों की भाँति एक ही उद्देश्य अथवा लक्ष्य है और वह है अपने अन्तिम परम उद्देश्य अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति।

राजयोग एक प्रकार से ऐसी योग पद्धति का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें सभी अन्य मुख्य योग पद्धतियों अथवा विद्याओं की अनिवार्य अच्छी बातों को अंगीकार कर लिया गया है।

राजयोग एक समन्वयवादी दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है। इसमें व्यक्तित्व के सभी पक्षों यथा–शारीरिक, मानसिक, भावात्मक अथवा आध्यात्मिक पक्ष के सर्वांगीण विकास को महत्त्व दिया गया है। किसी एक पक्ष के विकास से पूर्ण विकास सम्भव नहीं है। इसीलिए राजयोग में हठयोग, लययोग, तन्त्रयोग, मन्त्रयोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग

आदि सभी प्रकार के योग शामिल होते हैं। सभी योगों के मिश्रण के कारण ही इसे राजयोग कहा जाता है। राजयोग का स्तर अन्य सभी प्रकार के योगों से ऊँचा अथवा श्रेष्ठ समझा जाता है।

राजयोगी की मानसिक तथा आत्मिक अवस्था अन्य योगियों तथा साधकों की अपेक्षा कुछ ऊँचे स्तर की होती है। यह योग, योग की आरम्भिक अथवा पहली सीढ़ी नहीं है वरन् इससे कुछ ऊँची है।

इस तथ्य को इस उदाहरण से और स्पष्ट किया जा सकता है। राजनीतिशास्त्र का कोई विद्यार्थी अथवा अर्थशास्त्र का कोई विद्यार्थी आरम्भिक ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् स्नातकोत्तर कक्षा की पढ़ाई करता है। सीधे अथवा आरम्भ में एम.ए. अथवा एम.ए.पी.एच-डी. पढ़ाई नहीं की जा सकती। इसी तरह हठयोग, मन्त्रयोग, लययोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग आदि विभिन्न योग-विद्याओं से निकला हुआ योगी ही राजयोग के भव्य मार्ग पर चल सकता है।

मूलरूप में योग साधना का उद्देश्य चित्त-वृत्ति का निरोध तथा मन का नियन्त्रण है। व्यक्ति संसार के बन्धनों में पड़ा रहता है। मोह, माया, ममता, अहंकार आदि दुर्गणों में लिप्त मन तथा चित्तवृत्तियां बार-बार भटक जाती हैं। मन बड़ा चंचल है तथा इस चंचल मन पर नियन्त्रण रख पाना इतना सरल नहीं है। आत्मा के ऊपर अज्ञान तथा मोह-माया की भयंकर काली परतें चढ़ी तथा जमी रहती हैं। इन सबका निवारण करने तथा व्यक्ति को मोह-माया के जाल से निकालने का कोई साधन है तो वह केवल योग-साधना ही है। योग साधना से मन को नियन्त्रिण किया जा सकता है। योग-साधना के अतिरिक्त और कोई उपाय तथा साधन दिखार्द नहीं देता।

योग-साधना चंचल मन पर अंकुश अथवा नियन्त्रण लगा सकती है परन्तु सबसे बड़ी समस्या है योग साधना कैसे की जाए? कहना जितना सरल होता है, करना उतना ही कठिन होता है।

योग-साधना में सबसे पहले शरीर की ओर ध्यान देना पड़ता है। राजयोग के लिए हठयोग एक प्रकार से प्रथम सीढ़ी का कार्य करता है।

षट्कर्म, आसन, बंध, मुद्रा तथा प्राणायाम से शरीर को इस प्रकार साध लिया जाता है कि वह पर्याप्त रूप से सक्षम, सक्रिय, नीरोग तथा शक्ति-सम्पन्न बन जाए। ऐसा शरीर ही सभी कार्यों, इन्द्रियों तथा मन को नियन्त्रित कर सकता है। एक स्वस्थ तथा शक्तिशाली शरीर में ही शक्तिशाली मन हो सकता है। तन कमजोर तो मन कमजोर। यदि मन कमजोर है तो शरीर भी कमजोर। कहा जाता है कि–

'मन के जीते, जीत है
मन के हारे हार।

इन्द्रियों तथा मन को संयत करने के लिए विचार तथा भाव पक्ष भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यम, नियम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा आदि का भी राजयोग में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

मन की चंचलता पर काबू पाने के लिए एक राजयोगी अन्य सभी विधाओं यथा भक्ति योग, सांख्ययोग, ज्ञानयोग, मन्त्रयोग, तन्त्रयोग आदि से पूरी मदद अथवा पूरा लाभ उठाने का प्रयास करता है।

राजयोगी अथवा राजयोग का साधक नादयोगी भी है तथा लय योगी भी।

राजयोगी यहीं तक सीमित नहीं रहता, वह कुंडलिनी को जागृत करके सोई हुई आत्म तथा गुप्त शक्तियों को ध्यान व धारणा द्वारा केन्द्रित करता है तथा चक्रों के भेदन का प्रयास भी करता है।

राजयोगी अनन्त आनन्दमय अमृत का पान करके तथा समाधिस्थ होकर ब्रह्म में लीन होने का प्रयास करता है।

जहां तक राजयोग के साधन के रूप में अंगों का प्रश्न है, धर्माचार्यों ने राजयोग साधन के लिए 16 अंगों का वर्णन किया है। 16 अंगों का आगे विभाजन भी किया गया है। 16 अंगों में से 7 अंग विचार प्रधान माने गए हैं। चित्त पर नियन्त्रण विचारों से ही किया जाता है। धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन, सात्विक भोजन तथा धार्मिक चर्चा के कारण विचार शुद्ध बन सकते हैं। यदि विचार शुद्ध नहीं हैं तो मन भी शुद्ध नहीं हो सकता। इन सात अंगों में विचारों के द्वारा चित्त-वृत्ति-निरोध पर बल दिया गया है। मन पर नियन्त्रण होता है तो ही शरीर पर नियन्त्रण हो सकता है।

दो अंग धारणा से सम्बन्धित हैं। धारणा दो तरह की है–

1. प्रकृति धारणा, 2. ब्रह्मधारणा।

राजयोग-साधन के तीन अंग ध्यान प्रक्रिया में सम्बन्धित हैं–

1. विराट् ध्यान
2. ईश ध्यान
3. ब्रह्म ध्यान।

धारणा तथा ध्यान के बिना किसी भी योग की क्रिया पूरी नहीं हो सकती।

चार अंग समाधि से सम्बन्धित हैं–

1. वितर्कानुगत समाधि
2. विचारानुगत समाधि
3. आनन्दानुगत समाधि
4. अस्मितानुगत समाधि।

इन 16 विभिन्न अंगों की साधना का उद्देश्य मन को वश में करके प्राण शक्ति पर नियन्त्रण रख समाधि अवस्था में पहुंचकर योग के परम लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।

इन सभी 16 अंगों को महर्षि पतंजलि ने अपनी योग पद्धति में वर्णित 'अष्टांग योग' में समाहित करने का प्रयास किया है।

महर्षि पतंजलि द्वारा वर्णित योग के आठ अंग–यम, नियम, आसन, ध्यान, धारणा, समाधि, प्राणायाम, प्रत्याहार में राजयोग से सम्बन्धित सभी प्रकार की योग क्रियाएं तथा साधन अच्छी तरह से शामिल हो जाते हैं।

शरीर, मन-भावनाओं, विचारों पर अंकुश लगाकर तथा ज्ञान युक्त भक्ति में लिप्त होकर कुंडलिनी जागरण की चेष्टा की जाती है, जो अत्यन्त कठिन कार्य है। कुंडलिनी जागरण के लिए साधक को बहुत प्रयास करना पड़ता है। चक्रवेधन कार्य तथा समाधिस्थ होकर परम-आनन्द की प्राप्ति आदि सभी बातें, जिनकी एक राजयोगी को आवश्यकता होती है, सभी महर्षि पतंजलि द्वारा प्रतिपादित अष्टांग योग पद्धति में स्वतः ही शामिल हो जाती हैं।

अन्ततः यम-नियम आदि के अभ्यास से चित्त को निर्मल कर ज्योतिर्मय आत्मा का साक्षात्कार करना राजयोग कहलाता है।

2. कर्मयोग (Karma Yoga)

धर्माचार्यों ने इस संसार को कर्म-क्षेत्र कहा है। प्रत्येक प्राणी को यहां आकर कुछ-न-कुछ कर्म अवश्य करना पड़ता है। कर्म किए बिना कोई भी प्राणी रह ही नहीं सकता। चाहे कर्म अच्छे करता है अथवा बुरे करता है।

महाभारत में जब अर्जुन को युद्ध क्षेत्र में मोह हो जाता है तथा इस मोह वश अर्जुन गाण्डीव धनुष छोड़कर युद्ध करने से इंकार कर देता है तो भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हैं। हिन्दू धर्म का सबसे महान् ग्रन्थ गीता को माना जाता है। गीता का सारा सार कर्म सिद्धान्त पर आधारित है। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को कर्म-दर्शन का उपदेश देते हैं–है अर्जुन! मोह को त्याग तथा युद्ध कर। युद्ध करना क्षत्रिय का धर्म है। मरना तो सभी ने है। तू तो केवल निमित्त मात्र है। कर्म दर्शन के उपदेश के कारण अर्जुन का मोह भंग होता है तथा युद्ध में विजयश्री प्राप्त करता है।

गीता में कहा गया है कि कार्य तथा अकार्य का निर्णय शास्त्र के प्रमाण से करना चाहिए। शास्त्र के विधान को जानकर उसके अनुसार कर्म करना ही कर्त्तव्य है। यही कर्मयोग है। भगवान् ने उपदेश देते हुए अर्जुन को कहा था–'तू कर्म कर फल की चिन्ता मत कर।' कर्म करने से कोई न कोई फल अवश्य मिलता है।

कर्मयोग में योगी अथवा साधक की निष्ठा निष्काम कर्मयोग से होती है। कर्मयोग के सम्बन्ध में धर्माचार्यों के विचारों में भिन्नता के कारण इसे कई नामों से जाना जाता है। कोई इसे 'समत्व योग' कहता है तो कोई कर्मयोग को बुद्धियोग कहता है। कुछ धर्माचार्य कर्म को 'सत्कर्मयोग' कहते हैं तो कुछ 'निष्काम कर्मयोग' कहते हैं। कई धर्माचारी इसे 'मदर्थ कर्मयोग' कहते हैं तो अन्य के विचारों में इसे 'तदर्थ कर्मयोग' का नाम दिया गया है। जब इन योगों में साधन की पराकाष्ठा रूप निष्ठा उत्पन्न हो जाती है तभी योग की सिद्धि होती है।

मानव कोई-न-कोई कर्म अवश्य करता है तथा उसे कोई-न-कोई कर्म करते रहना चाहिए। यहाँ एक तथ्य ध्यान में रखना आवश्यक है–कर्म का अभिप्राय भाग्य नहीं है, काम है।

मानव को कर्म का परित्याग नहीं करना चाहिए। भगवान् श्रीकृष्ण गीता में अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं कि कर्मों के त्यागने से न तो निष्कर्मता की प्राप्ति होती है तथा न ही भगवत् साक्षात्कार रूप सिद्धि की प्राप्ति होती है।

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि हे कुन्तीपुत्र! (कौन्तेय) तुझे अपना सहज कर्म चाहे वह दोष युक्त ही क्यों न हो त्यागना नहीं चाहिए।

'सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत्।।'

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को यही उपदेश देते हैं कि जो भी कर्म किए जाएँ वे सभी निष्काम भाव से किए जाएँ। कर्म करते समय फल की इच्छा नहीं होनी चाहिए।

हम सभी फल की इच्छा से ही कर्म करते हैं। यदि हमारे द्वारा किए गए कर्म का हमारी इच्छानुसार फल नहीं मिलता तो हम कर्म करना नहीं छोड़ देते हैं। भाग्य को दोष देना आरम्भ कर देते हैं। 'हमारा तो भाग्य ही खराब है। इतनी मेहनत के पश्चात् भी कुछ लाभ नहीं मिला।' फल की पूर्व इच्छा से किए गए कर्म से सन्तोष नहीं मिलता।

भगवान् श्रीकृष्ण इसीलिए गीता में कहते हैं कि हे अर्जुन! आसक्ति को छोड़कर, सिद्धि तथा असिद्धि में समान बुद्धि वाला होकर योगस्थ हुआ कर्मों को कर, यह समत्व भाव (अर्थात् जय-पराजय, की चिन्ता किए बिना) ही कर्म योग है।

मानव की सबसे बड़ी समस्या अथवा कठिनाई ही यह है कि वह कर्म करने से पहले ही फल की इच्छा करने लग जाता है। वास्तव में मनुष्य कर्म करने में ही स्वतन्त्र है, फल की प्राप्ति में नहीं। कर्म करने पर फल की आकांक्षा करना व्यर्थ है क्योंकि मनुष्य का मन बहुत कमजोर है। यदि उसे आकांक्षा के अनुसार फल नहीं मिलता तो कर्म करना ही छोड़ देता है। यदि कोई कहे कि जब इच्छानुसार फल की प्राप्ति नहीं हो सकती तो कर्म क्यों किया जाए। कर्म करना व्यर्थ है। ऐसी स्थिति में ही भगवान् कहते हैं कि यह ठीक नहीं है क्योंकि कर्म करना तो मानव का स्वाभाविक धर्म है। अतः फल की इच्छा को छोड़कर कर्म करना चाहिए।

महात्मा तुलसीदास द्वारा रचित रामचरितमानस में भी ऐसा वर्णन आता है जब भगवान् श्रीराम अपने अनुज लक्ष्मण से कहते हैं कि 'जो भक्त निष्काम भाव से मेरा भजन करता है, मैं उसके हृदय में निवास करता हूं'। रामायण में इसका प्रमाण भी है। भक्त हनुमान जी को सुन्दर मणियों की माला भेंट स्वरूप दी जाती है तो वे एक-एक मणि को तोड़कर देखते हैं कि इसमें श्रीराम जी हैं अथवा नहीं। अन्त में वे अपना सीना चीरकर दिखाते हैं। जहां श्रीराम जी लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न तथा माता सीता के साथ विराजमान होते हैं। श्री हनुमान जी राम जी के लिए जो भी कार्य करते हैं निष्काम भावना से करते हैं।

भगवान प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर निवास करते हैं। जो व्यक्ति जैसा कर्म करता है उसे उसके अनुरूप ही फल मिलता है।

''जो जस करई सो तस फल चाखा''

बोये पेड़ बबूल के आम कहां से पाए। बबूल के पेड़ से आम नहीं मिलते। 'जैसी करनी वैसी भरनी' एक बहुत प्राचीन कहावत है। प्रत्येक व्यक्ति को कर्म के अनुसार ही फल मिलता है। प्रत्येक कर्म का कुछ-न-कुछ परिणाम अवश्य होता है। कर्म का चक्र निरन्तर चलता रहता है तथा प्रत्येक प्राणी को अपने कर्मों के अनुसार सुख-दुःख भोगने पड़ते हैं।

गीता में कहा गया है–

कर्मणो गहना गतिः

कर्म की गति बड़ी गहन है। यद्यपि यह निर्णय करना तो कठिन है कि किस कर्म का कब तथा क्या परिणाम होगा, परन्तु यह निश्चित है कि समय आने पर प्रत्येक कर्म का कुछ-न-कुछ फल अवश्य मिलता है।

'कर्म की गति टरै नाहीं'। निश्चित रूप से यह सत्य है कि कर्म की गति टलती नहीं है। किसी भी तरह

के पाप व पुण्य के कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है। यह सम्भव है कि आज के कर्म का फल आज ही अर्थात् तुरन्त मिल जाए अथवा आज के कर्म का फल कल परसों अथवा कुछ समय के पश्चात् प्राप्त हो। यह भी सम्भव है इस जन्म में किए गए कर्मों का फल अगले जन्म में भोगना पड़े। यह एक शाश्वत सत्य है कि राजा से लेकर रंक तक कोई भी कर्म के फल से बचा नहीं है। देर सवेर सभी को अपने कर्मों का फल भोगना पड़ता है।

महाभारत तथा मनुस्मृति में कहा गया है कि कर्म का फल अनिवार्य नहीं है कि उसे ही भोगना पड़े इसके विपरीत एक व्यक्ति द्वारा किए गए कर्मों का फल उसके सगे-सम्बन्धियों को भी भोगना पड़ सकता है।

कीचड़ में पत्थर फेंकने वाले पर ही नहीं वरन् उसके संगी-साथियों पर भी छींटे पड़ सकते हैं।

भय, भूख, निद्रा तथा सन्तान उत्पत्ति के गुण तो ईश्वर ने इस चराचर जगत् के सभी जीव-जन्तुओं को प्रदान किए है। मानव जीवन तो बहुत सद्कर्मों के पश्चात् ही मिलता है। मानव पर ईश्वर की विशेष अनुकम्पा है इसीलिए तो मानव को एक बहुत बड़ी शक्ति प्रदान की है और वह है विवेक, बुद्धि।

मानव को अपने विवेक का प्रयोग करते हुए ऐसे कार्य करने चाहिएँ, जिनका परिणाम सुखद हो सके। कई दफा घटना-चक्र से प्रभावित होकर अथवा विवेक से कार्य न करने पर मनुष्य ऐसे कर्म भी करता है अथवा उससे हो जाता है, जिसका परिणाम सुखद नहीं वरन् दुःखद होता है।

एक सच्चा साधक अथवा योगी वही है, जो सुख-दुःख में समान भाव रखता है। सुख में अधिक प्रसन्नता नहीं तथा दुःख में रोना नहीं।

समबुद्धि रखने वाले के कर्म बंधन-कारक नहीं होते। इसलिए कर्म में फल की आशा नहीं रखनी चाहिए।

भगवान् श्रीकृष्ण गीता में मोह में पड़े अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं कि हे अर्जुन! तुम्हारा अधिकार केवल कर्म करने में है, फल का मिलना न मिलना तुम्हारे अधिकार क्षेत्र से बाहर की बात है

''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन''

मनुष्य को फल की आशा न रखकर कर्मेन्द्रियों से कर्म करते रहना चाहिए, यही कर्मयोग है। ईश्वर ने शरीर के जितने अंग बनाए हैं, सबके कार्य भी निश्चित किए हैं। सभी अंगों को अपने-अपने कार्य करने पड़ते हैं।

गीता के पंचम अध्याय में सन्यास योग व कर्मयोग में कर्मयोग को श्रेष्ठ माना गया है। कर्म की कुशलता को योग की संज्ञा दी गई है।

मानव शरीर की रचना में यह आभास होता है कि व्यक्ति जागृत अथवा सुप्त दोनों अवस्थाओं में क्रियाशील रहता है। अचेतन मन भी क्रियाशील रहता है। सपने तभी आयेंगे यदि मन क्रियाशील होगा। समय तथा प्रकृति में एक क्षण के लिए भी ठहराव नहीं है। जीवन चलने का नाम है। प्रकृति मानव से यही अपेक्षा करती है कि वह सदैव क्रियाशील रहे। क्रियाशील रहने से हमारी शक्तियाँ विकसित होती हैं।

यदि शरीर के किसी अंग से अधिक समय तक काम न लिया जाए तो शरीर का वह अंग बेकार हो जाता है।

कर्मरत रहने वाला मानव ही कर्मयोगी है। परन्तु कर्मयोगी को फल का सर्वदा त्यागकर देना चाहिए। **भगवान् श्रीकृष्ण गीता** में कहते हैं–

''सर्वफलत्यागंकुरु''

व्यक्ति को सभी कर्म फलों का त्यागकर देना चाहिए। श्रीकृष्ण आगे कहते हैं–

''त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गम्''

अर्थात् कर्म के फल का त्याग करके जो ज्ञानी पुरुष आसक्ति छोड़कर कर्म करता है वह पापों से ऐसे ही अलिप्त रहता है, जैसे कमल के पत्ते को जल स्पर्श नहीं करता।

गीता का सार ही कर्मयोग है। मोह में फंसे अर्जुन को मोहजाल से निकालने का यही एक मात्र साधन था।

कर्मयोग व्यावहारिक वेदान्त है। कर्मयोगी कठिन परिस्थितियों में भी जीवन से निराश नहीं होता। वह निराशावादी नहीं वरन् आशावादी होता है। कर्मयोग का जीवन में बहुत महत्त्व है। कर्मयोग का एक छोटा सा

अंश भी जीवन में अपना लिया जाए तो जीवन सार्थक हो जाए। जो व्यक्ति कर्म नहीं करता वह अपने जीवन को तो बर्बाद करता ही है, समाज में भी आदर सम्मान नहीं पाता। कर्मयोगी अपना विकास तो करता ही है, समाज भी उसका आदर करता है। कर्मयोग का थोड़ा-सा भी आचरण जीवन में बड़े-बड़े संकटों तथा विपत्तियों से बचाने की सामर्थ्य रखता है।

सुख-दुःख में समभाव रखना तथा एक जैसा रहना ही जीवन की सफलता व सच्चा कर्मयोग है।

कर्मयोग ही जीवन की साधना है। परन्तु साधना तभी सफल हो सकती है यदि साधक फल की आशा छोड़कर अलिप्त भाव से काम करता है।

मानसिक सन्तुलन बनाए रखने के कारण निष्काम कर्म की यह भावना व्यक्ति को नैतिक सहारा प्रदान करती है। व्यक्ति के जीवन-क्षेत्र में निरन्तर प्रगति होती रहती है।

कर्मयोग का सच्चा सन्देश यही है कि मानव को निरन्तर क्रियाशील रहना चाहिए। उसकी क्रियाशीलता से उसे तो लाभ होगा ही समाज का भी कल्याण होगा।

3. ज्ञानयोग (Gyan Yoga)

ज्ञान तथा योग का सम्बन्ध चोली-दामन की तरह है। एक के बिना दूसरे की कल्पना भी नहीं की जा सकती। ज्ञान के बिना योग तथा योग के बिना ज्ञान सम्भव नहीं है। ज्ञान प्राप्ति के लिए एकाग्रचित्त होना अनिवार्य है तथा योग एकाग्रता का अमूल्य साधन है। योग के लिए चित्तवृत्तियों का निरोध आवश्यक है।

''योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः''

यदि हम योग मार्ग पर चलना चाहते हैं तो यह जानना अनिवार्य हो जाता है कि चित्तवृत्तियों पर नियन्त्रण कैसे रखा जाए?

गीता में चित्तवृत्तियों पर नियन्त्रण के सम्बन्ध में कहा गया है—

''अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः''

अर्थात् अभ्यास तथा वैराग्य द्वारा चित्तवृत्तियों पर नियन्त्रण रखा जा सकता है।

'करत करत अभ्यास से जड़मति होत सुजान'

बार-बार अभ्यास करने से बुद्धिहीन व्यक्ति भी ज्ञानवान् हो जाता है।

अभ्यास तथा वैराग्य के द्वारा ही मन को अपने वश में किया जा सकता है। मन को वश में करना इतना सरल नहीं है। बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों के मन भी डोल जाते हैं। नारद जैसे महान् योगी भी चंचल मन के वशीभूत हो गए थे। ज्ञान होने पर भी व्यक्ति योग साधना कर सकता है तथा ज्ञान की प्राप्ति के लिए योग साधना सम्भव है।

जो साधक अपने मन को वश में करने में सफल हो जाता है, वही अपनी चित्तवृत्तियों को भौतिक प्रलोभनों से रोककर, मन को शान्त कर अध्ययन, चिन्तन तथा मनन कर सकता है। जब साधक इस स्थिति को प्राप्त कर लेता है तभी उसे ज्ञान की प्राप्ति होती है।

जो साधक अपनी चित्तवृत्तियों अर्थात् इन्द्रियों को अपने वश में नहीं कर पाता, वह वास्तविक ज्ञान भी प्राप्त नहीं कर सकता। उसका ज्ञान अधूरा होता है।

ज्ञान दो प्रकार का होता है—

1. स्थूल ज्ञान
2. सूक्ष्म ज्ञान

1. स्थूल ज्ञान—स्थूल ज्ञान भौतिक ज्ञान होता है। भौतिक साधनों को जुटाने का ज्ञान। इन्द्रियों को सन्तुष्ट करना तथा विषय-वासनाओं की ओर आकर्षित रहना। यह ज्ञान व्यक्ति को सांसारिक उलझनों में उलझाए रहता है। सांसारिक सुख-प्राप्ति के कारण व्यक्ति अपने आपको ज्ञानवान् समझता है।

वर्तमान भौतिकवादी युग में धनवान् को ही ज्ञानवान् माना जाता है।

2. सूक्ष्म ज्ञान–सूक्ष्म ज्ञान व्यक्ति को भौतिक साधनों से हटाकर आध्यात्मिकता की ओर ले जाता है। सूक्ष्म ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है जो साधक को परमार्थ के रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित करता है। सूक्ष्म ज्ञान में आत्मज्ञान समाविष्ट होता है। आत्मज्ञान से बुद्धि में स्थिरता आती है। बुद्धि में स्थिरता से व्यक्ति उच्च स्थिति प्राप्त करने में सफल होता है। सूक्ष्म ज्ञान व्यक्ति को सद्मार्ग पर लगाता है तथा पापों से निवृत्ति के लिए प्रयत्न करता है। जब पुरुष पाप मुक्त होता है तभी उसकी वृत्ति पुण्य कार्यों में लगती है।

सूक्ष्म ज्ञान को लेकर धर्माचार्यों तथा विद्वानों में एकमत नहीं है। उन्होंने अपने-अपने दृष्टिकोण से ज्ञान के स्वरूप का वर्णन किया है।

लोकमान्य तिलक ने अपनी पुस्तक 'गीता रहस्य', जो उन्होंने जेल में लिखी थी। उस गीता रहस्य नामक पुस्तक में ज्ञान को परिभाषित करते हुए लोकमान्य तिलक का कहना है 'पदार्थों में एक ही अविनाशी परमेश्वर समा रहा है, इस समझ का नाम ही ज्ञान है'।

ज्ञान तीन प्रकार का होता है–

1. सात्त्विक ज्ञान
2. राजसी ज्ञान
3. तामसी ज्ञान

जिस ज्ञान से यह विदित होता है कि भिन्न-भिन्न प्राणियों में एक ही अविभक्त तथा अव्यय भाव अथवा तत्त्व है, उसे सात्त्विक ज्ञान कहा जाता है।

जिस ज्ञान से केवल इन्द्रियों को सन्तुष्ट करने की प्रवृत्ति रहती है। मनुष्य अपने पर नियन्त्रण खोकर बुरे कर्मों की ओर प्रवृत्त होने लगता है, वह राजसी ज्ञान कहलाता है।

तामसी ज्ञान में आत्मा दूषित हो जाती है। यह ज्ञान दूसरों को हानि पहुंचाने में आनन्द का अनुभव करता है। यह ज्ञान दानवों का गुण है, जो अपने आपको ही ईश्वर समझने लग जाते हैं।

गीता में ज्ञान के लक्षणों का वर्णन करते हुए कहा गया है–

'जो व्यक्ति प्रिय वस्तु से प्रायः प्रसन्न नहीं होता तथा अप्रिय को पाकर खिन्न नहीं होता, जिसकी बुद्धि स्थिर रहती है तथा जो मोहजाल से मुक्त होता है, उसी ब्रह्मज्ञानी को ब्रह्म में स्थित हुआ समझना चाहिए।

इस प्रकार का ब्रह्मज्ञानी अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर सिद्ध-अवस्था को प्राप्त कर लेता है। इस ज्ञान की प्राप्ति के लिए योग-साधना सर्वश्रेष्ठ मानी गई है। ज्ञान प्राप्ति के लिए समाधि ही जप-तप तथा यज्ञ है।

यहाँ पर समाधि से तात्पर्य है–चित्त को एकाग्र करके भगवान् में लगाना है जो योगी अथवा साधक अपने चित्त को भगवान् में लगा देता है, वही समाधि की स्थिति को प्राप्त कर पूर्ण ज्ञानी हो जाता है।

ईशोपनिषद् में कहा गया है 'ईशावास्यम् इदं सर्वम्' अर्थात् इस संसार में जो कुछ भी है, उस सबमें ईश्वर का वास है। कोई ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ परमपिता परमेश्वर का वास न हो। ज्ञान के अभाव में व्यक्ति 'मैं' में लगा रहता है। 'ईश्वर' तथा 'मैं' के सम्बन्ध में कहा गया है कि जहाँ मैं है वहाँ तू (ईश्वर) नहीं जहाँ तू है वहाँ मैं नहीं। 'मैं' के कारण व्यक्ति ईश्वर के अस्तित्व को भी स्वीकार नहीं करता।

जब 'मैं' समाप्त हो जाता है तथा ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है तभी वह समझने लगता है कि इस भौतिक जगत् में मेरा कुछ भी नहीं है, सब कुछ ईश्वर का है। तन-मन-धन सब कुछ तेरा है। तेरा तुझ को अपर्ण, क्या लागे मेरा।'

ईश्वर के प्रति समर्पित ऐसा साधक ही सांसारिक बन्धनों से मुक्ति प्राप्त करने में सफल हो सकता है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में भी इस तथ्य का समर्थन किया गया है कि ज्ञान के बिना मुक्ति प्राप्त करने का कोई और साधन अथवा उपाय नहीं है।

ज्ञान वह सीपी है जिसमें प्रवेश किए बिना कोई मोती नहीं बन सकता।

इस विश्व में ज्ञान से बढ़कर पवित्र करने वाला वास्तव में और कुछ भी नहीं है।

ज्ञानी भक्त ईश्वर को सबसे अधिक प्रिय होता है। भगवान् ऐसे ज्ञानी को अपनी आत्मा मानते हैं।

ज्ञानी व्यक्ति ही अपनी चित्तवृत्तियों का निरोध कर भगवान् में स्थिर रहता है।

भगवान् श्रीकृष्ण कुरुक्षेत्र के मैदान में अर्जुन को उपदेश देते हुए इसी बात पर बल देते हैं कि ज्ञान की महिमा अपरम्पार है। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि जिस तरह अग्नि लकड़ियों को राख के ढेर में परिवर्तित कर देती है, उसी तरह ज्ञान की अग्नि सभी शुभ-अशुभ कर्म-बन्धनों को भस्म कर देती है।

ज्ञानी को कर्म बन्धन में डालने में सफल नहीं हो सकते। जिस व्यक्ति को ज्ञान प्राप्त हो जाता है, उसे परम आनन्द तथा शान्ति प्राप्त हो जाती है।

ज्ञान से अमरत्व की प्राप्ति होती है।

जो साधक अथवा योगी ज्ञान योग की साधना में सफल हो जाता है, वह ईश्वर को प्रिय लगता है। ऐसा ज्ञानी साधक पाप मुक्त हो जाता है। साधक जीवन के अन्तिम लक्ष्य अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

4. ध्यान योग (Dhyan Yoga)

अष्टांग योग का सातवाँ अंग ध्यान है, जिसके अभाव में कोई भी साधना सिद्ध नहीं हो सकती। ध्यान के पश्चात् ही समाधि की अवस्था उत्पन्न होती है।

ध्यान का तात्पर्य है—वर्तमान में जीना। वर्तमान में जीकर ही मन की चंचलता को समाप्त किया जा सकता है, एकाग्रता लाई जा सकती है। इसी से मानसिक शक्ति के सारे भण्डार खुलते हैं।

''तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्''

उस धारण किए हुए अर्थात् नाभिचक्र, भ्रूमध्य अथवा हृदय में ध्येय रूप परमेश्वर में प्रत्यय एकतानता—ज्ञान का सदृश प्रवाह ध्यान है। जैसे नदी जब समुद्र में प्रवेश करती है तब वह समुद्र के साथ एकाकार हो जाती है, सदृश प्रवाह हो जाती है। वैसे ही ध्यान के समय सच्चिदानन्द परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य विषय का स्मरण नहीं करना, अपितु उसी अन्तर्यामी ब्रह्म के आनन्दमय, ज्योतिर्मय व शान्तिमय स्वरूप में मग्न हो जाना ध्यान है।

चित्त में आत्म-तत्त्व का चिन्तन ही ध्यान है। गोरक्ष संहिता में ध्यान के विषय में कहा गया है कि जो अपने चित्त में आत्म-तत्त्व का चिन्तन करे, यह चिन्तन ही ध्यान कहलाता है। साधारण शब्दों में कहा जा सकता है कि चित्त में चिन्तन करना ही ध्यान है।

महर्षि पतंजलि ध्यान योग के सम्बन्ध में कहते हैं कि जहां चित्त को ठहराया जाए, उसमें वृत्ति का समान बने रहना ही ध्यान है।

जिस ध्येय के लिए ध्यान करना है, उसी में चित्त वृत्ति लगी रहे। मन जो बहुत चंचल है, उसे टिकाए रखना बड़ी कठिन है। मन इधर-उधर न भटके, मन एकाग्र रहे, कोई अन्य वृत्ति बीच में आकर व्यवधान न डाले, वही ध्यान है।

ध्यान हमारे जीवन के साथ प्रतिपल जुड़ा हुआ है। भारतीय संस्कृति में ध्यान प्रत्येक क्रिया का पूरक होता है।

ध्यान में योगी अथवा साधक अपने शरीर, मन, प्राण पर संयम करके चित्तवृत्तियों को पूरी तरह नियन्त्रित कर लेता है। वह अपने मन को इधर-उधर भटकने नहीं देता। मन को एकाग्र करके एक स्थान पर केन्द्रित कर लेता है। ध्यान की इस अवस्था तक पहुंचे बिना कोई भी साधक अथवा योगी समाधि अवस्था में नहीं पहुंच सकता।

ध्यान के बिना जीवन अधूरा है। ध्यान के बिना हम अपने किसी भी आध्यात्मिक लक्ष्य में सफल नहीं हो सकते। ध्यान से ही हम सदा आनन्दमय व शान्तिमय जीवन जी सकते हैं।

ध्यान अपने आपमें एक बहुत बड़ी यौगिक प्रक्रिया है।

ध्यान की सिद्धि के लिए ध्येय का होना बहुत अनिवार्य है। ध्येय के बिना ध्यान की सिद्धि कभी नहीं हो सकती। योग का अन्तिम लक्ष्य ब्रह्म की प्राप्ति है। इसी को अपना ध्येय बनाकर ध्यान का अभ्यास करना चाहिए।

साधारणतया ध्यान के तीन प्रकार हैं–

1. स्थूल ध्यान
2. सूक्ष्म ध्यान
3. ज्योतिर्मय ध्यान।

स्थूल ध्यान को सगुण ध्यान भी कहा जाता है। इसमें साधक अपने इष्ट देव, जिस देव पर उसकी श्रद्धा अथवा विश्वास होता है, निश्चल दृष्टि से देखने का अभ्यास करता है। जब तक साधक अपने मन पर पूर्ण नियन्त्रण करने में सफल नहीं होता, वह इस विधि से ध्यान योग आरम्भ करता है। प्रायः सभी साधारण साधक अथवा योगी व गृहस्थी इसी ध्यान विधि द्वारा अपने इष्ट देव की उपासना तथा वन्दना करते हैं।

सूक्ष्म ध्यान में साधक अपने मन पर नियन्त्रण स्थापित कर चुका होता है। अब उसे अपने इष्ट देव की मूर्ति अथवा चित्र की आवश्यकता नहीं होती। वह निराकार रूप का ध्यान करते हुए समाधि की अवस्था में पहुंच जाता है।

''निर्गुणध्यानयुक्तस्य समाधिश्च ततो भवेत्''

सूक्ष्म ध्यान में योगी अथवा साधक भृकुटी के मध्य में अथवा नासिकाग्र पर दृष्टि टिकाकर, दोनों नेत्रों को पूर्ण खोलकर बगैर पलकें झपकाए परमात्मा का ध्यान करता है

सूक्ष्म ध्यान में साधक बिन्दुमय ब्रह्म कुंडलिनी शक्ति का चिन्तन करता है। इसके लिए शांभवी मुद्रा का अभ्यास किया जाता है।

ज्योतिर्मय ध्यान–

सुषुम्ना नाड़ी के नीचे के भाग अर्थात् मूलाधार में कुंडलिनी शक्ति विद्यमान होती है, जिसे योग-साधना द्वारा जागृत किया जाता है। इसको जागृत करने के लिए ज्योतिस्वरूप ब्रह्म का ध्यान करना ही ज्योतिर्मय ध्यान कहलाता है। ओंकाररूप ईश्वर का ध्यान तथा तेजोमय ज्योति- रूप ब्रह्म का चिन्तन ही ज्योति ध्यान है।

योगाचार्यों का मत है कि स्थूल-से-स्थूल तथा सूक्ष्म-से-सूक्ष्म पदार्थों को ध्येय बनाकर कुछ समय तक निरन्तर अभ्यास करते रहने से ही क्रमशः एक से दूसरे तथा दूसरे से तीसरे प्रकार के ध्यान की सिद्धि सुलभ हो जाती है।

जब साधक का अभ्यास पूरा हो जाता है तो एक समय ऐसा आता है जब वह अपने शरीर में ही सम्पूर्ण विश्व को देखने लगता है।

5. हठ योग (Hatha Yoga)

हठयोग से साधारण व्यक्ति यही अर्थ निकालता है कि कोई साधक अथवा योगी किसी प्रकार का हठ करके बैठा है तथा जब उसका हठ अथवा जिद्द पूरी हो जाएगी वह अपना हठ छोड़ देगा। हठयोग में साधक अपने शरीर पर किसी तरह का बल अथवा शक्ति का प्रयोग करता है।

आध्यात्मिक क्षेत्र में हठयोग का यह अर्थ कदापि नहीं है। हठ शब्द दो अक्षरों से मिलकर बनता है–ह और ठ। व्याकरण में तथा ह तथा ठ शब्दों के कई अर्थ लिए जाते हैं। ह से सूर्या ऊर्जा, पिण्डलानाड़ी, दाया नासारंध्र, गरम प्रकृति, अपान वायु, श्वासठ से चन्द्र ऊर्जा, इडानाड़ी, वाया नासारंध्र, ठण्डी प्रकृति, प्राण वायु, प्रश्वास। आध्यात्मिक ब्रह्म में सूर्य तथा चन्द्र की उपस्थिति का बहुत महत्त्व है। शारीरिक संरचना में अनेकों नाड़ियाँ होती हैं। इन अनकों नाड़ियों के समूह को दो वर्गो में विभक्त किया जा सकता है। इन्हें गरम तथा ठण्डी नाड़ियाँ अथवा पिंडला तथा इडा (नाड़ियाँ) भी कहा जाता है।

हठयोग साधना इन दोनों नाड़ियों में आवश्यक सन्तुलन तथा सामंजस्य पैदा करने का प्रयास करती है। इन दोनों नाड़ियों के बीच-में सुषुम्ना नाड़ी को चैतन्यमय बनाकर आत्मगत सूक्ष्म शक्तियों के विकास में सहायक होती है। इस प्रकार शक्ति-जागरण से साधक आध्यात्मिकता के उच्च शिखर पर पहुँचकर मोक्ष प्राप्त करने में सफल हो जाता है।

हठयोग का सीधा सम्बन्ध शरीर के साथ जुड़ा होता है। हठयोग में अंगों तथा नाड़ियों की शुद्धि तथा अंगों की कार्य प्रणाली के आवश्यक समन्वय व सन्तुलन से है।

हठयोग का सीधा सम्बन्ध शरीर के साथ जुड़ा होता है। हठयोग में अंगों तथा नाड़ियों की शुद्धि तथ अंगों की कार्यप्रणाली के आवश्यक समन्वय व सन्तुलन महत्त्वपूर्ण है। हठयोग का सीधा सम्बन्ध शरीर से है इसलिए हठयोग की सफलता के लिए शरीर का स्वस्थ होना बहुत अनिवार्य है। हठयोगी अपने अन्तिम लक्ष्य अर्थात् परमात्मा से तभी मिल सकता है, यदि शरीर ठीक है। हठयोगी के लिए शरीर पहली आधार भूमि है। एक रूप से शरीर नींव है। एक सुन्दर भव्य, टिकाऊ भवन का निर्माण हो, इसके लिए मजबूत नींव का होना अति आवश्यक है। नींव जितनी मजबूत होगी भवन भी उतना ही मजबूत होगा। कमजोर नींव पर कितने ही भव्य भवन का निर्माण कर दिया जाए उसके जरा से झटके से गिरने की सम्भावना बनी रहेगी। यह तथ्य हठयोगी के लिए भी उतना ही सत्य है।

शरीर को साधे बिना हठयोगी अपने उद्देश्य में कदापि सफल नहीं हो सकता। शरीर के साधने से ही मन सधता है। तन सुन्दर तो मन सुन्दर। शरीर तथा मन के सधने से ही आत्मा के दर्शन होते हैं।

आत्मशक्ति के चैतन्य हुए बिना व्यक्ति आध्यात्मिक मार्ग पर नहीं चल सकता। आध्यात्मिक मार्ग बहुत कठिन मार्ग है।

हठयोगी जब पूर्णतया चैतन्यमय तथा ज्ञानमय हो जाता है तभी वह समाधि अवस्था को प्राप्त होता है। समाधि अवस्था प्राप्त होने पर ही ईश्वर से एकाकार सम्भव होता है।

इस विवेचना से स्पष्ट हो जाता है कि हठयोग में जिस बात पर अधिक बल दिया जाता है, वह शरीर पक्ष ही है।

शरीर को स्वस्थ, सबल तथा क्रियाशील बनाने में जो साधन सहायक होते हैं उन्हें ही हठयोग के साधन के रूप में स्वीकार किया जाता है।

शरीर को स्वच्छ, सुन्दर व स्वस्थ रखने के लिए षट्कर्म से उत्तम और कोई साधन नहीं है। षट्कर्मों से शरीर के संस्थानों तथा अंग-प्रत्यंगों की शुद्धि होती है तथा वे कार्यशील व स्वस्थ बन जाते हैं।

हमारे शरीर की प्रकृति त्रिगुणात्मक है। वात, पित्त तथा कफ ये तीनों यदि समान रूप से रहें तो शरीर शुद्ध व नीरोग रहेगा।

षट्कर्म इन उपरोक्त तीनों वात, कफ तथा पित्त में समानता लाने में सहायता करते हैं। यदि ये बिगड़ जाएँ तो अनेक रोग हो जाते हैं। षट्कर्म करने से किसी प्रकार का रोग होता ही नहीं, यदि कोई रोग हो भी जाए तो इन षट्कर्मों से ठीक किया जा सकता है।

हमारे आजकल के गलत रहन-सहन तथा गलत खान-पान के कारण शरीर स्वस्थ नहीं रह पाता, शरीर में विकार जमा हो जाते हैं। शरीर का मल व विकार बाहर करने के लिए यौगिक षट्कर्म किए जाते हैं, जिससे वे विकार तथा मल शरीर से बाहर हो जाएं तथा अन्दर के अंग अपने-अपने कार्य सुचारू रूप से करने लगें।

आसन व प्राणायाम के अभ्यास से पहले षट्कर्म किए जाते हैं।

आसनों के द्वारा मांसपेशियों को सबल तथा शक्तिशाली ही नहीं बनाया जाता वरन् उन्हें शुद्ध किया जाता है। आसनों से शरीर के सभी अंग गतिशील, लचीले व सक्रिय हो जाते हैं। विभिन्न प्रकार के बंधों से मांसपेशियों के संकुचन तथा शिथिलीकरण के कार्य से सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त आसनों से प्राण वायु को इच्छानुसार नियन्त्रित करने के कार्य में सहायता मिलती है।

प्राणायाम के द्वारा शरीर की विभिन्न नाड़ियों को शुद्धिकरण तथा प्राणवायु की मात्रा में वृद्धि एवं सम्बन्धित श्वास-प्रश्वास की प्रक्रिया पर नियन्त्रण करने में सहायता मिलती है। प्राणायाम का उद्देश्य शरीर में व्याप्त प्राण शक्ति को उत्प्रेरित, संचारित, नियन्त्रित तथा सन्तुलित करना है। इससे हमारा शरीर तथा मन नियन्त्रण में आ जाता है। हमारे निर्णय करने की शक्ति बढ़ती है तथा सही निर्णय करने की स्थिति में आ जाते हैं।

शरीर की शुद्धि के लिए जैसे स्नान की आवश्यकता है, वैसे ही मन की शुद्धि के लिए प्राणायाम की आवश्यकता पड़ती है।

प्राणायाम से हम स्वस्थ तथा नीरोग होते हैं, दीर्घायु प्राप्त करते हैं, हमारी स्मरण शक्ति बढ़ती है तथा मस्तिष्क के रोग दूर होते हैं। हमारे आमाश्य, लीवर, वृक्, छोटी-बड़ी आँते तथा पाचन संस्थान के सारे अंग प्रभावित होते हैं, जो हमें कार्य कुशल बनाते हैं। प्राणायाम से नाड़ियाँ शुद्ध होती हैं, हमारे स्नायुमण्डल को शक्ति मिलती है, मन की चंचलता दूर होती है, मन एकाग्र होता है तथा इससे मन तथा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

व्यास भाष्य में कहा गया है—

'तपो न परं प्राणायामात् ततो विशुद्धिर्मलानां दीप्तिश्च ज्ञानस्य'

अर्थात् प्राणायाम से बढ़कर कोई तप नहीं। इससे मल धुल जाते हैं तथा ज्ञान का उदय होता है।

हमारे शरीर में दो प्रकार की प्राण तथा अपान नाम की वायु चल रही है। इन दोनों में से एक तो सिन्धु अर्थात् हृदय तक चलती है तथा दूसरी बाहर के वायु मण्डल तक। हे प्राणायाम के अभ्यासी मानव! उनमें से एक प्राण वायु तो तेरे अन्दर आरोग्य बल, उत्साह तथा जीवन शक्ति को ले आवे तथा दूसरी—अपान वायु जो भीतर के मल तथा रोगों को शरीर से बाहर ले जाए।

ऋषियों ने प्राण शक्ति को देवताओं का दूत तथा दिव्य शक्तियों को भीतर ले जाने वाला बताया है।

आसन तथा प्राणायाम की क्रियाओं से प्रशिक्षित साधक अथवा योगी जब मुद्रा नामक योग क्रियाओं का भी अभ्यास करता है तो वह अपनी शक्ति कुंडलिनी को जागृत करने में सक्षम हो जाता है। परिणामस्वरूप कुंडलिनी में प्राण-शक्ति सुषुम्ना नाड़ी के मार्ग चक्र से षट्चक्रों का भेदन करती हुए सहस्राधार में स्थित परमात्मा से ऐक्य स्थापित करने में समर्थ हो जाती है।

ऊपरवर्णित आसन तथा प्राणायाम का प्रयोग हठयोग साधक अपने शरीर को साधने के लिए करता है। साधक का शरीर आसन तथा प्राणायाम के कारण इतना सशक्त बन जाता है कि वह अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण रख सके। मन पर अंकुश अथवा नियन्त्रण के कारण साधक को आध्यात्मिकता की ओर बढ़ने के लिए ऐसे साधनों की आवश्यकता पड़ती है, जो मन को नियमित तथा प्रशिक्षित कर सके। इस दृष्टि से हठयोगी प्रत्याहार तथा ध्यान प्रक्रिया का सहारा लेता है। परिणामस्वरूप जागृत कुंडलिनी अथवा आत्मशक्ति को आगे समाधि अवस्था तक ले जाता है।

प्रत्याहार में इन्द्रियाँ अपने बाह्य विषयों से मुड़कर अन्तर्मुखी होती हैं तो उसे प्रत्याहार कहा जाता है।

इन्द्रियों के अपने-अपने विषय रूप-रसादि का सन्निकर्ष न होने पर चित्तवृत्ति के अनुरूप ही इन्द्रियाँ हो जाती हैं। जब साधक विवेक-वैराग्य से अपने मन पर नियन्त्रण कर लेता है तो यह मनोजय ही प्रत्याहार है।

ध्यान का तात्पर्य है—वर्तमान में जीना। वर्तमान में जीकर ही मन की चंचलता पर नियन्त्रण रखा जा सकता है। ध्यान से मानसिक शक्ति के सारे भण्डार खुलते हैं।

ध्यान के बिना जीवन अधूरा है। ध्यान के बिना किसी भी भौतिक तथा आध्यात्मिक लक्ष्य में सफल नहीं हो सकते। ध्यान से जीवन में आनन्द व शक्ति आती हैं। ध्यान एक बहुत बड़ी यौगिक प्रक्रिया है।

विक्षेप हटा कर चित्त का एकाग्र होना, ध्यान में जब चित्त ध्यानाकार को छोड़कर केवल ध्येय वस्तु के आकार को ग्रहण करता है तव उसे समाधि कहते हैं।

समाधि अवस्था में ध्यान करने वाला ध्याता नहीं रहता, वह अपने आपको ही भूल जाता है। यदि कुछ शेष रहता है तो मात्र ध्येय। समाधि ध्यान की चरम परिणति है। जब ध्यान परिपक्व हो जाता है, चित्त से ध्येय का द्वैत तथा तत्सम्बन्धी वृत्ति का भान चला जाता है।

आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान तथा बंध आदि साधनों का प्रयोग शरीर को साधने के लिए किया जाता है।

ऊपरवर्णित तथ्यों के आधार पर साधक का शरीर इस योग्य हो जाता है कि वह अपनी इन्द्रियों पर पर्याप्त नियन्त्रण रख सके। साधक की आत्मशक्ति बढ़ जाने से वह समाधि की अवस्था में पहुँच जाता है। समाधि अवस्था साधक की अन्तिम अवस्था होती है।

अन्ततः षट्कर्म, आसन, प्राणायाम, बांध, मुद्रा, प्रत्याहार, ध्यान तथा समाधि इन आठ अंगों में निहित विभिन्न योग-क्रियाओं का अभ्यास करके ही हठयोगी अपने लक्ष्य की प्राप्ति करने में सफल होता है।

6. लययोग (Laya Yoga)

संगीत के क्षेत्र में लय अर्थात् सुर का बहुत महत्त्व है। यदि कोई संगीतकार के वाद्य यन्त्रों के साथ मिलकर नहीं गा सकता तो ऐसा गायक कभी भी सफल नहीं हो सकता। लय में गाना संगीतकार की सफलता की पहली सीढ़ी है।

आध्यात्मिक क्षेत्र में लययोग का अर्थ है कि साधक अपने अन्तिम लक्ष्य अर्थात् परमपिता परमात्मा में लीन होने के लिए कितना अपने प्रयास में रमता है अर्थात् अपने अस्तित्व को भूलकर ईश्वर-प्राप्ति में रम जाता है। जब तक साधक ईश्वर-प्राप्ति के लिए तन्मय नहीं हो जाता वह अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकता।

लययोग ऐसी पद्धति का ही प्रतिनिधित्व करता है। लययोग में साधक अथवा योगी अपने तन-मन को आत्मा में पूरी तरह रमा देता है।

उदाहरण के लिए दूध में पानी डालने से पानी दूधमय हो जाता है। वह अपना अस्तित्व अथवा पहचान खो देता है। इसी तरह लययोग का साधक अपने अस्तित्व को भूलकर ईश्वर में तल्लीन हो जाता है। जब साधक पूरी तरह से आत्मा में लीन हो जाता है तो साधक का स्थूल शरीर, स्थूल विचार तथा मोह, माया, ममता से पीछा छूट जाता है। वह मोह-माया ममता के जंजाल से मुक्त हो जाता है। साधक को अपने वास्तविक आत्म-स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। उसकी आत्मा धीरे-धीरे परमात्मा के अस्तित्व में लय को प्राप्त होने लगती है।

जब साधक के शरीर की सभी क्रियाएँ, मन की चेष्टाएँ, प्राण का आवागमन, सब एक लय में हो जाते हैं। इस स्थिति में योगी को अपनी आत्मशक्ति को जगाने, पहचानने तथा उसका साक्षात्कार करने तथा आध्यात्मिक उन्नति करने का पूरा अवसर मिल जाता है।

हठयोग में शारीरिक पक्ष को अधिक महत्त्व दिया जाता है तो लययोग में मानसिक पक्ष को अधिक महत्त्व दिया जाता है। लययोग के लिए अनिवार्य है कि साधक एकाग्रचित्त हो तथा अपनी बाह्य इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखे। मन को ईश्वर में लीन करना इतना सरल कार्य नहीं है।

ध्यान तथा धारणा इस प्रकार लय की जाती है जिससे साधक कुंडलिनी शक्ति को जागृत कर सके, जिससे कुंडलिनी मूल आधार चक्र से सहस्र तक पहुंच सके।

तब ऐसा हो जाता है तो साधक अनहदनाद-दिव्य तरंग आवाज को सुन तथा आत्म के प्रकाश पुंज का अवलोकन कर सकता है।

साधक समाधि अवस्था में पहुंचकर परमात्मा में विलीन होने का प्रयास करता है।

साधक मानसिक शक्तियों को केन्द्रीभूत कर के आत्मिक शक्ति में इस तरह लय कर देता है कि उसमें इतनी प्रचण्ड शक्ति जाग उठती है कि वह स्थूल शरीर को त्याग देता है तथा आत्मिक तथा आध्यात्मिक जगत् में विचरण करने लग जाता है। साधक के अथक प्रयास से कुंडलिनी शक्ति जागृत होकर विभिन्न चक्रों को वेंधती हुई सहस्र कमल में स्थित शिव में लय हो जाती है। इस स्थिति में साधक को अनेक प्रकार का आलौकिक अनुभव होने लग जाता है। उसे नाद ध्वनि-अंतरंग ध्वनि जो-सूक्ष्म शरीर यानी आत्मा की ध्वनि होती है, वह सुनाइ देने लगती है। आरम्भ में साधक को ऐसा अनुभव होता है कि कहीं दूर जोर से बादल गरज रहे हैं, तो कभी उसे ऐसा अनुभव होता है कि समुद्र की तूफानी लहरें दहाड़ रही हैं, तो कभी उसे ऐसा अनुभव होता है कि बाजों का शोर गूँज रहा है। जब साधक ध्यान में मग्न बैठा रहता है तो ये शोर मचाती ध्वनियाँ धीरे-धीरे कम होती चली जाती हैं और साधक को ऐसा अनुभव होता है कि दूर मन्दिर की घंटियों की स्वर-लहरियाँ गूँज रही हैं। कोई मधुर स्वर में बाँसुरी बजा रहा है। धीरे-धीरे ये ध्वनियाँ भी कम होती चली जाती हैं। यह ध्वनि अर्थात् स्वर-लहरियाँ मधु-मक्खियों की शान्तगुंजन का रूप ले लेती हैं। यह वह स्थिति होती है जब साधक का मन पूरी तरह मधुर नाद ध्वनि में लीन हो जाता है।

अन्त में वह योग की चरम सीमा में पहुंच जाता है। जब उसे ऐसी अव्यक्त तथा पहले कभी न सुनने वाली दिव्य अनाहत ध्वनि अर्थात् परमपिता परमात्मा के कथन की ध्वनि सुनाई देती है।

साधक को एक ऐसे दिव्य, अविचल एवं अव्यक्त ज्योतिपुंज के दर्शन भी होते हैं, जिसे देखकर वह आत्मविभोर हो उठता है। यह वह स्थिति होती है जब आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है। ऐसा अनुभव होता है कि परमब्रह्म परमात्मा स्वयं उसके समक्ष खड़े हैं। इस अवस्था में साधक पूर्ण समाधि- अवस्था को प्राप्त करके मोक्ष का अधिकारी बन जाता है।

लययोग द्वारा मोक्ष की प्राप्ति के लिए जो सोपान सुझाए गए हैं, उन्हें इस योग के अंगों के रूप में जाना जाता है।

ये अंग हैं—यम, नियम, स्थूल क्रिया, सूक्ष्म क्रिया, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, लय क्रिया तथा अन्तिम समाधि।

लययोग योगी को समाधि अवस्था में पहुँचाकर मोक्ष प्राप्ति में सहायक होता है।

7. मन्त्र योग (Mantra Yoga)

भारतीय दंर्शन शास्त्र में मन्त्रों का बहुत महत्त्व है। किसी भी धार्मिक क्रिया अथवा अनुष्ठान में मन्त्रों की अपनी उपयोगिता है। शुद्ध मन्त्र-उच्चारण से केवल वातावरण ही शुद्ध नहीं होता वरन् कार्य-सिद्धि में भी सहायक होता है। भारतीय धर्म में ओ३म् के जाप का अर्थात् ओ३म् मन्त्र का विशेष महत्त्व है। हम इस मन्त्र के (वैसे तो सभी मन्त्रों के) विशेष रूप से शुद्ध-उच्चारण से जीवन की इच्छित मंजिल तक पहुँचने के लिए अग्रसर होते हैं।

भारतीय धर्म में जीवन, मरण, विवाह-शादी, पाठ-पूजन, हवन आदि सभी क्रियाएँ वेदमन्त्रों के उच्चारण से आरम्भ होती है।

साधक अथवा योगी के लिए मन्त्रयोग भी बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। योग की विभिन्न क्रियाओं में मन्त्रयोग अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। धार्मिक ग्रन्थों में पढ़ने को मिलता है कि प्राचीन ऋषि-मुनि मन्त्र-उच्चारण से ही हवन यज्ञ में अग्नि प्रज्वलित करते थे।

मन्त्र से एक विशेष प्रकार की ध्वनि गूँजती है, जिससे वायुमण्डल में एक सूक्ष्म कम्पन पैदा होती है। इस कम्पन का चमत्कारिक प्रभाव होता है जिससे एक विशेष प्रकार की प्रस्फुटन पैदा होती है।

मन्त्रों के उच्चारण से हमारे शरीर में स्थित विभिन्न प्रकार के नाड़ी केन्द्र अथवा नाड़ी चक्र प्रभावित होते हैं जिससे मनुष्य में आत्मज्ञान प्राप्त होता है तथा उसकी लौ परमात्मा में लगती है।

ब्रह्म, विष्णु, महेश हिन्दुओं के तीन मुख्य देवता हैं। प्रकृति भी त्रिगुणमयी है।

प्रत्येक मनुष्य में तीन तरह के गुण अथवा वृत्तियाँ हैं—सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण।

व्यक्ति की तीन अवस्थाएँ हैं—बाल्यपन, युवा-अवस्था, वृद्धा-अवस्था।

सृष्टि की सृजन, पोषण व संहार तीन मुख्य क्रियाएँ हैं।

ब्रह्म सृजन हार, विष्णु पोषण हार तथा शिव को संहारक माना जाता है।

ओ३म् (ॐ) शब्द में भी तीन ध्वनियाँ शामिल हैं। ओ३म् तीन शब्दों के मेल से बना है।

तीनों शब्दों के बहुत सार्थक अर्थ हैं। ये तीन शब्द तीन देवताओं के प्रतीक हैं।

'अ' ब्रह्म का प्रतीक है, जो सृष्टि का रचियता है।

'ऊ' विष्णु का प्रतीक है, जो सारी सृष्टि का पालनहार है।

'म' महेश का प्रतीक है जो सारी सृष्टि का संहारक है।

भारतीय दर्शन के ओंकार अर्थात् ओ३म् के साथ-साथ गायत्री मन्त्र का भी विशेष स्थान है। हरिद्वार में तो गायत्री मन्त्र का मन्दिर है। जिसमें गायत्री मन्त्र का सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक महत्त्व दर्शाया जाता है। गायत्री मन्त्र का योगपरक प्रशिक्षण भी दिया जाता है।

गायत्री तथा ओ३म् मन्त्र के शुद्ध उच्चारण से साधक अपने जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त करने में भी सफल हो सकता है।

मन्त्र के विषय में सबसे महत्त्वपूर्ण तथा अनिवार्य लक्षण हैं—इसका शुद्ध उच्चारण। गलत उच्चारण से अर्थ का अनर्थ हो सकता है।

यह तथ्य मन्त्रों के विषय में तो पूर्णतः सत्य है ही। जीवन के अन्य क्षेत्र के विषय में भी यह कहा जा सकता है कि बिना सही प्रयास किए मंजिल तक पहुँचना बहुत कठिन होता है।

मन्त्र के सम्बन्ध में यह तथ्य और भी महत्त्वपूर्ण है। किसी भी मन्त्र का जाप तभी फलदायक तथा प्रभावशाली हो सकता है जब साधक आत्मिक भावों के साथ पूर्ण आस्था तथा विश्वास से मन्त्र का शुद्ध उच्चारण करता है।

व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन आस्था तथा विश्वास पर टिका हुआ है। धार्मिक कार्यों का तो आधार ही आस्था तथा विश्वास है। सांसारिक कार्य तथा सामाजिक सम्बन्ध भी विश्वास पर आधरित है। जब व्यक्ति के सम्बन्धों में अविश्वास आ जाता है तो सम्बन्ध टूटने लग जाते हैं। कभी-कभी इस अविश्वास के कारण सम्बन्ध टूटने के कगार पर भी पहुंच जाते हैं।

मन्त्र का केवल मुख से उच्चारण करने मात्र से कार्यसिद्धि अर्थात् लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती। यदि मुख से मन्त्र का उच्चारण हो रहा है तथा ध्यान कहीं ओर लगा है तो मन्त्र का फल मिलने की सम्भावना नहीं रहती। ध्यान हट जाने अर्थात् एकाग्र न होने की स्थिति में साधक मूलमन्त्र ही भूल जाएगा अथवा उसका अशुद्ध उच्चारण करेगा।

मन्त्रयोग में साधक के लिए अनिवार्य है कि बिना शीघ्रता किए बड़े धैर्य तथा शान्त मन से पूरी श्रद्धा तथा आस्था से युक्त होकर, मन में अपने इष्ट देव का ध्यान करके मन्त्र का शुद्ध उच्चारण करे तभी वह अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफल हो सकता है।

जब पूरी लगन, श्रद्धा, आस्था, विश्वास, शान्त तथा निर्मल मन से किसी मन्त्र का बार-बार उच्चारण किया जाता है तो वह जाप कहलाता है।

सतृयुग, त्रेता युग, द्वापर युग में योगी को बड़ी कठिन तपस्या करनी पड़ती थी। हजारों सालों की कठोर तपस्या के पश्चात् कहीं योगी अपने इष्ट देव को अपने अन्दर अनुभव करता था अथवा उसे अपने इष्ट देव के दर्शन होते थे। कलियुग में 'नाम आधारा भवसागर तारा' है। हरि कीर्तन अथवा जाप सब संकटों से उबारने तथा हरि दर्शन का आधार है। यदि सच्चे मन से हरि भजन किया जाए तो योगी अपने लक्ष्य तक पहुंच जाता है।

कलियुग में कहा जाता है—

दारा सुत लक्ष्मी पापी के भी होय।
संतसमागम हरिकथा तुलसी दुर्लभ दोय।।

कलियुग में मन्त्र का बार-बार उच्चारण करने से हरि दर्शन सुलभ हो जाता है।

जाप तीन प्रकार से किया जा सकता है अथवा जाप करने की तीन विधियाँ हैं—

1. **वाचिक जाप**—जब जाप इतनी उच्च ध्वनि से किया जाता है जो पास बैठे हुए सभी लोगों को स्पष्ट सुनाई देता है तो उसे वाचिक जाप कहा जाता है।
2. **मानसिक जाप**—मानसिक जाप में साधक ध्वनि से जाप नहीं करता। वह मन-ही-मन में मन्त्रों का उच्चारण करता है। उसके मन्त्रों के जाप की ध्वनि दूसरे लोगों को सुनाई नहीं देती। मन्त्र उच्चारण की ध्वनि नहीं होती।

   आचार्य मनु इस प्रर्कार के जाप को श्रेष्ठ बताते हैं। मौन जाप से मन्त्र की शक्ति बहुत बढ़ जाती है।
3. **उपाशु जाप**—मन्त्रयोग में उपाशु जाप की बहुत महिमा है। यह मन्त्र जाप की चरम स्थिति होती है। इस अवस्था में उपासक अपने इष्ट देव में इतना तल्लीन हो जाता है कि उसके अन्तर्मन में उस मन्त्र की ध्वनि के अतिरिक्त और कुछ भी सुनाई नहीं देता। केवल उपासक को ही मन्त्र की ध्वनि सुनाई देती है, किसी और को जाप की ध्वनि सुनाई नहीं देती।

सिद्धि प्राप्त करने के अनेक साधन हैं। साधक विभिन्न साधन अपनाकर परमपिता परमेश्वर का ध्यान करके उसी में लीन होने का प्रयास करता है, जिससे इस आवागमन के चक्र से सदैव के लिए छुटकारा मिल जाए।

मन्त्रयोग द्वारा भी बाह्य भौतिक जगत् के आकर्षण से बचकर परमतत्व को प्राप्त करने के लिए किसी

अपने प्रिय इष्ट देव का सहारा लेकर चित्तवृत्ति का निरोध किया जा सकता है। मन्त्रयोग द्वारा भी साधक अपने अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हो सकता है।

8. भक्ति योग (Bhakti Yoga)

आधुनिक भौतिकवादी युग में व्यक्ति अपना सारा समय बाह्य इन्द्रियों की सन्तुष्टि में लगाता है। जबकि वास्तव में जितना इन्द्रियों को सन्तुष्ट किया जाता है, उतना ही असन्तोष बढ़ता है। ययाति के उदाहरण से स्पष्ट होता है कि अपने बेटे की आयु लेने पर भी उसे बाह्य सुख से सन्तोष नहीं मिलता। अन्ततः उसे भक्ति मार्ग का अनुसरण करना पड़ता है।

योग प्राप्त करने तथा ईश्वर प्राप्ति के अनेक साधन हैं। साधक कोई भी साधन अपना सकता है। हिन्दू धर्म में ईश्वर प्राप्ति के तीन मार्ग बताए गए हैं–

1. ज्ञान
2. कर्म
3. भक्ति।

इस कलिकाल में भक्ति ईश्वर-प्राप्ति का सबसे सरल व सुगम मार्ग है। साधारण शब्दों में कहा जा सकता है कि परमात्मा के महात्म्य को जानकर उसके प्रति प्रेम भाव रखना तथा अपना सब कुछ-तन-मन-धन ईश्वर को समर्पित कर देना ही भक्ति है। इस भक्ति से ही ईश्वर-प्राप्ति हो सकती है।

ज्ञान की कोई सीमा नहीं है। धार्मिक क्षेत्र में भी जितना ज्ञान अर्जित किया जाए, फिर भी वह कम रहता है। ज्ञान के विषय में कहा जाता है कि जिस तरह आकाश की ऊँचाई नापना तथा सागर की गहराई नापना सरल नहीं है, इसी तरह पूर्ण ज्ञान भी प्राप्त करना सरल नहीं है।

इसीलिए कहा जाता है कि ज्ञान प्राप्ति का मार्ग अति कठिन तथा दुर्गम है। यह सामान्यजन की पहुँच से परे है। ज्ञानी पुरुष परमतत्त्व के ज्ञान को प्राप्त करना अति आवश्यक मानते हैं जिसके बिना परमात्मा की प्राप्ति सम्भव नहीं है।

कुछ साधक कर्मकाण्ड को ईश्वर-प्राप्ति का साधन मानते हैं। वेदज्ञाता पण्डितजन परमपिता परमेश्वर की प्राप्ति के लिए कर्मकाण्डों को अधिक महत्त्व देते हैं। उनके मतानुसार प्रत्येक कार्य के लिए कर्मकाण्ड की व्यवस्था की गई है। इन कर्मकाण्डों के बिना कोई भी कार्य पूरा नहीं हो सकता। उनके अनुसार लौकिक व वैदिक कर्म करने पर ही आत्मा का परमात्मा से मिलन हो सकता है। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय अथवा साधन नहीं है।

कर्मकाण्ड के लिए जरूरी है कि कर्मकाण्डी को कर्मकाण्डों की पूरी जानकारी हो तथा पूरे नियमों का पालन करते हुए कर्मकाण्ड किए जाएँ। ऐसी सम्भावना है कि कर्मकाण्ड करता हुआ व्यक्ति भ्रमवश पथ भ्रष्ट हो जाए। विधिपूर्वक कर्मकाण्ड करना साधारण व्यक्ति के वश की बात नहीं है।

ज्ञानमार्ग तथा कर्मकाण्ड मार्ग दोनों में दक्षता की जरूरत है। ज्ञान के बिना कर्मकाण्ड भी पूरा फलदायक नहीं हो सकता।

ज्ञानमार्ग तथा कर्मकाण्ड मार्ग के पश्चात् ईश्वर-प्राप्ति का सबसे सरल तथा सुगम मार्ग भक्ति मार्ग है। कलियुग में भक्ति का मार्ग ही एक ऐसा मार्ग है, जिस पर चलता हुआ सामान्य व्यक्ति भी ईश्वर को प्राप्त कर सकता है।

भक्ति मार्ग सामान्य व्यक्ति के लिए उपयोगी है। साधारण व्यक्ति के निराकार ईश्वर की ओर ध्यान लगाना सम्भव नहीं है। इसलिए ईश्वर के साकार रूप की उपासना को अधिक महत्त्व दिया जाता है। अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इष्टदेव की मूर्ति के सामने बैठकर पाठ-पूजा करते हुए भी ध्यान एकाग्र नहीं हो पाता। ईश्वर के निराकार रूप का ध्यान करना तो बहुत कठिन है।

सामान्य व्यक्ति किसी वस्तु के अस्तित्व को तभी स्वीकार करता है जब वह स्वयं उस वस्तु को अपनी

आँखों से देख लेता है। ऐसी स्थिति में साधारण व्यक्ति के लिए उस अव्यक्त, निराकार रूप की कल्पना करना भी कठिन है।

उदाहरण के लिए प्राइमरी कक्षा के छोटे बच्चों को अक्षरों का परिचय करवाने के लिए वैसे आकार के चित्र अथवा लकड़ी, प्लास्टिक आदि के विभिन्न आकर के टुकड़ों से बच्चों को अक्षर ज्ञान करवाया जाता है। सम्भवतः एक छोटा बच्चा अकेले 'अ' को न समझे परन्तु यदि 'अ' से 'अनार' उसे शीघ्र समझ आ जाता है। वह 'अ' अकेले का नहीं वरन् अ से अनार का उच्चारण जल्दी करने लग जाता है। यही तथ्य ईश्वर के सम्बन्ध में लागू होता है। सामान्यजन ईश्वर के निराकार स्वरूप से नहीं वरन् साकार रूप से वह शीघ्र प्रभावित होता है। जिस भी इष्ट की हम मान्यता करते हैं उसकी मूर्ति के समक्ष हम नतमस्तक होकर उसके प्रति प्रेमभाव प्रकट करते हैं। मूर्ति के समक्ष बैठकर जब व्यक्ति भक्तिभाव से अर्चना करता है, उसे भोग लगाता है तो उस साधक के मन में ऐसे ही भाव आते हैं जैसे साक्षात् सजीव ईश्वर उसकी आँखों के सामने हैं।

इस भक्ति को सगुण उपासना कहा जाता है।

सगुण उपासना के पाँच प्रकार होते हैं। इस सगुण उपासना के साधक अथवा भक्त भी पाँच प्रकार के होते हैं–

1. पहले प्रकार के वे भक्त हैं तथा शायद ऐसे भक्तों की संख्या आधुनिक युग में बहुत है जो दुःख के समय ईश्वर को याद करते हैं, मन्नत मांगते हैं। परीक्षा के दिनों में विद्यार्थी वर्ग अपने-अपने इष्ट देव को 5, 10 रुपये का प्रसाद चढ़ाने का वायदा करते हैं परन्तु दुःख समाप्त होने पर भगवान् को भूल जाते हैं।

   ऐसे भक्तों के सम्बन्ध में ही कहा गया है–

   दुःख में सुमरिन सब करें, सुख में करे न कोय।
   जो सुख में सुमरिन करे, दुःख काहे को होय।।

   अधिकांश भक्त भगवान् को दुःख में ही याद करते हैं।
2. दूसरी प्रकार के भक्त वे होते हैं जो किसी पूजा स्थल, मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे अथवा चर्च तथा सत्संग आदि के पास पहुँचने पर जब भजन ध्वनि उनके कानों तक पहुंचती है तो ईश्वर में आस्था रखने के कारण कुछ क्षण के लिए ईश्वर भक्ति में लीन हो जाते हैं। सत्संग समाप्त होते ही फिर अपने दैनिक कार्यों में लग जाते हैं। ईश्वर को भूल जाते हैं।
3. तीसरी श्रेणी के वे भक्त होते हैं जो प्रतिपल ईश्वर को याद रखते हैं। वे सामान्य जीवन व्यतीत करते हुए एवम् दैनिक कार्यों में लिप्त रहते हुए भी ईश्वर का ध्यान करते रहते हैं। ऐसे भक्त अपने वर्तमान से सन्तुष्ट होते हैं। जो कुछ मिल जाता है उसे ईश्वर की कृपा मानते हुए स्वीकार करते हैं तथा ईश्वर का धन्यवाद करते हैं।
4. चौथी श्रेणी में ऐसे भक्त आते हैं, जिन पर जब ईश्वर की कृपा होती है तभी घर-द्वार, मोह, माया, ममता, परिवार, सम्बन्धी आदि सब कुछ छोड़कर संत-साधु बन जाते हैं। ऐसे सन्त-महात्मा भगवान् भक्ति में लीन हो जाते हैं।
5. पाँचवी श्रेणी जो कि भक्तों की अन्तिम श्रेणी है। यह भक्ति की पराकष्ठा है। ऐसे भक्त अपना अस्तित्व मिटाकर अपने आपको ईश्वर में एकाकार कर देते हैं। ऐसे भक्तों की तुलना उस नदी से की जा सकती है, जो समुद्र से मिलने के लिए लम्बी यात्रा तय करती है तथा समुद्र में गिरकर समुद्रमय हो जाती है एवम् अपना अस्तित्व समाप्त कर देती है।

ऊपरवर्णित तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि ईश्वर-प्राप्ति का सबसे सुगम तथा सरल मार्ग भक्ति मार्ग है। भक्तियोग द्वारा प्रतिपादित योग मार्ग से उस परमपिता परमेश्वर के अनेक रूपों ताथा स्वरूपों का ध्यान, मनन, चिन्तन करते हुए ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है।

भक्तियोग द्वारा धर्म का पालन करते हुए भक्त परमात्मा की कृपा-दृष्टि प्राप्त कर अपने आपको उस परमपिता परमात्मा में लीन कर देता है।

9. सांख्य योग (Sankhya Yoga)

सांख्य योग के प्रणेता कपिल हैं। कपिल मुनि कर्दम ऋषि तथा माता देवहूति की सन्तान थे। कपिल ईश्वर के ही अवतार थे। कर्दम ऋषि ने यह देखा कि उनके यहाँ देवाधिदेव श्री हरि ने ही अवतार लिया है। कर्दम ऋषि श्री हरि के मुखारविन्द से आत्मज्ञान का सूक्ष्म मार्ग जान कर वन को प्रस्थान कर गए थे।

कर्दम ऋषि के वनगमन के पश्चात् श्री हरि के रूप में कपिल मुनि अपनी माता देवहूति की जिज्ञासा शान्त करने के लिए सांख्ययोग का महत्त्व बताते हैं।

कपिल मुनि अपनी माता देवहूति को कहते हैं कि माता जी अब मैं तुम्हें प्रकृति आदि सब तत्त्वों के अलग-अलग लक्षण बताता हूं, इन्हें जानकर मनुष्य प्रकृति के गुणों से मुक्त हो जाता है।

आत्म दर्शन रूप ज्ञान ही पुरुष के मोक्ष का कारण है और वही उसकी अहंकार रूप हृदय ग्रन्थि का छेदन करने वाला है। कपिल मुनि के शब्दों में यह संसार 25 तत्त्वों से मिलकर बना है जो कि प्रकृति तथा पुरुष दो वर्गों में विभाजित किए गए हैं।

पुरुष—कपिल अपनी माता देवहूति को बताते हैं कि यह आत्मा ही पुरुष है। यह अनादि निर्गुण, प्रकृति से परे, अन्तःकरण में स्फुरित होने वाला और स्वयं प्रकाश है। उस सर्वव्यापक पुरुष ने अपने पास लीला-विलासपूर्वक आई हुई अव्यक्त और त्रिगुणात्मिका प्रकृति (वैष्णवी माया) को स्वेच्छा से स्वीकार कर लिया।

लीला परायण प्रकृति अपने सत्त्वादि गुणों द्वारा उन्हीं के अनुरूप प्रजा की सृष्टि करने लगी। यह देख पुरुष ज्ञान को अच्छादित करने वाली उसकी आवरण शक्ति के कारण मोहित हो गया, अपने स्वरूप को भूल गया।

इस प्रकार अपने से भिन्न प्रकृति को ही अपना स्वरूप समझ लेने से पुरुष प्रकृति के गुणों द्वारा किये जाने वाले कर्मों में अपने आपको ही कर्त्ता मानने लगता है। इसी कर्तृत्वाभिमान से ही अकर्त्ता, स्वाधीन, साक्षी तथा आनन्दस्वरूप पुरुष को जन्म-मृत्यु रूप बन्धन एवं परतन्त्रता की प्राप्ति होती है।

कपिल के विचार का अभिप्राय है कि आत्मा तथा पुरुष एक ही है, जिसका कोई आदि तथा अन्त नहीं है। जो चैतन्य रूप है, सूक्ष्म है, सर्वव्यापी है, निर्गुण तथा अपरिवर्तनशील है। जो प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त करता है तथा जन्ममरण के चक्र से छुटकारा प्राप्त कर लेता है।

प्रकृति—कपिल मुनि कहते हैं कि जो त्रिगुणात्मक, अव्यक्त, नित्य तथा कार्य-कारण रूप है तथा स्वयं निर्विशेष होकर भी सम्पूर्ण विशेष धर्मों का आश्रय है, उस प्रधान नामक तत्त्व को ही प्रकृति कहते हैं।

पाँच महाभूत, पाँच तन्मात्राएँ, चार अन्तःकरण तथा दस इन्द्रिय—इन चौबीस तत्त्वों के समूह को प्रकृति का कार्य माना जाता है।

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश—ये पाँच महाभूत हैं।

गन्ध, रस, रूप, स्पर्श तथा शब्द—ये पाँच तन्मात्राएँ।

श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना, नासिका, पाणि, पाद, उपस्थ, पायु, वाक्—ये दस इन्द्रियाँ हैं।

मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार—इन चार के रूप में एक ही अन्तःकरण अपनी संकल्प, निश्चय, चिन्ता तथा अभिमान रूपा चार प्रकार की वृत्तियों से लक्षित होता है। इस प्रकार तत्त्वज्ञानी पुरुषों ने सगुण ब्रह्म के सन्निवेश स्थान इन चौबीस तत्त्वों की संख्या बतलाई है। इन चौबीस तत्त्वों के अतिरिक्त जो काल है, वह पचीसवाँ तत्त्व है। कुछ लोग 'काल' को 'पुरुष' से भिन्न तत्त्व न मानकर पुरुष का प्रभाव अर्थात् ईश्वर की संहारकारिणी शक्ति बताते हैं। जिससे माया के कार्यरूप देहादि में आत्म तत्त्व का अभिमान करके अहंकार से मोहित तथा अपने को कर्त्ता मानने वाले जीव को निरन्तर भय लगा रहता है।

कपिल मुनि जी कहते हैं कि जिनकी प्रेरणा से गुणों की साम्यावस्था निर्विशेष प्रकृति में गति उत्पन्न होती है, वास्तव में वे पुरुष रूप भगवान् ही काल कहे जाते हैं।

इसी प्रकार जो अपनी माया के द्वारा सब प्राणियों के भीतर जीव रूप से तथा बाहर काल रूप से व्याप्त है, वे भगवान् ही पचीसवें तत्त्व हैं।

जो सत्त्व गुणमय, स्वच्छ, शान्त तथा भगवान् की उपलब्धि का स्थान रूप चित्त है, वह महत्त्व है।

सांख्य योग में प्रकृति तथा पुरुष दो तत्त्वों का ही विश्लेषण किया गया है, सृष्टि का मूल आधार इन्हें ही माना गया है।

पुरुष स्वयं कुछ नहीं करता वरन् प्रकृति के संयोग से ही भौतिक क्रियाएँ सम्पन्न करता है।

जब पुरुष अर्थात् आत्मा को इस बात का अनुभव हो जाता है कि किसी भी कार्य का कर्त्ता वह स्वयं नहीं, वरन् प्रकृति है, तब इस बात का ज्ञान होते ही वह मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

सांख्य योग के अन्तर्गत यह स्पष्ट होता है कि पुरुष का एकमात्र उद्देश्य ज्ञान की प्राप्ति है। यह ज्ञान गुरुजनों, सन्तों की संगत, स्वाध्याय, धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन तथा सबसे बढ़कर पूर्वजन्मों के संस्कारों आदि से हो सकता है। इस जन्म में व्यक्ति पूर्वजन्मों का फल अवश्य भोगता है।

कपिल मुनि जी का कहना है कि जब पुरुष में यह विवेक आ जाता है कि 'मैं प्रकृति से भिन्न हूं। इस भौतिक जगत से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं', तभी वह जीवन के परम लक्ष्य अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

सम्भावित प्रश्न

1. ध्यान की अवधारणा तथा इसके प्रकारों की विवेचना कीजिए। 9
   (Discuss the concept and kinds of Dhyana.)
2. अष्टांग योग में प्रतिपादित सामाजिक-नैतिक आधार कौन से है? दैनिक जीवन से उदाहरण देते हुए इन आधारों की विस्तार से विवेचना कीजिए।
   (What are the socio-moral basis of Ashtanga Yoga? Discuss these basis citing examples from daily life.)
3. त्रिगुण से क्या अभिप्राय है? त्रिगुण के मुख्य लक्ष्यों का वर्णन करें। योग युक्त जीवन में इसकी क्या सार्थकता है?
   (What is the meaning of 'Triguna'? Give its characteristic features. Discuss its implications for a yogic way of life.)
4. चित्त निरोध के लिए 'प्रत्याहार', 'धारणा' एवं ध्यान का उल्लेख करें। 9
   (Discuss the role of 'Pratyahara', 'Dharna' and 'Dhyana' for Chitta control.)
5. 'हठ योग' एवं 'भक्ति योग' में क्या अन्तर है? नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिए भक्ति योग की श्रेष्ठता का वर्णन करें। 7
   (Bring out the difference between 'Hatha Yoga' and 'Bkakti Yoga'. Give merits of 'Bhakti Yoga' for moral and spiritual development.)
6. राजयोग की विभिन्न अवस्थाओं या स्तरों (अंगों) को स्पष्ट करते हुए राजयोग की विवेचना कीजिए।
   (Discuss Raj Yoga briefly explaining different levels of it.)
7. राजयोग और भक्ति योग का अन्तर स्पष्ट कीजिए। योग साधक को किस प्रकार का भोजन लेना चाहिए?
   (Explain the difference between Raj Yoga and Bhakti Yoga. What kind of diet should a practitioner in Yoga take?) 9
8. योग के मुख्य प्रकारों का वर्णन कीजिए तथा इनमें से किसी एक की सविस्तार व्याख्या कीजिए?
   (Mention the main types of Yoga and explain any one of them in detail.)
9. अष्टांग योग की व्याख्या करें।
   (Give an account of Ashtanga (Eight Limbs) Yoga.)
10. निम्न की धारणाएँ लिखें– 9
    (क) अष्टांग योग (ख) हठयोग (ग) भक्तियोग (घ) मन्त्रयोग
11. योग की विभिन्न किस्में कौन-सी हैं? भक्तियोग और मन्त्रयोग की विवेचना कीजिए। 9
    (What are various types of Yoga ? Discuss Bhagti Yoga and Mantra Yoga.)

◆◆◆

9

समाधि और उसके प्रकार
[Samadhi and Its's Types]

महर्षि पतंजलि द्वारा वर्णित अष्टांग योग में सबसे अन्तिम तथा सबसे महत्त्वपूर्ण स्थिति समाधि की है।

ध्यान ही जब केवल अर्थ ध्येय (ईश्वर) के स्वरूप अथवा स्वभाव को प्रकाशित करने वाला अपने स्वरूप से शून्य जैसा होता है तब उसे समाधि कहते हैं।

आनन्दमय, ज्योतिर्मय व शान्तिमय परमेश्वर का ध्यान करता हुआ साधक अथवा योगी ओंकार ब्रह्म परमेश्वर में इतना तल्लीन हो जाता है कि वह अपने को ही भूल जाता है, मात्र भगवान् के दिव्य-स्वरूप का ही अनुभव करने लगता है, यही स्वरूप शून्यता है।

समाधि में परमेश्वर के आनन्दमय, शान्तिमय, ज्योतिर्मय स्वरूप में आत्मा निमग्न हो जाती है समाधि की स्थति की तुलना ऋषिगण अग्नि तथा लोहे से करते हैं। जिस प्रकार अग्नि के बीच लोहा डालने पर वह भी अग्नि स्वरूप हो जाता है, इसी प्रकार परमेश्वर के दिव्यज्ञान के आलोक में आत्मा के प्रकाशमय होने पर अपने शरीर की सुध-बुध भी भूल जाता है।

'समाधिः ब्रह्मणि स्थितिः' अर्थात् ब्रह्म में चित्त को स्थिर करने का नाम ही समाधि है। यह वह स्थिति है जिसमें व्यक्ति अपनी सब चित्तवृत्तियों का निरोध कर अपने मन को वश में करके अपनी समस्त शक्तियों तथा ध्यान को ब्रह्म अथवा परमपिता परमेश्वर में केन्द्रित कर देता है।

भोज महाराज समाधि का अर्थ इस प्रकार करते हैं—

सम्यागाधीयत एकाग्री क्रियते विक्षेपान् परिहृत्य मनो यत्र स समाधिः।

समाधि से अभिप्राय है मन को विक्षेपों से हटा कर यथार्थता से धारण किया जाता है अर्थात् एकाग्र किया जाता है, यही समाधि है।

योग की सभी विधाओं में समाधि अवस्था बहुत प्रयत्न तथा परिश्रम से अर्जित की जाती है।

महर्षि पतंजलि के अष्टांग योग में भी यह अन्तिम सीढ़ी अथवा सोपान है। ध्यान तथा धारणा के पश्चात् ही साधक समाधि अवस्था में पहुँचता है। समाधि को इसीलिए ध्यान की चरम सीमा कहा जाता है।

ध्यानावस्था में साधक अर्थात् ध्यान करने वाला जिस मन से, जिस चीज का ध्यान करता है, वे तीनों—'ध्यान', 'ध्येय वस्तु' तथा 'ध्येय' विद्यमान रहते हैं। परन्तु समाधि में केवल ध्येय का ही अस्तित्व रहता है अर्थात् ध्यान, ध्याता तथा ध्येय तीनों मिलकर एक रूप हो जाते हैं तथा योगी ध्येय को छोड़कर न कुछ समझता है तथा न ही उसे किसी अन्य बात का ध्यान रहता है।

समाधि दो शब्दों से मिलकर बनती है—सम तथा धि। सम का अर्थ समत्व तथा धि का अर्थ है बुद्धि। इस प्रकार कहा जा सकता है कि समाधि अवस्था व्यक्ति की मानसिक स्थिति की सूचक है जिससे उसकी बुद्धि निर्मल, निष्काम तथा पापरहित हो जाती है तथा साधक में समत्व भाव आ जाता है। इस स्थिति में उसके मन से राग, द्वेष, ईर्ष्या समाप्त हो जाती है। शत्रु-मित्र, लाभ-हानि, यश-अपयश, मान-अपमान, प्रतिकूल-अनुकूल सब परिस्थितियाँ एक समान लगती हैं। वह न प्रसन्न होता है तथा न ही दुःखी होता है। वह हिमालय पर्वत के शिखर की तरह अविचल, स्थिर तथा शान्त रहता है।

समाधि अवस्था में मन तो शान्त तथा नियन्त्रित होकर समत्व भाव वाला ही हो जाता है, इसके साथ-साथ शरीर की क्रियाएँ भी शान्त हो जाती हैं।

साधक समाधि में भूख तथा प्यास की इच्छा से भी विमुक्त हो जाता है अर्थात् उसे भूख-प्यास सताती नहीं है। साधक की जैसा पहले कहा गया है शरीर की क्रियाएं भी शान्त हो जाती हैं। इसलिए उसकी नस नाड़ी नहीं चलती, न ही फेफड़ों तथा हृदय की कोई गति होती है। समाधि अवस्था में प्राण भी स्थिर होकर शरीर छोड़कर कहीं और लीन हो जाते हैं।

कई दफा ऐसा लगता है कि साधक की मृत्यु हो गई है। उनमें कोई चेतना तथा प्राण शेष नहीं बचा है। वास्तव में ऐसा नहीं होता। साधक अथवा योगी पूरी तरह चैतन्य होकर अपने लक्ष्य की प्राप्ति में तल्लीन रहता है।

समाधि की इस अवस्था को निर्बीज समाधि कहा जाता है। इस स्थिति में संसार के विषय भोग वासनाओं के चित्त में संस्कार नहीं रहते। संस्कारों का बीज सहित नाश होने पर सब वृत्तियों का पूर्ण निरोध हो जाता है। फिर भव-बन्धन में गिरने की सम्भावना भी नष्ट हो जाती है। यह अवस्था जीवन अथवा योग की पूर्णता है जिसकी प्राप्ति होने पर मोक्ष अवश्यंभावी है जिसे पा कर योगी इस प्रकार अनुभव करता है कि प्राप्त करने योग्य सब कुछ पा लिया, क्षीण करने योग्य अविद्यादि क्लेश (अविद्या, अस्मिता-रागद्वेप-अभिनिवेश) सब नष्ट हो गए हैं एवम् संसार के आवागमन से छुटकारा मिल गया है।

❖ समाधि के प्रकार (Types of Samadhi)

1. संप्रज्ञात समाधि,
2. असंप्रज्ञात समाधि।

जब साधक को समाधि के लिए किसी अवलम्बन अर्थात् सहारे की आवश्यकता पड़ती है तब वह अपने इष्ट देव पर ध्यान केन्द्रित करके उसमें लीन हो जाता है। ऐसी समाधि को साकार समाधि भी कहा जा सकता है। इसे सबीज समाधि भी कहा जाता है क्योंकि इसमें बीज का अन्तिम परिणाम फल प्राप्त करने की इच्छा बनी रहती है। साधक कर्म तो करता है परन्तु उसे फल प्राप्त करने की इच्छा भी बनी रहती है। इस फल की इच्छा अथवा तृष्णा के कारण वह आवागमन के चक्र से मुक्त नहीं हो पाता। फल-प्राप्ति की लालसा उसे पुनः जन्म लेने को विवश करती है। यद्यपि साधक को इस समाधि के माध्यम से उत्तम फ़ल की प्राप्ति होती है।

संप्रज्ञात समाधि को आगे चार भागों में विभक्त किया जा सकता है–

(i) सवितर्क समाधि (Argumentative Samadhi)
(ii) निर्वितर्क समाधि (Non-Agrumentative Samadhi)
(iii) स-विचार समाधि (Reflective Samadhi)
(iv) निर्विचार समाधि (Super-reflective Samadhi)

(i) जब साधक अपनी सभी मानसिक शक्तियों का प्रयोग बहुत सोच समझकर करता है कि उसका ध्येय क्या है? तो ऐसी समाधि को सवितर्क समाधि कहा जाता है। इसे तर्क संगत समाधि भी कहा जा सकता है। क्योंकि इस समाधि में वस्तु-विशेष को आधार माना जाता है। इस समाधि में स्थूल पदार्थों के स्थूल रूपों को स्थूल रूप में ही देखा जाता है।

(ii) इस तरह की समाधि में साधक किसी वस्तु के रंगरूप, आकार आदि में इतना विश्वास कर लेता है कि इस सम्बन्ध में वह किसी प्रकार का तर्क-वितर्क नहीं करता। यह साकार इष्ट देव को आधार मानकर समाधि अवस्था में बैठता है।

(iii) सविचार समाधि जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है इस समाधि में साधक पूर्ण विचार से क्रियाएँ करता है। विवेक अथवा बुद्धि की इस तरह की समाधि में प्रधानता रहती है। यहाँ स्थूल पदार्थों को बनाने वाले सूक्ष्म तत्त्वों तथा स्वतन्त्र तत्त्वों के विषय में ज्ञान करने के लिए साधक द्वारा

विवेक तत्त्व को ब्रह्मरंध्र में समाहित किया जाता है। इस तरह की समाधि में साधक किसी पदार्थ के रंग-रूप, आकार-प्रकार तथा उसके उद्देश्य के सम्बन्ध में पूर्ण विचार करने के पश्चात् ही उसमें लीन होने का प्रयास करता है।

(iv) इस समाधि में किसी तरह का विचार नहीं किया जाता, न कोई तर्क होता है और न कोई वितर्क।

इस अवस्था में साधक अधिक सोच-विचार नहीं करता है। उसका चित्त बहुत शान्त तथा निर्मल होता है। साधक किसी प्रकार का सन्देह अथवा संशय मन में नहीं करता।

❖ असंप्रज्ञात समाधि

इस तरह की समाधि में साधक अथवा योगी किसी को अवलम्बन (इष्ट देव की मूर्ति आदि जिसमें साधक की आस्था तथा विश्वास होता है) विशेष की आवश्यकता नहीं रहती। इस समाधि को निर्बीज समाधि भी कहा जाता है। यह बीज रहित अर्थात् साधक के सभी कर्मफलों को नष्ट करने वाली होती है। यह समाधि की सबसे उन्नत श्रेणी मानी जाती है। इस स्थिति में संसार के विषय भोग-वासनाओं के चित्त में संस्कार ही नहीं रहते। संस्कारों के बीज सहित नाश होने पर सब वृत्तियों का पूर्ण निरोध हो जाता है। भव-बन्धन में गिरने की सम्भावना नष्ट हो जाती है। यह योग की अथवा जीवन की पूर्णता है।

समाधि द्वारा ज्ञान के इस उच्चतम क्षितिज की प्राप्ति होने पर मोक्ष अवश्यंभावी है। जिसे पा कर योगी इस प्रकार अनुभव करता है कि प्राप्त करने योग्य सब कुछ प्राप्त कर लिया है, अब कुछ भी प्राप्त करने की इच्छा नहीं है।

निर्बीज *अथवा* असंप्रज्ञात समाधि के दो रूप हैं–

1. आनन्दानुगत समाधि
2. अस्मितानुगत समाधि

आनन्दानुगत समाधि जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इस समाधि की अवस्था में साधक परमपिता परमात्मा के रूप, रंग तथा अस्तित्व में लीन होकर परम आनन्द की अनुभूति करता है।

अस्मितानुगत समाधि में साधक 'अहं ब्रह्मास्मि'–'मैं स्वयं ब्रह्म हूँ', इस प्रकार की भावना से प्रेरित होता है। इस अवस्था में आत्मा तथा परमात्मा का अन्तर ही समाप्त हो जाता है। वे दो न होकर एक ही हो जाते हैं। साधक को कुछ भी प्राप्त करने की इच्छा नहीं रहती। साधक सांसारिक वस्तुओं की इच्छा क्या करेगा उसे तो अपने तन-मन की सुध भी नहीं रहती। वह तो अपने अस्तित्व को भी समाप्त कर देता है। अपने अस्तित्व को भूलकर पूर्णतन्मयता की स्थिति में पहुँच जाता है। ऐसी समाधि श्रद्धा, स्मृति तथा प्रज्ञा के उपायों द्वारा प्राप्त होती है।

❖ भूमिगत समाधि (Under Ground Samadhi)

भारतीय साधुओं तथा योगियों द्वारा एक ओर तरह की समाधि लगाई जाती है। इस तरह की समाधि प्राचीन काल से वर्तमान काल तक चली आ रही है। इस तरह की समाधि एक दिन से लेकर कई महीनों तक की हो सकती है। यह साधक की शारीरिक तथा मानसिक शक्ति पर निर्भर करती है। इस प्रकार की समाधि को भूमिगत समाधि कहा जाता है।

इस तरह की समाधि में एक चौकोर गड्ढ़ा भूमि में बनाया जाता है। इसे ऐसे ही रहने दिया जाता है अथवा ईंट-सीमेन्ट से भी इस गड्ढ़े की चिनाई तथा लिपाई कर दी जाती है। जब गड्ढ़ा तैयार हो जाता है तो साधक को लकड़ी के सन्दूक में बंद करके एक निश्चित अवधि के लिए गड्ढ़े में उतार दिया जाता है। गड्ढ़े में कोई ऐसा साधन नहीं छोड़ा जाता जिससे लेश-मात्र वायु भी गड्ढ़े में आ जा सके।

निश्चित अवधि के पश्चात् गड्ढ़े की मिट्टी हटाकर सन्दूक को बाहर निकाला जाता है तथा देखा जाता है कि साधक जीवित सन्दूक से बाहर निकल आया है। इस अवसर पर श्रद्धालुगण बड़ी संख्या में उपस्थित होते हैं। यह अवसर एक मेले जैसा होता है। बाबा अथवा योगी की जय घोष की जाती है। भण्डारे आदि का आयोजन भी किया जाता है।

साधक अथवा साधु फिर दैनिक कार्यों में जुट जाता है।

इस प्रकार की समाधि में कभी-कभी दुर्घटना होने की सम्भावना रहती है। अन्यथा इस प्रकार की समाधि की अवस्था में प्राण तथा शरीर की अन्य सभी क्रियाएँ जहाँ की तहाँ बिल्कुल रुक जाती हैं तथा साधक पूर्णतन्मयता की स्थिति को प्राप्त हो जाता है।

❖ मोक्ष (Moksha)

भारतीय दर्शन के महान् धार्मिक ग्रन्थों तथा वेदों में मानव जीवन के चार मुख्य उद्देश्यों का वर्णन किया गया है। ये चार मुख्य उद्देश्य हैं—अर्थ, काम, धर्म तथा मोक्ष।

वर्तमान युग भौतिकवाद का है। ऐसे स्थिति में व्यक्ति का अधिक समय धन उपार्जन में लगता है। भौतिकवादी युग में सबसे अधिक महत्त्व धन का होता है। इस युग में कहा जाता है कि—

बाप बड़ा न भैय्या, सबसे बड़ा रुपया।

रोटी, कपड़ा, मकान ये व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताएँ हैं, जिनकी पूर्ति के लिए व्यक्ति दिन-रात काम में जुटा रहता है। वह इन मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तन-मन बेचने को भी विवश होता है। पेट भरने की जुगाड़ में वह किसी भी तरह के अच्छे बुरे कार्य करने को तत्पर रहता है। पेट भरने के पश्चात् तन ढकना, इसके लिए कपड़े की चिन्ता तथा फिर मकान की चिन्ता। साधारण व्यक्ति का इन मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने में ही सारा जीवन व्यतीत हो जाता है।

इस चराचर जगत् में ईश्वर ने मानव सहित कुछ गुण सभी जीव-जन्तुओं में समान रूप से प्रदान किए हैं। भय, भूख, निद्रा तथा सन्तान उत्पत्ति।

अर्थ-पूर्ति के साथ-साथ मानव में काम भावना पैदा होती है। वंश चलाने की इच्छा सांसारिक बन्धनों से बंधा व्यक्ति भोग-विलास, विषय-वासनाओं में लिप्त रहता है जब काम-वासना जागृत होती है तो साधारण मनुष्य की तो बात बात ही क्या, बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों तथा साधु-सन्तों का मन भी विचलित हो जाता है तथा वे पथ से गिर जाते हैं। नारद तथा विश्वामित्र जैसे महान् योगी भी इससे बच नहीं पाए। काम-वासना का कोई अन्त नहीं। इससे जीव को कभी सन्तुष्टि नहीं होती। ययाति जैसे महान् शासक अपने पुत्र की आयु भी भोग-विलास की पूर्ति के लिए माँग लेते हैं। वैराग्य की भावना जागृत होने पर ही काम-वासना से अरुचि होती है।

भारतीय दर्शन कर्म सिद्धान्त में विश्वास करता है। मनुष्य जन्म के समय कुछ भी लेकर नहीं आता तथा मरने पर कुछ भी साथ लेकर नहीं जाता। यह विचार गलत है। वह अपने कर्म साथ लेकर आता है। जीवन पर्यन्त धर्म के आधार पर चलता हुआ जो कर्म करता है, वह साथ लेकर जाता है।

हमारे वेद-शास्त्रों में पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मान्यता दी गई है। मानव जीवन अनेकों वर्षों के पुण्यों के फलस्वरूप प्राप्त होता है।

विश्व के सभी लोगों के द्वारा धर्म को किसी न किसी रूप में अवश्य स्वीकार किया गया है। धर्म के नाम पर बड़े-बड़े युद्ध हुए हैं। बहुत से शासक धर्मांध हुए हैं, जिन्होंने अपने धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए अन्य धर्मों को समाप्त करने का भरसक प्रयास किया। अन्य धर्म के अनुयायियों पर मनमाने अत्याचार किए। मानव जीवन में धर्म का बहुत बड़ा योगदान रहा है तथा आज भी धर्म का प्रभाव तथा महत्त्व समाप्त नहीं हुआ है।

अर्थ, कर्म, धर्म, मोक्ष इन चारों का अपना-अपना महत्त्व है। अर्थ, कर्म, धर्म की संक्षेप में व्याख्या करने के पश्चात् मोक्ष सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व है।

मानव जीवन का अन्तिम तथा परम लक्ष्य अथवा उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना है। प्रत्येक मानव, योगी, सन्त, महात्मा, ऋषि-मुनि जो भी क्रियाएं करते हैं, योग साधना करते हैं, ध्यान तप करते हैं उन सबके पीछे एक ही भावना रहती है और वह है आवागमन के कर्म बन्धनों से मुक्ति।

वास्तव में हम जो कुछ भी हैं, हमारा सबका अस्तित्व हमारी आत्मा के रूप में ही है। हम स्थूल शरीर से सूक्ष्म शरीर की ओर जाते हैं। गरुड पुराण की कथा के अनुसार स्थूल शरीर यहीं समाप्त हो जाता है। मोक्ष

प्राप्त करने की यात्रा सूक्ष्म शरीर करता है। इस यात्रा के दौरान जो भी सुख, दुःख मिलते हैं, वे सब सूक्ष्म शरीर को मिलते हैं।

हमारी आत्मा चैतन्य है, प्राण शक्ति है, हमारा जीवन है। शरीर नाशवान् है, आत्मा अजर-अमर है। जैसे व्यक्ति कपड़े पुराने हो जाने अथवा फट जाने पर उन्हें छोड़कर नवीन वस्त्र धारण कर लेता है उसी तरह आत्मा भी शरीर बदलती रहती है। आत्मा अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए शरीर रूप साधन का प्रयोग करती है। शरीर तो केवल साधन मात्र है। बिना साधन अपनाए किसी भी उद्देश्य, लक्ष्य अथवा साध्य की पूर्ति नहीं हो सकती।

शरीर को माध्यम अथवा साधन बनाकर आत्मा अन्ततः अपने परम लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हो जाती है।

आत्मा का अन्तिम लक्ष्य अथवा उद्देश्य है अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानना।

आत्मा परमात्मा का ही एक अंश मात्र है। आत्मा अन्तिम रूप में अपने अस्तित्व को अपने परम रूप परमात्मा में ही लीन करने में प्रयत्नशील रहती है।

जब आत्मा तथा परमात्मा का मिलन हो जाता है तो इसे ही आत्मा की मुक्ति अथवा मोक्ष प्राप्ति की संज्ञा देते हैं।

जब मोक्ष प्राप्त हो जाता है तो मानव के सारे दुःख, क्लेश, मोह, माया, ममता, लोभ, अहंकार अर्थात् सभी सांसारिक पदार्थों के प्रति रुचि समाप्त हो जाती है। वह इस आवागमन के चक्कर से मुक्त हो जाता है। गर्भ-गृह के अन्धेरे कुएं में उल्टा लटकने के संकट से सदैव के लिए मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

यद्यपि प्रत्येक मानव का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करना है परन्तु मोक्ष भी एक प्रकार का नहीं वरन् मोक्ष के भी विभिन्न प्रकार हैं—

1. **सालोक्य मोक्ष**—इस तरह के मोक्ष में प्राणि हर समय ईश्वर के समीप रहता है।
2. **सारूप्य मोक्ष**—इस मोक्ष में प्राणि परमात्मा के रूप, स्वरूप को पा लेता है।
3. **सायुज्य मोक्ष**—यह मोक्ष की अन्तिम तथा महत्त्वपूर्ण स्थिति है। जब मानव को इस प्रकार का मोक्ष मिल जाता है तो वह सदैव के लिए आवागमन के चक्कर अर्थात् जन्म-मरण से छूट जाता है। यह मोक्ष प्राप्त करना ही व्यक्ति का अन्तिम उद्देश्य होता है।

मोक्ष की प्राप्ति—व्यक्ति के जीवन का अन्तिम लक्ष्य अथवा उद्देश्य मोक्ष प्राप्त करना है, ऐसी धारणा भारतीय दर्शन, भारतीय धार्मिक ग्रन्थों, साधु-सन्यासियों, ऋषि-मुनियों की रही है तथा आज भी है। काम, अर्थ, धर्म इतना कठिन कार्य नहीं है जितना मोक्ष प्राप्त करना। आत्मा को अपने परम लक्ष्य अर्थात् परमपिता परमेश्वर से मिलने के लिए बहुत अधिक साधना करनी पड़ती है। साधना मार्ग में बहुत अधिक कठिनाइयाँ आती हैं। आत्मा शरीर धारण करके जब अपने सन्मार्ग पर बढ़ती है तो शरीर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही आत्मा को सन्मार्ग छोड़ने को विवश कर देता है। शरीर भोग-विलास, विषय-वासना तथा सांसारिक सुख चाहता है तथा इन सुखों की प्राप्ति के लिए वह उचित-अनुचित सभी साधन अपनाने को तैयार हो जाता है। ऐसी स्थिति में शरीर आत्मा को मार देता है अथवा आत्मा शरीर की दासी बनकर रह जाती है। जब आत्मा की शक्ति क्षीण हो जाती है तो वह अज्ञानता के अन्धकार में फंस जाती है। इस अज्ञानता के अन्धकार से निकलने का एक ही उपाय है और वह है योग-साधना।

योग-साधना में सबसे पहले शरीर की काम-वासना, मोह-माया-ममता तथा अहंकार को मारकर मन पर नियन्त्रण करने का प्रयास किया जाता है। चित्तवृत्तियों पर इस तरह अंकुश लगाने में योग की समस्त विधाएँ तथा पद्धतियाँ अपने-अपने ढंग से उपाय करती हैं। अष्टांग योग के सभी तत्त्व अर्थात् यम, नियम, ध्यान, धारणा, प्रत्याहार, आसन, प्राणायाम तथा अन्त में समाधि व्यक्ति को उचित इन्द्रिय-निग्रह तथा चित्तवृत्तियों के निरोध के कार्य को काफी सीमा तक पूरा करने का प्रयत्न करते हैं।

इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखते हुए साधक अपने पथ पर आगे बढ़ने के लिए कोई भी साधन अर्थात् कर्मयोग, ज्ञानयोग, मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग आदि किसी भी पद्धति को अपना सकता है। साधक को मन की चंचलता पर काबू पाने तथा इन्द्रियों को नियन्त्रित करने में बड़ा परिश्रम करना पड़ता है।

साधक को अपने मन की चंचलता तथा इन्द्रियों पर नियन्त्रण करने के लिए जिससे अज्ञान के अन्धकार में डूबी आत्मा को परमात्मा से मिलाया जा सके, बहुत अधिक संघर्ष करना पड़ता है। उसे कर्मयोग, हठयोग, लययोग, मन्त्रयोग, ज्ञानयोग आदि अनेक पद्धतियों में से किसी एक अथवा एक से अधिक को अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आधार बनाना पड़ता है।

इस तरह एक साधक अथवा योगी अनन्य साधना के सहारे अपने अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल होता है।

अष्टांग योग की अन्तिम अवस्था समाधि अवस्था में पहुँचकर ज्ञानी व्यक्ति ही अपने जीवन के परम उद्देश्य मोक्ष को प्राप्त करता है। जैसे ही साधक अपने अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है तो आत्मा का परमात्मा में विलय हो जाता है तथा वह आत्मा आवागमन के चक्कर से सदैव के लिए मुक्त हो जाती है। साधक को बार-बार जन्म लेकर फिर से परमपिता परमात्मा को प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करना पड़ता। एक बार परमपिता परमेश्वर को प्राप्त करने के पश्चात् अपने गन्तव्य को प्राप्त कर लेता है। जिस प्रकार एक नदी दुर्गम पथों की यात्रा करते हुए अन्त में समुद्र में विलीन हो जाती है, अपना गन्तव्य प्राप्त कर लेती है। समुद्र में मिलने के पश्चात् नदी का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेती है। उसकी यात्रा समाप्त हो जाती है। यही स्थिति आत्मा की परमात्मा में लीन होने की है।

मोक्ष प्राप्त करना मानव जीवन का परम तथा अन्तिम लक्ष्य अथवा उद्देश्य होता है। यह अन्तिम लक्ष्य जैसे ही साधक को प्राप्त हो जाता है उसकी यात्रा भी समाप्त हो जाती है।

अन्ततः योग से मोक्ष की ओर साधक जो यात्रा करता है उसका यह अन्तिम पड़ाव अथवा मंजिल है। मोक्ष प्राप्त होते ही जीवन का लक्ष्य पूरा हो जाता है।

?

सम्भावित प्रश्न

1. स्पष्ट करो– (Define them —) 5, 5
   (क) समाधि व उसके प्रकार (Samadhi and its kinds)
   (ख) ध्यान व उसके प्रकार (Dhyana and its kinds)

2. समाधि को परिभाषित कीजिए और इसके विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए। 10
   (Define Samadhi and discuss its kinds.)

3. समाधि की अवधारणा से आप क्या समझते हैं? समाधि की विभिन्न किस्में कौन-सी हैं? 10
   (What is the concept of Samadhi ? What are the kinds of Samadhi ?)

◆◆◆

10

यौगिक आहार
[Yogic Diet]

सम्पूर्ण सृष्टि में मनुष्य तन का सबसे अधिक महत्त्व है। मानव शरीर को ही इस चराचर जगत् में सबसे अनमोल माना गया है। गोस्वामी तुलसीदास अपने सद्ग्रन्थ रामायण में कहते हैं—

बड़े भाग्य मानुष तन पावा।
सुर दर्लभ सद्ग्रन्थिन गावा।।

वह शरीर जो देवताओं को भी दुर्लभ है, वह मनुष्य शरीर बड़े भाग्य तथा पुण्य कर्मों से प्राप्त होता है। मानव शरीर बहुत अनमोल है। भारतीय ग्रन्थों में कहा गया है तथा आज भी साधु-सन्यासी तथा कथावाचक बताते हैं कि 84 लाख योनियों में भटकने के पश्चात् कहीं जाकर मानव तन प्राप्त होता है। इन 84 लाख योनियों में यदि सुन्दर-स्वस्थ शरीर के साथ-साथ दिल तथा दिगाम किसी के पास है तो वह केवल मनुष्य के पास है।

भय, भूख, निद्रा तथा सन्तान-उत्पत्ति सभी जीवों के गुण हैं परन्तु परमपिता परमेश्वर ने मानव को एक विलक्षण गुण दिया है और वह है विवेक अर्थात् बुद्धि का गुण।

मनुष्य को जीवन में प्रत्येक क्षेत्र में एक स्वस्थ शरीर की आवश्यकता होती है। भगवान् कृष्ण ने गीता में इस भूमि को कर्म भूमि कहा है। दैनिक चर्चा से लेकर इस जगत् के जितने भी कार्य हैं, सभी इस शरीर से किए जाते हैं। परमपिता परमेश्वर की कृपा से प्राप्त यह बेजोड़ तथा अनमोल शरीर बड़े से बड़ा कार्य करने की सामर्थ्य रखता है। मानव ने इस शरीर से हिमालय पर्वत की ऊँचाई को नापा है तो समुद्र की गहराई तक नापने का प्रयास किया है। वर्तमान युग में मनुष्य अन्तरिक्ष की यात्राएँ कर रहा है। उसका लक्ष्य अभी बहुत कुछ प्राप्त करने का है। अन्तरिक्ष में बसने कीं उसकी लालसा है। परन्तु यह सब तभी तो सम्भव होगा जव व्यक्ति का मन तथा मस्तिष्क तथा शरीर पुष्ट हो। क्षुद्र कार्य से लेकर परमार्थ तक इस शरीर के द्वारा ही किया जाता है। जब तक कोई व्यक्ति तन तथा मन से स्वस्थ नहीं होगा, तब तक वह किसी और की सहायता तो कैसे करेगा, वह अपना कार्य भी नहीं कर सकेगा।

ऐसा व्यक्ति समाज तथा देश का तो क्या अपना स्वयं का भी उत्थान नहीं कर सकता। केवल स्वस्थ शरीर ही स्वस्थ समाज दे सकता है।

'Health is Wealth' की कहावत के अनुसार मनुष्य का शारीरिक स्वास्थ्य ही उसका सबसे बड़ा धन है। एक कमजोर बीमार व्यक्ति देश तथा समाज का कुछ भला नहीं कर सकता। ऐंसा अस्वस्थ व्यक्ति अपने लिए तथा समाज और देश के लिए भार है।

व्यक्ति बड़े से बड़े संकट से जूझ सकता है यदि वह एक पुष्ट तथा स्वस्थ शरीर का स्वामी है। स्वस्थ शरीर के माध्यम से व्यक्ति प्रत्येक संकट तथा बाधाओं से पार होता हुआ अपने लक्ष्य तक पहुँच सकता है। व्यक्ति द्वारा किया गया कोई भी कार्य उसके स्वस्थ शरीर तथा मस्तिष्क पर निर्भर करता है। यदि उसका मस्तिष्क शान्त होगा तथा शरीर स्वस्थ होगा तब व्यक्ति अपनी कार्यकुशलता एवं क्षमता के आधार पर किसी भी कार्य में अथवा विकास में चार चाँद लगा सकता है। इसलिए स्वस्थ शरीर की जीवन में एक बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

अच्छे मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य की प्राप्ति के लिए उचित आहार तथा भोजन की आवश्यकता पड़ती है। यदि आप योगासन, प्राणायाम आदि से पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहते हैं तो आपको अपने आहार-विहार में भी सुधार लाना होगा। केवल योगासन, प्राणायाम, षट्कर्म आदि क्रियाएँ करने से शरीर को पूर्ण स्वस्थ नहीं रखा जा सकता।

प्राणायाम तथा षट्कर्म आदि से शारीरिक कार्यप्रणाली को ठीक प्रकार से बनाए रखने तथा शरीर की रोगनाशक शक्ति को बढ़ाने में मदद मिलती है। योगासन तथा योगाभ्यास सम्बन्धी अन्य क्रियाएँ शरीर को पूरी तरह स्वस्थ तथा मन को विकाररहित होने में सहायता करती है। शरीर रूपी मशीन को सुचारू रूप से चलाने के लिए जहाँ इस प्रकार की शुद्धि तथा व्यायाम योग-क्रियाओं द्वारा प्राप्त होती है, वहाँ दूसरी ओर शरीर को उचित ऊर्जा प्राप्त कराने में उचित तथा स्वास्थ्यवर्धक आहार का भी विशेष महत्त्व है। आहार से ही हमारे शरीर का पोषण होता है। शरीर की टूट-फूट को ठीक करने, अन्दर के अंगों की कार्य करने की शक्ति को बनाए रखने तथा रोगों से बचाने की क्षमता पैदा करने के लिए शुद्ध, सुपाच्य, सात्त्विक, खनिज-लवण युक्त प्राकृतिक भोजन की शरीर को बहुत आवश्यकता होती है। भोजन जितना अधिक शुद्ध पौष्टिक तथा सन्तुलित होगा, उतना ही अच्छी व उचित ऊर्जा खुराक के रूप में शरीर तथा मन को प्राप्त हो सकेगी। इसीलिए कहा जाता है कि–

'जैसा अन्न वैसा मन' शुद्ध व सात्त्विक भोजन के विना योग से प्राप्त पवित्रता भी बनी नहीं रह सकती। योग-साधना में रत एक व्यक्ति के लिए उचित आहार का बहुत अधिक महत्त्व होता है।

विभिन्न प्रकार के अद्‌भुत कार्यों को करने वाले इस मानव शरीर का यथार्थ में एक ही मुख्य प्रयोजन है कि अपना, समाज का तथा देश का सम्पूर्ण रूप से विकास करना। समाज तथा देश में फैली हुई कुरीतियों को दूर करने के लिए एवम् स्वयं का उत्थान करने के लिए जनहित का कार्य करना पड़ेगा। अच्छे संस्कार उत्पन्न करने होंगे तथा प्रत्येक व्यक्ति को मानसिक व शारीरिक रूप से शक्तिशाली बनाना होगा। जब तक इस पंच भौतिक शरीर में प्राण रहते हैं तब तक ही यह जीवन है। प्राण के न रहने के पश्चात् यह शरीर भी निर्जीव हो जाता है। व्यक्ति के मस्तिष्क में एक अच्छी सोच भी तब पैदा होती है जब उसका शारीरिक स्वास्थ्य ठीक एवं मस्तिष्क स्वस्थ होगा। मष्तिष्क स्वस्थ तभी हो सकता है, जब शरीर स्वस्थ हो तथा उसे किसी प्रकार का रोग न हो। क्योंकि स्वास्थ्य के अभाव में व्यक्ति हीनता महसूस करता है। स्वस्थ शरीर के लिए पौष्टिक आहर वहुत अनिवार्य है।

हमारे देश के लाखों बच्चे तथा महिलाएँ कुपोपण की शिकार होती हैं। परिणामस्वरूप वे अकाल मृत्यु का शिकार होती हैं। लाखों बच्चों को पौष्टिक आहार तो बहुत दूर की बात है, पेट भरकर दो समय का भोजन भी उपलब्ध नहीं होता। पौष्टिक आहार न मिलने अथवा गलत, अम्ल प्रधान अप्राकृतिक भोजन के कारण शरीर के अन्दर विकार पैदा होते रहेंगे, शरीर की शक्ति क्षीण होती रहेगी, अवयवों का उचित पोषण नहीं हो पाएगा, सेल्ज टूटेंगे अधिक, बनेंगे कम, रक्त में सफेद कण अधिक हो जाएंगे, लाल कणों की कमी हो जाएगी, शरीर बार-वार रोगी होता रहेगा। शरीर की कार्यक्षमता कम होती रहेगी तथा शीघ्र ही शरीर शक्ति हीन होकर अपनी कार्यक्षमता खो बैठेगा। ये सब बातें न हों इसके लिए सन्तुलित तथा पौष्टिक आहार बहुत अनिवार्य है।

❖ भोजन अथवा आहार क्या है?
(What is Diet ?)

हमने पौष्टिक तथा सन्तुलित भोजन की चर्चा बहुत अधिक की है, परन्तु प्रश्न उत्पन्न होता है कि भोजन अथवा आहार है क्या।

पौष्टिक अथवा सन्तुलित भोजन से अभिप्राय है, वे खाद्य-पदार्थ जिनके सेवन से शरीर में शक्ति, ऊर्जा, अवयवों की क्षतिपूर्ति तथा शारीरिक विकास होता है, उन्हें भोजन अथवा आहार कहा जाता है। भोजन जीवन के लिए अति आवश्यक है, जिसका प्रभाव मनुष्य की आयु, चरित्र तथा आचरण पर पड़ता है। जैसा पहले भी कहा गया है 'जैसा खाओगे अन्न वैसा होगा मन', 'जैसा पीओगे पानी वैसी होगी वाणी।' मनुष्य का व्यवहार, चरित्र, वृत्तियाँ आदि उसके भोजन से बहुत अधिक प्रभावित होती हैं।

1. **वर्धन**–भोजन से शरीर की कोशिकाएँ (Cells) अपनी समृद्धि के लिए सामग्री प्राप्त करती हैं। इनके बढ़ने तथा इनकी संख्या अधिक होने से शरीर का वर्धन होता है।
2. **क्षति पूर्ति**–पौष्टिक तथा सात्त्विक भोजन से शरीर के विभिन्न अवयवों में निरन्तर जो रासायनिक क्रियाएँ होती रहती हैं, उनके परिणामस्वरूप हुई क्षति की पूर्ति हो जाती है।
3. **शक्ति उत्पादन**–शरीर के ऐच्छिक तथा अनैच्छिक सभी कार्यों के लिए शक्ति आवश्यक है। पौष्टिक भोजन इस शक्ति को उत्पन्न करने में सहायता करता है।
4. **रक्षात्मक कार्य**–शरीर की वृद्धि क्षत-विक्षत तन्तुओं की पूर्ति तथा उत्पादन के अतिरिक्त कुछ अन्य कार्य भी हैं, जिनके लिए भोजन अनिवार्य है। भोजन के कुछ मूल अवयव जैसे विटामिन आदि न तो शक्ति ही उत्पन्न करते हैं तथा न ही शरीर की वृद्धि, फिर भी शरीर की रक्षा तथा भोजन के उपयुक्त कार्यों के ठीक सम्पादन के लिए उनकी नितान्त आवश्यकता है।

वर्तमान में हमारे भोजन में अनिवार्य तत्त्व समाप्त होते जा रहे हैं। भोजन की आदतें बदलती जा रही हैं। जंकफूड की आदत बढ़ती जा रही है।

अधिकांश व्यक्ति अपने भोजन को तल-भूनकर, उसकी शक्ति नष्ट करके, विटामिन तथा खनिज लवण समाप्त कर मिर्च-मसालों से भरपूर भोजन खाते हैं। परिणामस्वरूप अनेक बीमारियों को निमन्त्रण देते हैं, रोगी होकर डॉक्टरों के पास जाते हैं, ताकत की गोलियों के रूप में विटामिन खाते हैं। खनिज लवण के टीके लगवाते हैं। धन तथा तन दोनों को बर्बाद करते हैं।

'जैसा हो भोजन, वैसे बने हम।'

हमारे भोजन का स्वरूप बदल गया है। पैकेट बन्द भोजन की हमें आदत पड़ गई है। खाने का कोई समय नहीं रहा। वर्तमान विवाह-शादियों में अर्धरात्रि को भोजन किया जाता है वह भी मिर्च-मसाले वाला। बच्चों को मां के दूध के स्थान पर बोतल का दूध, जंकफूड और न जाने क्या-क्या, पीजा-बर्गर तथा अन्य डिश। इन सबके कारण अधिकांश बीमारियों तथा मौतों को हम स्वयं निमन्त्रण देते हैं। पान-मसाला तथा न जाने कितने ओर तरह के मसालों का शौक युवा वर्ग में बढ़ता जा रहा है। नशे की इस लत ने जहां शरीर को जर्जर किया वहां युवाओं में अनेक सामाजिक बुराईयां पैदा की हैं।

विज्ञान की उन्नति तथा आर्थिक विकास के बावजूद भी मनुष्य का जीवन दुस्साध्य तथा असाध्य रोगों से पीड़ित है। अधिकांश लोग तनाव भरा जीवन जी रहे हैं। हृदय रोग से मौत होना तो सामान्य बात हो गई है। ऐसी मौत पर कहा जाता है, चलो अच्छा हुआ बिना कष्ट उठाए तथा बच्चों से सेवा करवाए चल बसा। कितना बदल गया है समाज का दृष्टिकोण?

आश्चर्य की बात तो यह है कि हृदय रोग से मौत बड़े-बड़े पदों पर आसीन तथा लक्ष्मी और सरस्वती के कृपा पात्रों की अधिक होती है। धन तो बढ़ता है परन्तु समय पर भोजन का समय नहीं मिलता।

इन सब मौतों तथा बीमारियों का मूल कारण है–गलत व असन्तुलित आहार। यह कहा जाता है कि जैसा हम भोजन करते हैं, वैसे ही हम बनते हैं। यह चिन्ता किसी धनी व्यक्ति को नहीं है कि कैसा भोजन शरीर को स्वस्थ रख सकता है। इस बात की ओर ध्यान न देकर आज का तथाकथित आधुनिक धनी समाज अधिक से अधिक दवाईयों पर निर्भर है। शायद ही कोई ऐसा सौभाग्यशाली व्यक्ति अथवा परिवार होगा जो बिना दवाईयों के रह रहा है।

प्रत्येक व्यक्ति के रक्त में दो प्रकार के कण पाए जाते हैं–लाल रक्त कण तथा सफेद रक्त कण।

शरीर में सफेद रक्त कण अधिक होने की दशा में व्यक्ति शीघ्र बीमार पड़ जाता है। जलवायु तथा महामारियों का उसके शरीर पर अधिक प्रभाव पड़ता है।

लाल रक्त कण अधिक होने की स्थिति में व्यक्ति स्वस्थ रहता है तथा रोग के कीटाणु उस पर शीघ्र आक्रमण नहीं कर पाएंगे। उसमें रोग-नाशक शक्ति अधिक होगी।

रक्त में लाल कण तभी अधिक हो सकते हैं जब हमारा भोजन विटामिन, खनिज-लवण युक्त व क्षारपन लिए हो।

कहा जाता है कि शरीर अपना डॉक्टर स्वयं है। शरीर में इस प्रकार के यन्त्र परमपिता परमेश्वर ने फिट किए हैं जो शरीर को ठीक रखते हैं। जैसे ही हम अथवा आप बीमार हुए भूख चली जाती है, कुछ भी खाने की इच्छा नहीं रहती। यदि जबरदस्ती खाते हैं तो वमन हो जाता है, घबराहट बढ़ जाती हैं, मुँह का स्वाद बिगड़ जाता है। हृदय गति बढ़ जाती है तथा शरीर टूटने-सा लगता है। शरीर निर्जीव सा शक्तिहीन हो जाता है।

ये सभी क्रियाएँ शरीर अपने अन्दर पित्त, कफ तथा अन्य विकारों को बाहर निकालने के लिए करता है। हम शरीर के कार्य में सहायता नहीं करते वरन् दवाईयां लेकर तथा खाते-पीते रहकर उसमें बाधा ही पहुँचाते हैं। यदि हम और आप शरीर की सहायता करें। कुछ न खाएँ अथवा कम खाएँ, आराम करें, थोड़ा-थोड़ा पानी पिएँ, पेट साफ कर लें तो शरीर जल्दी ही स्वयं को स्वस्थ कर लेगा।

❖ भोजन कैसा हो अथवा सन्तुलित भोजन (About Diet or Balance Diet)

सबसे महत्त्वपूर्ण सवाल यह है कि प्रकृति द्वारा दिए गए पदार्थों को आप कैसे खाएँ? पूर्णरूप से स्वस्थ रहने के लिए अति आवश्यक है कि प्रकृति हमारे खाने की वस्तुओं को जिस रूप में पैदा करती है, उन्हें उसी रूप में खाया जाए। उन्हें अधिक पकाया न जाए। ऐसे भोजन से हमें बहुत कम खुराक से आवश्यकतानुसार शीघ्र शक्ति प्राप्त हो जाएगी जो हमें कभी रोगी नहीं होने देगी।

यही नहीं वरन् हमारा भोजन सन्तुलित भी होना चाहिए। शरीर की आवश्यकतानुसार सभी पौष्टिक तत्त्व हमारे भोजन में उचित मात्रा में पाए जाने चाहिएँ। भोजन शीघ्र पचने वाला तथा शक्तिवर्धक होना चाहिए।

भोजन के अन्दर सभी तत्त्वों यथा—अनाज, कच्ची सब्जियाँ, फल, सूखे मेवे, दूध, सोयाबीन, मूंगफली का होना अनिवार्य है। भोजन में अनिवार्य तत्त्वों के अभाव में अथवा उनमें कमी अथवा अधिकता होने पर शारीरिक विकास तथा स्वास्थ्य में बाधा पहुँचती है।

सन्तुलित भोजन में प्रोटीन, विटामिन, वसा, खनिज पदार्थ, जल तथा रेशे उचित मात्रा में पाए जाने चाहिएँ जो हमें अनाज, दालों, कच्ची सब्जियों, फल, सूखे मेवों, दूध, सोयाबीन तथा मूंगफली से प्राप्त हो जाते हैं।

मटर, अरहर, चना, मूंग, सोयाबीन, सेम, अनाज, दूध, पनीर, अण्डे, मछली, मांस आदि में प्रोटीन की अधिकता रहती है। ये सभी शरीर की रचना तथा निर्माण में सहायक हैं।

गेहूँ, शक्कर, गुड, शहद, खजूर, अंगूर, सूखे मेवों में कार्बोहाइड्रेट होता है, ये सभी तत्त्व शरीर में कार्य करने के लिए शक्ति प्रदान करते हैं। ये नए कोशों का निर्माण करते हैं। शारीरिक परिश्रम करने वालों के लिए इनका सेवन बहुत अनिवार्य है। परन्तु ये अधिक मात्रा में नहीं लेने चाहिएँ। अधिक मात्रा में लेने से शरीर में मोटापा बढ़ता है।

बादाम, अखरोट, सूखे फल, वनस्पति तेलों (सरसों, नारियल, मूंगफली, तिली) में अधिक पाए जाने वाले तत्त्व को वसा कहते हैं। दूध, घी, मछली का तेल, पशुओं की चर्बी, अण्डे, मक्खन आदि में भी वसा होती है।

वसा के द्वारा शरीर की चर्बी में वृद्धि होती है। जिससे शरीर सुन्दर दिखाई देता है तथा क्षय हो गई चर्बी की क्षति पूर्ति करता है। वसा चर्बी के रूप में शरीर में भोजन का संग्रह कर लेती है। उपवास पर बैठे लोगों द्वारा भोजन न लेने पर संग्रहित चर्बी शरीर के सभी संस्थानों को ऊर्जा प्रदान करती रहती है।

हरे पत्तों की सब्जियों व हरे फलों में खनिज पदार्थ अर्थात् लवण अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। इनके सेवन से शरीर के अनेक रोग दूर होते हैं। इसलिए इन्हें रक्षक पदार्थ भी कहा जाता है। खनिज पदार्थ हमारी पाचन शक्ति को बढ़ाने, रक्त को लाल बनाए रखने, हड्डियों तथा दाँतों को मजबूत बनाने तथा दिल की धड़कन को सामान्य बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

यद्यपि सब खाद्य-पदार्थों में पानी की कुछ-न-कुछ मात्रा अवश्य होती है परन्तु पानी का अलग से सेवन करना बहुत अनिवार्य है। पानी शरीर के अन्दर से विजातीय व विषैले पदार्थों को निकालने में सहायता करता है तथा शरीर का तापक्रम नियमित रखता है। जल की उचित मात्रा न होने से हमारी पाचन क्रिया में बाधा पहुँचती है।

प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, लवण, जल के साथ-साथ शरीर को चुस्त, स्फूर्तिदायक, बलिष्ठ बनाने में विटामिनों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। विटामिन कई प्रकार के होते हैं—

1. **विटामिन 'ए'**—दूध, दही, पनीर, घी, अण्डे, चावल, बादाम, नारियल, मूंगफली, केले, टमाटर, हरीमिर्च आदि में विटामिन ए की बहुतायत होती है। विटामिन ए से हमारा शरीर सुदृढ़, स्वस्थ तथा नीरोग बनता है।
2. **विटामिन 'बी'**—छिलके वाली दाल, अनाज, खमीर, नारियल, मूंगफली, सूखे फल, हरी सब्जियाँ, टमाटर, मटर, गाजर आदि विटामिन बी से भरपूर होते हैं। इस विटामिन बी की कमी से शरीर में दर्द, भूख कम लगना, चक्कर आना, स्मरण शक्ति की कमी आदि अनेक रोग हो जाते हैं।
3. **विटामिन 'सी'**—नीम्बू, नारंगी, टमाटर, संतरा, अनानास, अंकुरित दालें तथा आंवले आदि में विटामिन सी की बहुतायत होती है। बच्चे के शरीर की वृद्धि, दाँतों व मसूढ़ों का निर्माण तथा विकास में विटामिन सी का बहुत योगदान रहता है।
4. **विटामिन 'डी'**—दूध, घी, मक्खन, मछली के तेल में विटामिन डी बहुतायत में होता है। बच्चों व गर्भवती महिलाओं के लिए यह विटामिन बहुत अनिवार्य है। त्वचा पर सूर्य की किरणें पड़ने से भी इस विटामिन की प्राप्ति हो जाती है।
5. **विटामिन 'ई'**—गेंहू, हरी सब्जी, दूध, अण्डा, वनस्पति घी आदि में विटामिन ई पाया जाता है। प्रजनन क्रिया में यह विटामिन बहुत सहायक होता है।
6. **विटामिन 'के'**—हरी सब्जी, बन्द गोभी, टमाटर, मछली आदि में विटामिन 'के' (K) के गुण होते हैं। यह विटामिन चोट लगने पर रक्त स्राव को रोकता है। इस विटामिन के कारण रक्त बाहर नहीं आ पाता अर्थात् रक्त जम जाता है।
7. **रेशे**—यद्यपि रेशे पौष्टिकता प्रदान नहीं करते परन्तु ये भोजन के रासायनिक तत्त्वों को निकाल कर पाचन क्रिया को ठीक बनाये रखते हैं। रेशे की भोजन में उचित मात्रा होने पर भोजन के विजातीय द्रव्य आँतों में नहीं चिपकते जिसके कारण कब्ज नहीं होती।

छिलके युक्त फलों, सब्जियों, चोकरदार आटे में रेशे बहुतायत में होते हैं।

ऊपरवर्णित तथ्यों के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि शरीर के सन्तुलन को बनाए रखने के लिए हमें 75 प्रतिशत क्षार प्रधान भोजन की तथा 25 प्रतिशत अम्ल प्रधान भोजन की आवश्यकता होती है, जबकि हमारा आहार अधिकांश रूप में अम्ल प्रधान होता है जिससे शरीर रोगों से घिरा रहता है। चपाती, चावल, आलू, तली-भूनी चीजें, चाय, कॉफी, पकौड़े, पीजा, बर्गर आदि अम्ल बढ़ाने वाले पदार्थ हैं इसलिए जहां तक सम्भव हो इन चीजों को सेवन न किया जाए अथवा बहुत कम सेवन किया जाए, जिससे शरीर को स्वस्थ, सुन्दर, बलिष्ठ तथा रोग मुक्त रखा जा सके।

❖ भोजन के प्रकार (Types of Food)

प्रकृति त्रिगुणात्मक है। व्यक्ति में भी तीन गुण हैं—सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण। व्यक्ति के इन तीनों गुणों का सीधा सम्बन्ध उसके भोजन से है। भारतीय दर्शन में इस सिद्धान्त को अनादि काल से माना जा रहा है और जो आज भी सत्य है कि 'जैसा अन्न, वैसा मन' अर्थात् जैसा हम भोजन करेंगे वैसे ही हमारे विचार बनेंगे, हमारी वृत्ति बनेगी।

मनुष्य अपने आहार में जिन खाद्य-पदार्थों का सेवन करता है, उनको तीन भागों में बांटा जा सकता है—

1. सात्विक भोजन—सबसे अच्छा भोजन सात्त्विक भोजन होता है। ऐसे भोजन में मिर्च, खट्टे पदार्थ, तले हुए तथा ज्यादा पके हुए पदार्थ नहीं होते क्योंकि ये सभी पदार्थ शरीर को हानि पहुँचाते हैं। भोजन ज्यादा गर्म तथा ज्यादा ठण्ड़ा भी हानिकारक होता है।

सात्त्विक भोजन से जीवन सुखमय तथा आनन्दित होता है। शरीर नीरोग व शक्तिशाली बनता है। मन

की चंचलता को रोकता है। काम-वासना तथा भोग-विलास में ऐसे भोजन करने वाले की रुचि कम होती है। यह भोजन सर्वश्रेष्ठ तथा आदर्श माना जाता है।

भोजन को पकाते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए कि ईंधन की गन्ध भोजन में न आने पाए। भोजन ताजा पका हुआ होने से स्वादिष्ट तथा आनन्द देने वाला होता है।

सात्त्विक भोजन में ताजे फल, हरी सब्जियाँ, छिलके युक्त दालें, अंकुरित अन्न, दूध, दही आदि शामिल होते हैं।

2. राजसी भोजन—राजसी भोजन में मिर्च-मसाले, खट्टे पदार्थ अधिक मात्रा में होने के कारण मनुष्य की इन्द्रियाँ बहुत अधिक उत्तेजना का अनुभव करती हैं। ऐसे भोजन से कार्य, विचार तथा भावों में बहुत अधिक परिवर्तन आ जाता है। ऐसे भोजन से राजसी प्रवृत्ति उत्पन्न होती है जो व्यक्ति को भोग-विलास की ओर उन्मुख करता है। ऐसा भोजन ज्यादा गर्म, ज्यादा ठण्डा तथा खुश्क होता है। ऐसे भोजन के सेवन से अमाशय में जलन पैदा हो जाती है। भोजन गरिष्ठ होने के कारण शीघ्र पचता भी नहीं है। जितने भी स्वादिष्ट पदार्थ यथा—चाय, कॉफी, शीतल पेय, मिठाइयाँ, नशीली वस्तुएँ (तम्बाकू, पान मसाला, शराब) मेवे आदि सभी राजसी भोजन में आते हैं। धनाढ्य व्यक्तियों का यह भोजन है क्योंकि वे ऐसा भोजन खाने के लिए जीते हैं।

इस भोजन की सबसे बड़ी कमी यही है कि इस भोजन से पाचन-शक्ति बिगड़ जाती है। शरीर में रोगों से लड़ने की शक्ति क्षीण हो जाती है तथा मनुष्य बुरे कर्मों में प्रवृत्त हो जाता है। उसका अपने ऊपर नियन्त्रण भी नहीं रहता।

3. तामसी भोजन—सभी तरह का बासी खाना, कच्चे गले-सड़े-फल, दुर्गन्ध-युक्त, पौष्टिक तत्त्वों से वंचित कीटाणु-युक्त भोजन तामसी भोजन की श्रेणी में आते हैं। ऐसा खाना खाने से दानव-वृत्ति उत्पन्न होती है। गुणों की दृष्टि से निकृष्ट होने के कारण स्वास्थ्य की दृष्टि से ही नहीं वरन् मानसिक दृष्टि से भी यह भोजन त्याज्य है। ऐसा भोजन करने वाले व्यक्ति का मन व आत्मा दूषित हो जाती है। विभिन्न रोगों से ग्रस्त होकर मनुष्य का शरीर शक्तिहीन हो जाता है। ऐसे भोजन का सेवन करने वाला अपने लिए तथा समाज के लिए भी अभिशाप है।

यह भोजन गुणों की दृष्टि से निकृष्ट, स्वास्थ्य के लिए हानिकारक तथा व्यक्ति में तामसी प्रवृत्तियाँ जागृत करने वाला है। इस भोजन के कारण व्यक्ति आलसी, चिड़चिड़ा, निकम्मा तथा दुष्ट प्रवृत्ति वाला बन जाता है।

भोजन कब करें तथा कब न करें

वर्तमान भाग-दौड़ के जीवन में मनुष्य के पास समय नहीं है कि वह आराम से समय पर खाना तो खा सके। इस भाग-दौड़ के कारण ही जंकफूड की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। लोग भागत-भागते खाना खाते हैं। अर्धरात्रि को कलिष्ट भोजन करना तो आधुनिकता की वास्तविक पहचान है। विवाह-शादियों में, अन्य समारोहों में गर्म ठण्डा, चिकनाई युक्त, मिर्च-मसालों से भरपूर खाना हमारी आदत बन गई है। योगी लोग कहते हैं कि रात का भोजन बहुत हल्का होना चाहिए। सोने से तीन-चार घण्टे पहले खा लेना चाहिए परन्तु स्थिति इसके बिल्कुल विपरीत है। इसलिए यदि आप स्वस्थ नीरोग रहना चाहते हैं तो—

1. जब भूख लगे, तभी खाना चाहिए। जब जहाँ जैसा मिल जाए वैसा खाना कभी न खाएँ।
2. केवल उतना ही खाना चाहिए जितने से भूख शान्त हो जाए। भूख से कम खाएँ अधिक नहीं, भूख से केवल स्वाद के कारण खाना हानिकारक होता है।
3. प्रयास करें कि आपका भोजन सादा हो। बहुत तरह की चीजें एक साथ खाना पेट पर व्यर्थ का बोझ डालना है।
4. भोजन सदैव एकाग्रचित्त तथा शान्त भाव से करना चाहिए।
5. जब तक ग्रास को पूरी तरह चबा न लें दूसरा ग्रास मुख में न डालें।
6. भोजन कभी भी हड़बड़ी में न करें। भोजन तब करें जब आप मन चाहा समय भोजन में लगा सकें।

❖ भोजन कब करें ?

1. सोने के बाद तुरन्त उठकर कभी न खाएँ।
2. चिन्तित, क्रोधित, शोकातुर अवस्था में भी भोजन कभी न करें।
3. जबरदस्ती कोई चीज मत खाएँ, यदि आपके खाने की इच्छा नहीं है।
4. कोई भी उबली-सी गर्म अथवा बर्फ जैसी ठण्डी चीज गले से नीचे न उतारें। यदि कभी बहुत ठण्डी अथवा बहुत गर्म चीज खानी हो तो उसे बहुत धीरे-धीरे खाएँ।

❖ योगी का आहार (Diet of an Yogi)

एक साधक यम, नियम अर्थात् अष्टांग योग के साधनों को अपनाता हुआ तथा यौगिक क्रियाओं को करता हुआ समाधि अवस्था में पहुँचता है। समाधि के माध्यम से साधक अपने अन्तिम लक्ष्य अर्थात् परमपिता परमेश्वर से मिलने का लक्ष्य प्राप्त कर लेता है।

योग-साधना रूपी इस कठिन तप में जहाँ साधक का दृढ़ निश्चय, साधनारूपी कर्म तथा मन, वचन तथा कर्म की पवित्रता उसका साथ देती है। वहाँ इस सब को साधने वाले साधक के रूप में शरीर का स्वास्थ्य तथा उसकी उचित कार्य क्षमता उसके लिए बहुत आवश्यक होती है।

शरीर को स्वस्थ तथा नीरोग बनाए रखने में उचित आहार का बहुत महत्त्व है। योगी को ऐसे आहार की आवश्यकता होती है जो उसकी चित्तवृत्तियों पर नियन्त्रण रखने में सक्षम हो। योगी के लिए अनिवार्य है कि चित्तवृत्तियों पर नियन्त्रण करने के कार्य को अपनी दिनचर्या का आधार बनाए। भोजन के सम्बन्ध में हमने एक साधारण व्यक्ति की आदतों का वर्णन किया है। हमने सात्त्विक, राजसी तथा तामसी भोजन की चर्चा की है परन्तु एक योगी को अपने भोजन के सम्बन्ध में अधिक सतर्क रहने की आवश्यकता है। वैसे तो खान-पान का व्यक्ति के तन-मन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। 'जैसा भोजन खाओगे वैसा मन पाओगे।'

एक योगी का विशेष रूप से आहार ऐसा होना चाहिए जो उसकी योग साधना तथा उसके निहित उद्देश्यों की पूर्ति में सभी तरह से सहायक हो।

एक योगी अथवा साधक को अपने आहार के विषय में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

1. योगी अथवा साधक को ऐसा भोजन करना चाहिए जो उसके स्वभाव, आयु, लिंग, शरीर की आवश्यकता तथा दिनचर्या के अनुकूल हो।
2. भोजन के लिए यह नियम योगी के साथ-साथ सर्वसाधारण पर भी लागू होता है कि भूख से अधिक नहीं वरन् कम भोजन खाना चाहिए। कम भोजन से ही आवश्यक शक्ति तथा ऊर्जा मिल जाती है। अधिक भोजन मल के रूप में बाहर निकल जाता है। यदि ऐसा नहीं होता तो शरीर को अन्य किसी भी तरह की व्याधि लग सकती है।
3. योगी के लिए सन्तुलित आहार ही उचित है। आहार ऐसा हो जिसमें आवश्यक कैलोरी भी प्राप्त हो जाए। योगी को सदैव ऐसा भोजन लेना चााहिए जो उसकी परिस्थिति तथा प्रकृति के अनुकूल हो। योगी का भोजन सात्त्विक, सादा, सुपाच्य तथा कम खर्चीला हो।
4. योगी को राजसी तथा तामसिक भोजन से सदैव परहेज करना चाहिए। राजसी भोजन शीघ्र पचता नहीं तथा मन में विकार उत्पन्न करके भोग-विलास की ओर उन्मुख करता है। इस प्रकार के भोजन में मिर्च-मसाले अधिक मात्रा में होते हैं जिसके कारण अमाशय में जलन पैदा हो जाती है। तामसी भोजन स्वस्थ्य के लिए हानिकारक होता है। मन में तामसी वृत्तियाँ जन्म लेती हैं। व्यक्ति आलसी, चिड़चिड़ा, निकम्मा तथा दुष्ट प्रवृत्ति वाला हो जाता है। इसलिए जलवायु तथा परिस्थितियों की विवशता को छोड़कर योगी को सदैव सात्त्विक भोजन लेना चाहिए।
5. योगी अथवा साधक को ऐसा भोजन कदापि नहीं करना चााहिए जो यौगिक क्रियाओं तथा साधना में बाधक हो। निद्रा लाने वाले, चर्बी बढ़ाने वाले तथा काम-इन्द्रियों में उत्तेजना पैदा करने वाले भोजन से एक योगी को सदैव दूर रहना चाहिए।

योगी को केवल सात्त्विक, सुपाच्य तथा कम भोजन ही नहीं लेना चाहिए वरन् उसे इस बात का भी विशेष ध्यान रखना चाहिए कि वह आहार को कब तथा किस रूप में ले। इस विषय में उसे कुछ नियमों का पालन करना चाहिए, जिससे वह अपने अन्तिम उद्देश्य अर्थात् परमपिता परमेश्वर से मिलने का अपना लक्ष्य प्राप्त करने में सफल हो सके। ऐसा करने से ही वह आवागमन के चक्र से सदैव के लिए मुक्त हो सकता है।

1. एक योगी अथवा साधक को निश्चित समय पर भोजन करना चाहिए। जो समय एक दफा निश्चित हो जाए। प्रतिदिन उसी समय भोजन कर लेना चाहिए।
2. योगी को दिन में दो बार से अधिक खाना नहीं खाना चाहिए, जिससे पेट को आराम मिल सके। प्रतिक्षण अथवा कुछ विराम के पश्चात् खाते रहना एक साधक के लिए उचित नहीं है।
3. भोजन सदैव शान्तचित्त तथा एकाग्र होकर करना चाहिए। हड़बड़ी में किया हुआ भोजन शीघ्र पचता नहीं है।
4. भोजन से पहले पानी पी लेना चाहिए अथवा भोजन के कम से कम एक घंटे पश्चात् पानी पीना चाहिए। भोजन के बीच-बीच में पानी हानिकारक होता है। दिन में दो-तीन लीटर पानी अवश्य पीना चाहिए। यदि पानी में नींबू डाला जाए तो और भी अच्छा है।
5. भोजन में कच्ची सब्जियों का सलाद अवश्य लें। जहाँ तक संभव हो सके हरी सब्जियों का अधिक प्रयोग करना चाहिए।
6. साधक को सदैव ताजी सब्जियों का प्रयोग करना चाहिए। सब्जियाँ धोकर काटें। काट कर धोना उचित नहीं है। हरी सब्जियों में पोषक तत्त्व अधिक होते हैं। इसलिए योगी को हरी सब्जियों तथा छिलके वाली दालों का अधिक प्रयोग करना चाहिए।
7. साधक अधिक पकी हुई सब्जियों का प्रयोग न करे। भोजन बनाते समय इस बात का भी विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए कि उसके पोषक तत्त्व नष्ट न हों।
8. सप्ताह में एक दिन का उपवास भी योगी के लिए लाभदायक है। यदि उपवास संभव न हो तो सप्ताह में एक दिन अवश्य फलाहार लें। कुछ और न खाएँ।
9. भोजन जल्दी में नहीं करना चाहिए। जो भी खाएँ खूब चबा-चबा कर आराम से खाएँ। भोजन को कुछ क्षणों तक मुँह में रखें जब रस बन जाए तभी उसे निगलें।
10. बिना भूख के भोजन करने की आदत सदैव के लिए छोड़ दें। स्वादिष्ट भोजन के मोह में जब चाहे तथा जहाँ चाहे खाना एक साधक के लिए उचित नहीं है। भूख से कम खाना लाभदायक तथा अधिक खाना हानिकारक होता है।
11. एक योगी को चाहिए दोपहर के भोजन के पश्चात् कुछ समय के लिए बाईं करवट लेटे। योग में इसे 'बामकुक्षि' कहा जाता है। इस तरह आराम करने से भोजन जल्दी पच जाता है।
12. रात का भोजन सोने से पहले कम से कम दो घण्टे पूर्व अवश्य करें। भोजन के पश्चात् थोड़ी दूर तक टहलना भी स्वास्थ्य के लिए बहुत उपयोगी है।
13. जहाँ तक संभव हो सके मौसम के अनुसार ताजे तथा पके हुए फलों का प्रयोग भी करना स्वस्थ के लिए उपयोगी है।
14. सबसे महत्त्वपूर्ण नियम है, योगी को तामसी तथा राजसी भोजन कभी भी नहीं करना चाहिए।

❖ उपवास
(Fast)

शरीर की शुद्धि के लिए उपवास से बढ़कर कोई अन्य विधि नहीं है। उपवास का केवल आध्यात्मिक दृष्टि से ही लाभ नहीं वरन् उपवास का राजनीतिक आधार पर भी प्रयोग होता रहा है। भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी ने ब्रिटिश सरकार से अपनी बात मनवाने के लिए उपवास का भी सहारा लिया था। अहिंसात्मक आंदोलन में उपवास भी एक शस्त्र रहा था।

स्वतंत्रता के पश्चात् भी राजनीतिक नेता, कर्मचारी सभी सरकार पर दबाव डालने के लिए उपवास को एक हथियार के रूप में प्रयोग करते हैं।

यहाँ राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के उपवास की चर्चा नहीं करेंगे वरन् शारीरिक तथा मानसिक दृष्टिकोण से उपवास के महत्त्व की चर्चा करने का प्रयास करेंगे।

वर्तमान भाग-दौड़, जंकफूड, समय-असमय भोजन के कारण हमारा जीवन एक मशीन से भी बदतर हो गया है। मशीन को भी काम के पश्चात् कुछ समय का विश्राम दिया जाता है। यदि ऐसा न किया जाए तो मशीन शीघ्र ही खराब हो जाएगी तथा उसकी उपयोगिता समाप्त हो जाएगी। मशीन का तो हम इतना ध्यान रखते हैं परन्तु उस परमपिता परमेश्वर द्वारा शरीर जैसी सुंदर मशीन प्रदान की है, मानव को स्वयं ही उसकी चिंता नहीं है।

समय-असमय, भूख है अथवा नहीं, जब भी, जैसा भी, कहीं भी कुछ भी स्वादिष्ट भोजन दिखाई दिया नहीं कि हम उस पर टूट पड़ते हैं।

ऐसी स्थिति में जैसा हमारा वर्तमान जीवन है, उसमें कम से कम सप्ताह में एक दिन का उपवास रखना बहुत आवश्यक है। ऐसा शरीर को स्वस्थ तथा उसे नीरोग बनाए रखने में बहुत सहायक है।

उपवास तन तथा मन दोनों के लिए उपयोगी है। उपवास से शरीर की शक्ति आंतरिक शुद्धि में लग जाती है, जिससे शरीर के यंत्रों को आराम मिल जाता है।

यदि निराआहार उपवास संभव न हो तो केवल नींबू-पानी का सेवन करना चाहिए। जिससे अंदर के सब यंत्र भली प्रकार धुलकर साफ हो जाएँ। यदि नींबू-पानी से काम न चले तो हल्का फलाहार किया जा सकता है।

भारत में उपवास का महत्त्व अनादि काल से है। उपवास के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए इसे धर्म का अंग ही बना दिया। भारतीय संस्कृति धर्म प्रधान री है। अतः हमारे ऋषि-मुनियों ने उपवास को धर्म के साथ जोड़ दिया। यदि साधारण जनता सप्ताह में एक बार उपवास नहीं भी करती है तो कम से धार्मिक उत्सव अथवा धर्म के नाम पर महीने में एक दो बार उपवास अवश्य करे। ऋषि-मुनियों ने इसे उपवास न कहकर व्रत का नाम दे दिया। व्रतों अथवा उपवासों के पीछे उद्देश्य एक ही है और वह है पाचन-यंत्रों को आराम देना।

प्रकृति अथवा परमेश्वर बहुत महान् तथा मेहरबान है। उसने दिन-रात बनाकर मनुष्य को कुछ समय के लिए आराम करने का अवसर प्रदान किया है। यदि रात्रि न होती तो मनुष्य सारा समय काम करता रहता तथा सारे समय खाता रहता। ऐसी स्थिति में कितनी शीघ्र उसकी जीवन लीला समाप्त हो जाती, इसकी केवल कल्पना ही की जा सकती है।

दिन भर काम करने के पश्चात् यदि रात्रि को विश्राम न किया तो अगले दिन शरीर थका-थका लगता है तथा उससे काम नहीं होता। हर समय खाते रहने से पाचन-यंत्र थक जाते हैं एवम् आराम न मिलने की दशा में बिगड़ जाते हैं।

खाना तभी खाना चाहिए जब पेट में जोर की भूख लगी हो। इसीलिए कहा जाता है कि भूख में चने भी बादाम लगते हैं। सूखी रोटी भी रस से भरी लगती है। भूख में खाने को देखते ही मुँह से लार टपकने लग जाती है। यदि भूख न हो तो स्वादिष्ट भोजन भी फीका लगता है, कुछ खाने को मन नहीं करता। यदि जबरदस्ती कुछ खा लिया जाए तो लाभ कम हानि अधिक होती है।

यदि शारीरिक शक्ति पूर्ण उपवास में सक्षम न हो तो आधा उपवास ही किया जा सकता है। आधे उपवास का अर्थ है—एक समय के भोजन का त्याग। ऐसे उपवास से भी पाचन-यंत्रों को आराम मिल जाता है।

उपवास रखने की कोई निश्चित अवधि नहीं है। आधे दिन से लेकर सप्ताह भर तथा इससे अधिक दिनों तक भी उपवास रखा जा सकता है।

जैन धर्म में सप्ताहों तक नहीं महीनों तक उपवास रखा जाता है। महात्मा गांधी जी भी समय-समय पर कई दिनों तक उपवास रखते थे। उपवास की अवधि शारीरिक क्षमता तथा मानसिक शक्ति पर निर्भर करती है। लम्बा उपवास रखने पर विशेषज्ञ उपवास रखने वाले की शारीरिक जाँच पड़ताल करते रहते हैं।

शरीर की बहुत-सी छोटी-मोटी बीमारियाँ केवल उपवास से ही ठीक हो जाती हैं। यदि हल्का बुखार है, सिर दर्द है, पेचिश, पेट दर्द, खांसी, जुकाम, सर्दी आदि रोग हो जाएँ तो कोई दवाई लेने की आवश्यकता नहीं है। केवल एक दवाई ले लें और वह दवाई एक या दो दिन का उपवास है। केवल पानी पर रहें। अपनी प्रकृति के अनुसार गर्म अथवा ठंडा पानी ले सकते हैं। उपवास में शरीर को विश्राम मिल जाता है। पेट साफ हो जाये तो रोग अपने आप भाग जाता है।

विवाह, शादी तथा अन्य समारोहों में खाने का कोई समय नहीं होता। अर्धरात्रि को लोग खाना खाते हैं। व्यंजन अधिक तथा समय कम। जबान के स्वाद के कारण अधिक भोजन और वह भी उल्टा सीधा। ठंड में ठंडे पेय, आईसक्रीम, कुल्फी खाने के साथ-साथ चाय, कॉफी, मिर्च मसालेदार सब्जियाँ खाना रोग को निमंत्रण देना है।

समय-असमय उल्टा-पुलटा खा भी लिया है तो प्रायश्चित तो करना पड़ेगा और एकमात्र प्रायश्चित है—उपवास।

विवाह, शादी अथवा अन्य समारोहों में उल्टा-सीधा खाने के पश्चात् आठ दस घंटे अथवा एक दिन का उपवास करने से शरीर स्वयं ही विकार को बाहर कर देगा तथा कोई कष्ट नहीं होगा। अतः कहा जा सकता है कि उपवास रामबाण उपचार है।

?

सम्भावित प्रश्न

1. यौगिक आहार क्या है? योग के साधक के लिए इसके अभ्यास एवं लाभ पर प्रकाश डालिए।
(What is Yogic diet? Define their importance for practicitioners.)

2. "योग के साधकों के लिए यौगिक आहार का अपना ही महत्त्व है।" वर्णन करें।
("Yogic diet has got its own importance for the practicitioners." Elaborate.)

3. "आहार, विचार और व्यवहार में गहरा संबंध है।" यौगिक आहार के परिप्रेक्ष्य में इस कथन पर टिप्पणी करें।
("Food, ideas and action are interrelated." Comment in the light of yogic diet.)

4. योग के प्रमुख प्रकारों का उल्लेख करते हुए सांख्य योग की सविस्तार व्याख्या करें।
(Mention the main type of yoga and explain Sankhya yoga in detail.)

5. यौगिक आहार क्या है? योग के साधक के लिए सात्विक आहार की प्रकृति एवं उसके महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
(What is Yogic Diet ? Discuss the nature and importance of 'Sattvic' food for Yoga practioner (Sadhak).)

◆◆◆

11

यौगिक षट्कम्
[Yogic Shatkarma]

शरीर को स्वच्छ, सुंदर व स्वस्थ रखने के लिए षट्कर्म से उत्तम और कोई साधन नहीं है। शरीर की शुद्धि तथा राजयोग के प्रवेशार्थ ऋषियों ने षट्कर्म की शिक्षा का अपने शिष्यों को उपदेश दिया। षट्कर्म की क्रियाएँ मानव शरीर का कायाकल्प करके उसे रोग मुक्त, दीर्घायु, स्वस्थ तथा पुष्ट तथा कान्तिमय बनाती हैं।

जब हम किसी बर्तन का प्रयोग करते हैं तो प्रयोग से पूर्व उसे मांज-धोकर साफ तथा शुद्ध करते हैं। एक कुत्ता भी बैठने से पूर्व स्थान को साफ तथा स्वच्छ करता है। हम तो मानव और मानव भी योगी की बात करते हैं।

एक योगी पुरुष अपने शरीर से योग-साधना करने से पूर्व उसे आंतरिक रूप से स्वच्छ करने की बात सोचता है।

हमारे शरीर की प्रकृति त्रिगुणात्मक है। वात, पित्त, कफ ये तीनों यदि समान रूप से रहें तो ही शरीर नीरोग तथा स्वस्थ रहेगा। एक योगी इसी दृष्टि से प्राणायाम, आसन तथा अन्य यौगिक साधनों के पूर्व शरीर की आंतरिक शुद्धि हेतु जिन यौगिक क्रियाओं का सहारा लेता है उन्हें षट्कर्म कहा जाता है।

षट्कर्म वात, कफ, पित्त में समानता लाता है। यदि इन तीनों में कोई भी बिगड़ जाए तो अनेक रोग हो जाते हैं। षट्कर्म करने से किसी प्रकार का रोग होता ही नहीं और यदि हो भी जाए तो इन षट्कर्मों से उसे ठीक किया जा सकता है। षट्कर्म की ये क्रियाएँ स्थूल शरीर को शुद्ध करती हुई सूक्ष्म शरीर के शुद्धिकरण में भी सहायक होती हैं।

वर्तमान भौतिकवादी इस भाग-दौड़ भरे जीवन के कारण न तो हमारा खाना सही है तथा न ही रहन-सहन। गलत रहन-सहन तथा खानपान के कारण शरीर स्वस्थ नहीं रह पाता। शरीर में अनेकों प्रकार के विकार उत्पन्न हो जाते हैं। शरीर का मल तथा विकार बाहर करने के लिए योगी षट्कर्म की क्रियाएँ करता है। जिससे विकार उत्पन्न होने वाले तत्त्व शरीर से बाहर हो जाएँ तथा अंदर के अंग अपने कार्य सुचारू रूप से करने लगें।

षट्कर्म शब्द दो शब्दों के मेल से बनता है—षट् तथा कर्म।

षट् का अर्थ है छह तथा कर्म का अर्थ है क्रिया।

अर्थात् तन मन को शुद्ध करने के लिए योगीजन जो छह क्रियाएँ करते हैं उन्हें षट्कर्म कहा जाता है। इन क्रियाओं के माध्यम से ऐसा प्रयत्न किया जाता है, जिससे शरीर के अनावश्यक मल तथा विकार को बाहर निकाला जा सके।

ये षट्कर्म अथवा छह क्रियाएँ निम्नलिखित हैं—

1. नेति (Neti)
2. धौति (Dhauti)
3. बस्ति क्रिया (Basti)
4. न्यौली (Nauli)
5. कपालभाति (Kapal Bhati)
6. त्राटक (Trataka)

इन षट्कर्मों अर्थात् छह क्रियाओं का संक्षेप में वर्णन इस प्रकार है।

1. नेति
(Neti)

नाक से भिन्न-भिन्न द्रव्यों को ग्रहण करने की विधि को नेति कहा जाता है। नेति चार प्रकार की है जो निम्नलिखित हैं–

(i) सूत्रनेति–जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है यह सूत की बनी होती है जो किसी भी योगाश्रम से ली जा सकती है। सूत्रनेति अर्थात् सूत की रस्सी का प्रयोग करने से पूर्व कई बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है, जिससे इस क्रिया का पूरा लाभ प्राप्त हो सकें।

चित्र : सूत्रनेति

1. नेति के मोम वाले भाग को ठंडे पानी से धोना चाहिए जिससे वह स्वच्छ तथा सख्त रहे।
2. नेति के मोम वाले हिस्से के अग्र भाग को चन्द्राकर बना कर नाक के उस हिस्से में धीरे-धीरे डालना चाहिए जो छिद्र अधिक चलता हो। यही क्रिया दूसरे छिद्र में भी करें।
3. छींक आने पर नेति को नाक से बाहर निकाल लेना चाहिए।
4. जब नेति मुख में आ जाए तो हाथ की सहायता से धीरे-धीरे बाहर निकाल लेनी चाहिए।
5. कई दफा नेति के घर्षण से नाक में जलन होने लगती है अथवा रक्त आने लगता है, ऐसी अवस्था में ठंडे पानी से जल नेति करनी चाहिए। कुछ बूंदें देसी घी की नाक में डालने से भी लाभ होता है।
6. यदि कान की झिल्ली कटी है अथवा पीप बह रही है तो सूत्र नेति नहीं करनी चाहिए।
7. सूत्रनेति के पश्चात् जल नेति तथा कपाल भाति करनी चाहिए।

लाभ–नेति क्रिया करने से कफ की शिकायत दूर होती है। गले, नाक व कान के रोग दूर होते हैं। सर्दी, जुकाम, सिरदर्द, कान का बहरापन, नाक की हड्डी बढ़ना आदि रोग दूर होते हैं।

(ii) जल नेति–एक किलो पानी लेकर उसमें 10 ग्राम के लगभग सेंधा नमक मिला लें। पानी ज्यादा ठंडा अथवा ज्यादा गर्म नहीं होना चाहिए वरन् गुनगुना पानी लें। इस क्रिया के लिए टोंटी वाले लोटे का प्रयोग किया जाता है। जिस नाक में साँस चल रही हो उसे ऊपर करके लोटे की टोंटी को उसमें लगा दें। मुँह को खोल कर रखें जिससे सांस लिया जा सके।

जलनेति करते समय सिर को आगे की तरफ अधिक तथा कान की तरफ थोड़ा-सा कम झुकाना चाहिए। सिर को एक तरफ ज्यादा झुकाने से उस तरफ के कान में पानी जाने की संभावना बनी रहती है, जिससे कान में दर्द होने की संभावना बनी रहती है।

चित्र : जलनेति

जलनेति के पश्चात् भस्त्रिका प्राणायाम अवश्य करना चाहिए। थोड़ा आगे झुककर गर्दन को दायें-बायें, ऊपर-नीचे घुमाकर भस्त्रिका करें जिससे नाक पूरी तरह साफ हो जाए। नाक के अंदर किसी तरफ पानी रुका नहीं होना चाहिए।

लाभ–जलनेति के अभ्यास से मस्तिष्क संबंधी सभी रोग ठीक हो जाते हैं। बुद्धि तीव्र होती है। अनिद्रा रोग से मुक्ति मिलती है। इस क्रिया से आँख, नाक व गले के रोग ठीक हो जाते हैं। इस क्रिया से आँखों की रोशनी भी बढ़ जाती है।

(iii) धृतनेति–यह नेति घी से की जाती है। रात को सोते समय चारपाई पर लेटकर सिर को थोड़ा पीछे की ओर लटकाइए। ड्रापर अथवा छोटे चम्मच से नाक के दोनों छिद्रों में कुछ बूंदें गुनगुने घी की डालिए।
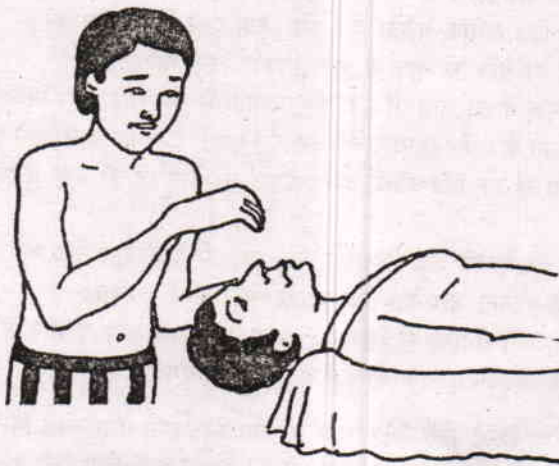
चित्र : धृतनेति

लाभ–इस क्रिया से नजला-जुकाम तथा अन्य कफ रोग दूर होते हैं। नेत्र विकार, बालों का सफेद होना, सिर दर्द आदि बीमारियों को दूर करने में घृतनेति काफी लाभप्रद मानी जाती है।

(iv) दुग्धनेति–नाक से दुग्ध पान करना ही दुग्धनेति है। इस क्रिया में लगभग आधा किलो गुनगुना दूध लिया जाता है। दूध को टोंटी वाले लोटे में भर कर लोटे को हथेली पर रखकर सीधे खड़े होकर, गरदन को थोड़ा पीछे झुकाकर टोंटी को नाक के उस छिद्र में लगाया जाता है जो छिद्र ज्यादा चल रहा होता है। साँस मुँह से लिया जाता है। दुग्ध नेति करते समय जल नेति की तरह दूध को बाहर नहीं निकाला जाता वरन् दूध को धीरे-धीरे पी लेते हैं।

चित्र : दुग्धनेति

लाभ–हठयोग प्रदीपिका में बताया गया है कि यह क्रिया नेत्र की ज्योति बढ़ाने वाली तथा गले के ऊपर के समस्त रोगों को दूर करने वाली है।

2. धौति क्रिया
(Dhauti)

आमाशय के शुद्धिकरण के लिए जो विधि अथवा क्रिया अपनाई जाती है उसे धौति क्रिया कहा जाता है।

धौति शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की 'धौत' धातु से हुई है जिसका अर्थ है धोना अर्थात् स्वच्छ करना। धौति क्रिया कई प्रकार की होती है–

(i) वमन धौति–यह विधि प्रातःकाल शौचादि से निवृत्त होने के पश्चात् की जाती है। गुनगुने पानी में नमक डालकर जितना पानी आप पी सकते हैं उतना पानी पी लें। फिर थोड़ा-सा नीचे झुककर बाएँ हाथ की बीच की दो उंगलियों को मुँह में डालकर गले से स्पर्श करें। ऐसा करने से उल्टी होगी तथा पानी बाहर निकल आयेगा। इस प्रकार उंगलियों के स्पर्श से पूरा पानी बाहर निकाल दें। इस क्रिया में अधिक नीचे की ओर झुकना नहीं चाहिए। इस क्रिया को बाघी क्रिया भी कहते हैं।

चित्र : वमन धौति

लाभ–वमन धौति से आमाशय में स्थित कफ, पित्त तथा रात का बिना पचा हुआ अन्न बाहर निकल जाता है। कफ, धाँस, दमा तथा अम्लपित्त में यह क्रिया बहुत लाभदायक है। ज्वर में भी इस प्रक्रिया से प्रकुपित पित्त बाहर निकल आता है। सिर में चक्कर आना आदि विकार शांत होते हैं। इस क्रिया को प्रतिदिन नहीं वरन् सप्ताह में एक दफा करना चाहिए।

(ii) वस्त्र धौति–यह क्रिया कपड़े से की जाती है। इस क्रिया के लिए लगभग 22 फुट लम्बी तथा तीन चार इंच चौड़ी मलमल की पट्टी ली जाती है। पट्टी को दूध अथवा ग्लूकोस के पानी में भिगो कर उकड़ू बैठ कर वस्त्र धौति के एक सिरे को निगलना आरम्भ करें। इस क्रिया में पहले दिन ही सारी पट्टी निगलने का प्रयास न करें। आराम से जितनी पट्टी निगल सकते हैं उतनी ही निगलें। धीरे-धीरे अभ्यास से सारी पट्टी निगलने में आप समर्थ हो जाएँगे। निगलने के पश्चात् खड़े होकर 90° पर झुककर पट्टी को धीरे-धीरे बाहर निकालें–

चित्र : वस्त्र धौति

सावधानियाँ–

1. वस्त्र धौति क्रिया करते समय पट्टी को दाँतों से न दबाएँ।
2. इस क्रिया को स्वयं आरंभ करने से पूर्व किसी अनुभवी योगी से इसे सीखें।
3. यह क्रिया करते हुए पूर्ण पट्टी नहीं वरन् कम से कम एक फुट वस्त्र बाहर रखें।
4. वस्त्र धौति की पट्टी निगलने के पश्चात् लगभग 20 मिनट के पश्चात् उसे निकाल दें। अन्यथा पट्टी का अगला हिस्सा आमाशय के अंतिम द्वार तक पहुँचकर वहाँ पच सकता है। जिससे हानि होने की संभावना रहती है।
5. जिन्हें अत्यधिक खट्टी डकारें आती हों अथवा आमाशय में किसी प्रकार का अल्सर हो उन्हें यह क्रिया नहीं करनी चाहिए।
6. धौति क्रिया को प्रभावशाली बनाने के लिए, धौति निगलने के पश्चात् खड़े होकर धौति को दाएँ-बाएँ घुमाएँ।
7. यह क्रिया भी प्रतिदिन नहीं करनी चाहिए। आरंभ में अभ्यास के कारण इसे प्रतिदिन किया जा सकता है परन्तु बाद में कुछ मास के अंतर से यह क्रिया करनी चाहिए।

लाभ–

1. वस्त्र धौति आमाशय की भित्तियों के ऊपर आए हुए श्लेष्मा के आवरण को हटा देती है, जिससे पाचक रस का निर्माण होता है तथा भूख लगने लग जाती है।
2. यह क्रिया कफ रोगियों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है।
3. जीर्ण जठर शोथ में भी इसका अभ्यास उत्तम है।

(iii) गजकरणी अथवा कुंजर-क्रिया–जो व्यक्ति धौति क्रिया नहीं कर सकते, वे कुंजर क्रिया करके आमाशय को शुद्ध कर सकते हैं। इस क्रिया में जल एक साथ बाहर निकलता है। गज अथवा कुंजर हाथी को कहा जाता है। जैसे हाथी अपनी-अपनी सूँड में सारा पानी भरकर उसे एकदम बाहर निकाल देता है। इसमें भी सारा पानी बाहर निकाल दिया जाता है। इसीलिए इस क्रिया को गजकरणी अथवा कुंजर-क्रिया कहा जाता है।

इस क्रिया में व्यक्ति जितना जल पी सकता है, पीता है। जल पीकर 90° पर कमर को झुकाइए। दाएँ हाथ की उँगली को गले में कंठ तक ले जाकर रगड़ें तथा बाएँ हाथ को नाभि के ऊपर जमा दें। जब पानी बाहर निकलना आरम्भ हो जाए तो बाएँ हाथ से पेट अंदर दबाएँ तथा दाएँ हाथ की उँगली को बाहर निकाल लें। दो तीन दफा करने से सारा पानी बाहर निकल आएगा।

सावधानियाँ–

1. प्रातःकाल शौच आदि से निवृत्त होकर खाली पेट यह क्रिया की जानी चाहिए।
2. इस क्रिया के दो तीन घंटे पश्चात् ही स्नान करना चाहिए।
3. इस क्रिया में सीधे खड़े होकर पानी नहीं निकालना चाहिए। ऐसा करने से हानि की संभावना बनी रहती है।
4. उच्च रक्त चाप, हृदय रोगी, आँतों की निर्बलता, अल्सर के रोगियों को यह क्रिया नहीं करनी चाहिए।

लाभ–

1. इस क्रिया से आमाशय में स्थित कफ, पित्त तथा बिना पचा हुआ अन्न बाहर निकल जाता है। ज्वर में भी प्रकुपित पित्त बाहर निकल आता है।
2. सिर में चक्कर आना आदि विकार शांत होते हैं।

(iv) दण्ड धौति–इसके लिए पतले मुलायम सूत के धागों को बटकर दण्ड के समान मोटी लगभग 12" इंच लम्बी रस्सी बनाते हैं। सूत को बटते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि रस्सी ज्यादा सख्त न हो जाए। प्रातःकाल व्यायाम करने से पहले नमक युक्त पानी के एक दो गिलास पी लें। सामने झुककर खड़े हो जाएँ। रस्सी का टुकड़ा मुँह में डालकर उसे आमाशय तक पहुँचाएँ। दूसरा सिरा बाहर रहता है। आमाशय में रस्सी पहुँचने पर सारा पानी बाहर निकल जाता है तथा आमाशय की सफाई हो जाती है।

सावधानियाँ–सूत के धागे की रस्सी को खींच कर देख लें। पेट में रस्सी टूट न जाए।

लाभ–आमाशय की सफाई के लिए यह क्रिया बहुत लाभदायक है।

(v) वारिसार धौति–वारिसार धौति क्रिया में एक मीटर लम्बी तथा छह मिली मीटर मोटी मुलायम रबड़ की नली लेते हैं। प्रयोग में लाने से पहले इसे पानी में उबालकर कीटाणु रहित कर लेते हैं। नली के जिस भाग को मुँह में ले जाना है उसे पत्थर पर घिस लें। इसके पश्चात् उकड़ू बैठकर नली का एक हिस्सा धीरे-धीरे मुँह से आमाशय तक उतारते हैं। नली का एक हिस्सा बाहर रहता है। आमाशय में नली पहुँचते ही साइफन क्रिया द्वारा पानी स्वतः बाहर आने लगेगा। धीरे-धीरे सारा पानी बाहर आ जाता है।

सावधानियाँ–

1 आमाशय में नली उतारते समय उसका बाहर वाला हिस्सा उंगली से बंद रखें। पेट को दबाते समय उंगली हटा लें। इससे साइफन आसानी से बन जाता है।
2. यदि नली डालते समय उल्टी हो जाए तो नली को निकाल दें।
3. नली मुँह में उतनी नीचे डालें, जिससे वह आमाशय तक पहुँच जाए।
4. प्रयोग से पहले नली को कुछ देर गुनगुने पानी में रखें जिससे नली मुलायम हो जाए।

लाभ–

1. इस क्रिया से आमाशय की सफाई हो जाती है।
2. यह क्रिया कफ, वात व पित्त के रोग दूर करती है।

सभी प्रकार की धौति क्रियाओं से लाभ

धौति क्रिया का साधारण अर्थ है धोना अर्थात् साफ करना। गले तथा भोजन नली व आमाशय को धोकर साफ करना।

धौति क्रिया का कोई भी रूप अपनायें। इसके निम्नलिखित लाभ हैं–

1. इस क्रिया से चेहरा कान्तिमान् होता है। आँखों, नाक, गले के विकार दूर होते हैं।
2. खाँसी, कब्ज, श्वेत कुष्ठ, दमा, श्वास आदि रोगों में भी यह क्रिया लाभ पहुँचाती है।
3. वात, पित्त, कफ जो शरीर की अधिकांश बीमारियों के कारण होते हैं, धौति क्रिया की किसी भी विधि को अपनाने से उनके कारण होने वाले रोगों में लाभ पहुँचता है।
4. धौति क्रिया से मधुमेह रोग दूर हो जाता है।

3. बस्ति क्रिया (Basti)

आँतों की सफाई करके मल द्वारा शरीर के विजातीय द्रव्य को बाहर निकालने की प्रक्रिया को बस्ति क्रिया कहते हैं।

(i) जल बस्ति क्रिया–नाभि तक जल में खड़े होकर अथवा एक हाथ गहरे पानी में (स्वच्छ पानी टब में भरा जाता है।) उत्कटासन में बैठकर, गुदा में रबड़ अथवा पतली बांस की नली लगाकर, (नली की लंबाई छह अंगुल व मोटाई चार सूत होनी चाहिए) उड्डियान बंध करते हुए पानी को बड़ी आंत में चढ़ाकर, फिर पेट को हिलाकर नौलि क्रिया करके पानी को गुदा द्वारा बाहर निकाल देने की प्रक्रिया को जल बस्ति क्रिया कहते हैं।

आजकल रबड़ का एक सस्ता व छोटा सा यंत्र आता है जिसके बीच में रबड़ का ब्लैडर तथा दोनों तरफ रबड़ की नली होती है। एक तरफ की नली को पानी में डालते हैं तथा दूसरे भाग की नली को मल द्वार में लगभग दो इंच डालते हैं। ब्लैडर को बार-बार दबाने से पानी अपने आप आंतों में जाने लगता है। जब पानी पेट में चला जाए तो नली को निकाल लें। 5-10 मिनट के पश्चात् शौच जाने पर आंत की सफाई अच्छी तरह से हो जाती है।

यह क्रिया थोड़ी कठिन है तथा लगातार अभ्यास द्वारा ही की जा सकती है, इसलिए आजकल एनीमा द्वारा ही अंदर के मल को बाहर निकाला जाता है।

सावधानियाँ–

1. नली का सिरा पैना नहीं होना चाहिए।
2. नली का कुछ भाग मल द्वार से बाहर रहना चाहिए।
3. क्रिया के अंत में मयूरासन लगाना चाहिए जिससे आंतों में बचा हुआ पानी बाहर निकल आये।

लाभ–

1. पेट साफ होता है तथा पेट के सभी प्रकार के रोग ठीक होते हैं।
2. बड़ी आँत साफ होती है तथा उसकी शक्ति बढ़ती है।
3. भूख बढ़ती है, शरीर हल्का तथा मन प्रसन्न रहता है।

(ii) पवन बस्ति–इस क्रिया में जल बस्ति की तरह नली की सहायता से जल के स्थान पर वायु को अंदर खींचते हैं। फिर न्यौली क्रिया करके खड़े होकर दोनों हथेलियों को घुटनों पर रखकर आगे झुककर उड्डियान बंध द्वारा पेट को दबाते हैं, जिससे पेट की वायु बाहर निकल जाती है।

(iii) शंख प्रक्षालन क्रिया–हमारी आँत की आकृति शंखाकार है। उस शंखाकार आँत को शुद्ध करना ही शंख प्रक्षालन कहलाता है। जिस प्रकार शंख के मुँह में पानी डालने पर पानी चक्राकार मार्ग से होता हुआ, नीचे से बाहर निकल आता है। उसी प्रकार मुँह से जल पीने पर, इस क्रिया द्वारा पानी आमाशय आंतों आदि से होता हुआ गुदा द्वार से बाहर आ जाता है, इसीलिए इसे शंख प्रक्षालन क्रिया कहते हैं।

हमारा शरीर एक यंत्र है जिसकी सफाई की ओर हम बहुत कम ध्यान देते हैं। हम वाद्य यंत्रों, गाड़ी, घड़ी व अन्य मशीनों की समय-समय पर सफाई करवाते रहते हैं। प्रतिदिन वस्त्रों को साफ करते हैं। यदि एक दिन भी वस्त्र नहीं धोए जाएँ तो वस्त्र मैले हो जाते हैं। हमारे उदर में भी लगभग 32 फुट लम्बी आंत है, उसकी सफाई हम जिंदगी में कभी नहीं करते जो कि करनी चाहिए। शरीर रूपी यंत्र की भी साफ-सफाई तथा ओवर हालिंग करनी बहुत अनिवार्य है, जिससे यह यंत्र स्वस्थ, दीर्घायु तथा बलिष्ठ बने।

शंख प्रक्षालन क्रिया में प्रातःकाल के समय लगभग 5 लीटर पानी में नमक, सौंफ तथा इलायची डालकर उसे उबाला जाता है। पानी को पीने योग्य ठंडा किया जाता है। फिर कागासन में बैठकर दो तीन गिलास पानी पीकर सर्पासन, उर्ध्वहस्तोत्रासन, कटि चक्रासन तथा उदराकर्षण आसन करने के पश्चात् पानी पीजिए तथा फिर आसन करें। कुछ देर के पश्चात् आवश्यकता होने पर शौच के लिए जाना चाहिए। पहले मल, फिर पतला मल, फिर पीला पानी मल द्वार से बाहर निकलता है। इस क्रिया को तब तक दोहराते रहिए जब तक साफ पानी मल द्वार से बाहर न निकलने लगे। सामान्यतः पाँच छह बार शौच जाने पर साफ पानी बाहर निकलता है। जब साफ पानी निकलने लगे तब और पानी नहीं पीना चाहिए तथा दो तीन दफा शौच जाकर पेट में बचा पानी बाहर निकाल देना चाहिए।

इस क्रिया के 30-40 मिनट विश्राम करके खिचड़ी में यथेष्ट घी डालकर खाएँ। खिचड़ी में छिलके वाली मूंग की दाल का प्रयोग करें।

इस क्रिया से पूर्ण शरीर की शुद्धि हो जाती है। शुद्धि करने के पश्चात् जैसे गाड़ियों में ग्रिसिंग की जाती है वैसे ही शरीर की ग्रिसिंग खिचड़ी तथा घी से हो जाती है।

जो घी खाया जाता है, उससे आँत आदि सभी ग्रन्थियाँ कोमल हो जाती हैं। जब उन पर घी लग जाता है, तो दुबारा मल आदि उनसे नहीं चिपकते। खिचड़ी खाने के पश्चात् यदि संभव हो तो योग निद्रा कीजिए।

सावधानियाँ–

1. बिना किसी विशेषज्ञ की देख-रेख में यह क्रिया नहीं करनी चाहिए।
2. जिस दिन यह क्रिया करनी हो, उस रात भोजन नहीं करना चाहिए। कोई तरल पदार्थ लिया जा सकता है।
3. यदि आसमान में बादल छाये,हों तो भी यह क्रिया नहीं करनी चाहिए।
4. क्रिया करने वाले दिन शारीरिक परिश्रम से परहेज करना चाहिए।

5. ठंडे पानी से स्नान नहीं करें। स्नान बंद कमरे में गर्म पानी से करें।
6. 24 घंटे तक दूध अथवा दूध से बनी किसी वस्तु का प्रयोग न करें।
7. हृदय रोगी, उच्च रक्तचाप तथा हर्निया के रोगियों को भी यह क्रिया नहीं करनी चाहिए।
8. यह क्रिया प्रतिदिन के लिए नहीं वरन् महीने में एक बार अथवा अधिक से अधिक दो बार करनी चाहिए।
9. 12 वर्ष से कम आयु वाले बच्चों को भी यह क्रिया नहीं करनी चाहिए।

लाभ–

1. शंख प्रक्षालन से शरीर शुद्ध तथा निर्मल हो जाता है।
2. शरीर नीरोग, कांतिमान् तथा पुष्प के समान हल्का हो जाता है।
3. यह क्रिया पेट व गुदा के समस्त रोगों को दूर करती है।
4. सभी प्रकार के उदर रोग यथा–कब्ज, मन्दाग्नि, गैस, खट्टी डकार तथा बवासीर में यह क्रिया बहुत कारगर है।
5. मोटापा, मधुमेह, श्वास रोग, हृदय रोग, सिर दर्द, मुँह, गला तथा आँख के रोगों में भी यह क्रिया बहुत उपयोगी है।
6. स्त्रियों के मासिक धर्म संबंधी विकृतियों को दूर करती है, बालों का समय से पहले सफेद होना, चेहरे पर झुरियाँ पड़ना व काले धब्बे होना भी दूर करती है।
7. यह क्रिया आँत, गुर्दे, अग्न्याशय तथा तिल्ली संबंधी रोगों में भी लाभकारी है।

4. न्यौली अथवा नौलि (Nauli)

उड्डियान बंध लगाकर, पेट के अंतः बल से पेट सख्त करने से, पेट की मांसपेशियाँ उभार ले लेती हैं, इन्हीं मांसपेशियों को चक्की के समान बाएँ व दाएँ घुमाने की क्रिया को न्यौली क्रिया कहा जाता है।

दोनों पांवों में एक फुट का अंतर तथा पांवों को समानांतर रखकर खड़े हो जाएँ। दोनों हाथों को घुटनों के कुछ ऊपर जंघाओं पर रखें। पेट को ढीला रखते हुए दाँयें हाथ की हथेली पर जोर डालते हुए जांघों के ऊपर से घुटने की ओर लाएँ तथा न्यौली को दाँयीं ओर निकालने का प्रयास करें।

इसी प्रकार पेट को ढीला रखते हुए बाएँ हाथ की हथेली को जंघाओं पर दबाते हुए बाईं जंघा के ऊपर से घुटने की ओर लाएँ तथा बायीं न्यौली को निकालने का प्रयास करें। जब बायां हाथ नीचे की ओर जाए तो दाँयें हाथ को दबाये बगैर ऊपर ले आएँ। इस प्रकार दायीं ओर बार-बार करें। इससे चंद दिनों में दायीं तथा बायीं न्यौली निकलनी आरंभ हो जाएगी।
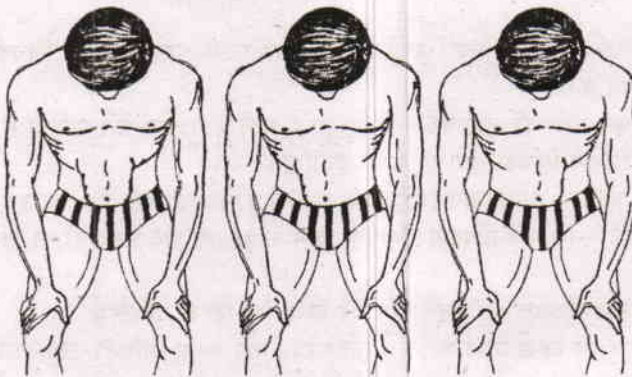
चित्र : न्यौली

दोनों हाथों को जंघाओं के ऊपरी भाग पर रख लें। दोनों हथेलियों से जंघाओं पर दबाव डालते हुए घुटनों तक हाथ ले जाएँ तथा पेट को ढीला रखते हुए बीच की न्यौली को निकालने का प्रयास करें। फिर हाथों को बिना जोर डाले ऊपर ले आएँ। यह क्रिया बार-बार करने से कुछ दिनों के पश्चात् मध्य न्यौली निकलनी आरम्भ हो जाएगी।

इस प्रकार न्यौली तीन प्रकार की मानी जाती है—मध्य, बाँईं व दाँईं न्यौली।

सावधानी–स्लिप डिस्क, हृदय रोग तथा अल्सर में इस क्रिया को नहीं करना चाहिए।

लाभ–

1. यह क्रिया मन्दाग्नि, कब्ज, गैस, अतिसार, संग्रहणी में बहुत लाभदायक है।
2. उदर का मोटापा तथा पेट के अन्य रोग निश्चित रूप से दूर होते हैं।
3. स्त्री रोग, कष्टार्तव आदि में लाभकारी है।
4. कुंडलिनी योग में प्राण-अपान का योग कराने वाली यह महत्त्वपूर्ण क्रिया है।
5. इस क्रिया से वात, कफ, पित्त तीनों प्रकार के दोष शांत होते हैं, पेट हल्का रहता है, भूख खूब लगती है। शरीर स्वस्थ तथा मन प्रसन्न रहता है।

5. कपाल भाति
(Kapal Bhati)

कपाल भाति शुद्धि की क्रिया है तथा प्राणायाम भी। लोहार की धौकनी के समान किसी भी आसन में बैठकर—पद्मासन, सुखासन, वज्रासन अथवा सिंहासन में बैठकर अपने श्वास को शांत करें। फिर पूरे जोर से नाक से साँस को बाहर फेंके, श्वास लेने का प्रयास न करें। पहले इस क्रिया को धीरे-धीरे करें फिर थोड़ी गति को बढ़ाकर जल्दी-जल्दी भी कर सकते हैं। ध्यान रहे कि श्वास को केवल बाहर फेंकना है।

इस क्रिया में नाक के एक छिद्र से पूरक कर बिना कुंभक किए, शीघ्रता से दूसरे नाक के छिद्र से रेचक करना होता है। इसी क्रिया को कपाल भाति कहते हैं। इस क्रिया को पूरक व रेचक क्रिया भी कहते हैं। पूरक व रेचक करने के लिए नाक छिद्रों को उंगली व अंगूठे की सहायता से बंद करना व खोला जाता है। यह क्रियाकलाप की शोधक होने के कारण भी इसे कपाल भाति कहा जाता है।

लाभ–

1. कपाल भाति से ध्यान की एकाग्रता बढ़ती है, क्योंकि इससे कपाल की नस-नाड़ियाँ शुद्ध होती हैं।
2. पाचन शक्ति ठीक रहती है तथा शारीरिक शक्ति बढ़ती है, जिससे शरीर में स्फूर्ति आती है।
3. इस क्रिया से इन्द्रियाँ वश में आती हैं तथा मन शान्त होता है।
4. सिर दर्द तथा तनाव से मुक्ति के लिए भी यह क्रिया बहुत उपयोगी है।
5. यह कुंडलिनी जागरण में भी सहायक है।
6. यकृत, आँत तथा अग्न्याशय आदि संपूर्ण पाचन तंत्र को शुद्ध करती है जिससे रक्त संचरण बढ़ता है।

सावधानी–हृदय रोगी, पीलिया व ज्वर से पीड़ित रोगियों को यह क्रिया नहीं करनी चाहिए।

6. त्राटक
(Trataka)

त्राटक ध्यान की एक विशेष प्रक्रिया है। इसमें ध्यान का मूल आधार एकाग्रता तथा उसका चरम लक्ष्य साधक, साधन तथा साध्य की त्रिपुटी का विलय।

हठयोग के ग्रंथों में त्राटक का विस्तृत वर्णन किया गया है। हठयोग प्रदीपिका के अनुसार

निरीक्षेन्निश्चलदृष्टिः सूक्ष्मलक्ष्यसमाहितः।
अश्रुसंपातपर्यन्तमाचार्यास्त्राटकं स्मृतम्।।

चित्र : त्राटक

अनन्य चित्त, निश्चल दृष्टि से सूक्ष्म लक्ष्य को अश्रुपात पर्यन्त निरीक्षण करने को ऋषियों ने त्राटक कहा है।

त्राटक करने के कई विधान हैं तथा उनके अलग-अलग गुण भी हैं। त्राटक में दृष्टि केन्द्रित करने के लिए लक्ष्य के रूप में कोई भी वस्तु ली जा सकती है जैसे दीपक की लौ, फूल, इष्ट देवता की मूर्ति, चन्द्रमा, तारे, दीवार पर कोई बिन्दु अथवा निशान आदि।

इस क्रिया में पद्मासन, सिंहासन अथवा सुखासन जिसमें भी साधक को सुविधा लगे बैठता है। फिर ऊपर वर्णित किसी भी चिह्न को 3-4 फुट की दूरी पर आँखों के समानांतर दीवार पर लटका देता है। सरसों के तेल अथवा शुद्ध घी के दीपक को भी सामने रखा जा सकता है। दीपक ऐसे स्थान पर रखें जहाँ उसकी लौ हवा में डगमगाए नहीं।

ऐसा करने के पश्चात् साधक सहज भाव से उत्तेजना रहित होकर अपलक दृष्टि से देखता है। जब आँखों में जलन होने लगे अथवा पानी आ जाये तो आँखें बंद कर लें। त्राटक करते समय दृष्टि तथा ध्यान दोनों उसी पदार्थ में रहे तभी त्राटक में सफलता मिलती है।

धीरे-धीरे अभ्यास होने पर साधक काफी समय तक एकाग्र चित्त हो सकता है। यह क्रिया करते समय आँखों को ज्यादा फाड़कर नहीं देखना चाहिए। आँखें हल्की सी खुली रखनी चाहिएँ, जिससे आँखों की मांसपेशियाँ ढीली रहेंगी।

त्राटक करते समय दृष्टि तथा ध्यान सूक्ष्म बिन्दु पर एकाग्र करने का अभ्यास करना चाहिए तभी त्राटक में सफलता मिलेगी।

इस क्रिया में पूर्ण सिद्धि हेतु किसी अनुभव सिद्ध गुरु से मार्ग दर्शन ग्रहण करना चाहिए।

लाभ–

1. त्राटक से मन की चंचलता समाप्त हो जाती है, जिससे यौगिक भूमियों में प्रवेश सरलता से किया जा सकता है।
2. इस क्रिया से नेत्र संबंधी सभी प्रकार के रोग दूर हो जाते हैं तथा नेत्रों की ज्योति बढ़ती है।
3. सायंकाल दीपक पर त्राटक करने से सपने नहीं आते तथा यदि आते भी हैं तो अल्प मात्रा में। त्राटक से गहरी निद्रा आती है। जब गहरी नींद आ जाएगी तो सपने अच्छे अथवा बुरे अपने आप ही समाप्त हो जाएँगे।
4. चित्तवृत्ति सूक्ष्म लक्ष्य में स्थिर होती है। साधक दृढ़ संकल्प वाला बनता है। मन में एकाग्रता व स्थिरता आती है।
5. इस क्रिया से साधक दूसरों के हृदय के भावों को जान सकता है।
7. मन की एकाग्रता बढ़ जाने के कारण पढ़ने-लिखने की कार्य क्षमता भी बढ़ जाती है।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि षट्कर्म शरीर तथा बुद्धि के लिए सबसे उत्तम साधन हैं। इस क्रिया से शरीर की संपूर्ण शुद्धि हो जाती है। शरीर विकार रहित होकर बलिष्ठ बनता है। शरीर में स्फूर्ति बढ़ती है। यदि शरीर में कोई विकार नहीं है तो शरीर सुगन्धित पुष्प के समान रहेगा। इस क्रिया से मानसिक तनाव कम होता है तथा कुछ समय के पश्चात् अभ्यास करने से मानसिक तनाव पूरी तरह समाप्त हो जाता है।

त्राटक क्रिया से किसी भी पदार्थ विशेष की ओर ध्यान केन्द्रित करने की क्षमता बढ़ती है। इस क्रिया से साधक अपनी कुंडलिनी जागृत करने में सफल हो सकता है।

अन्त में साधक चक्रों को उत्तेजित कर अपने परम लक्ष्य—परमपिता परमेश्वर से मिलन के लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है।

अन्ततः साधक का परमपिता से मिलन हो जाता है। आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है तथा साधक आवागमन के चक्र से सदैव के लिए मुक्त हो जाता है।

?

सम्भावित प्रश्न

1. यौगिक षट्कर्म से क्या अभिप्राय है? संक्षेप में इनकी व्याख्या करें।
   (What do you mean by "Yogic Shatkarmas"? Define in brief.)
2. नेति से क्या अभिप्राय है? नेति के प्रकार बताइए।
   (What do you mean by "Neti"?)
3. धौति क्रिया किसे कहते हैं? इस क्रिया के लाभ बताइए?
   (What do you mean by "Dhauti"?)
4. बस्ति क्रिया से क्या अभिप्रायः है? इस क्रिया के लाभ बताइए।
   (What do you mean by "Basti"?)

◆◆◆

12

योग शिक्षा
[Yoga Education]

❖ क्षेत्र, कार्य तथा उद्देश्य
(Scope, Functions and Aims)

योग का व्यक्ति के जीवन में बहुत महत्त्व है। व्यक्ति का सर्वांगीण विकास हो इसके लिए योग एक महत्त्वपूर्ण साधन है। योग-साधना एक ऐसी सरल तथा सफल साधना है जिसके द्वारा व्यक्ति का विकास ही नहीं वरन् सारे समाज, राष्ट्र तथा अन्त में सारी मानवता का कल्याण हो सकता है। यदि व्यक्ति अच्छा है, ईमानदार है, चरित्रवान् है, कर्त्तव्यनिष्ठ है तो समाज भी ऐसा ही बनेगा। यदि समाज अच्छा है तो राष्ट्र अच्छा होगा। यदि सभी राष्ट्र अच्छे हैं तो विश्व अच्छा होगा। युद्ध तथा आतंकवाद का भय समाप्त हो जायेगा। विश्व में स्थायी शांति की स्थापना हो जाएगी तथा सारे विश्व का कल्याण होगा।

यदि सभी व्यक्तियों के लिये योग-शिक्षा की व्यवस्था सभी के लिए उपलब्ध हो तो यह मानव कल्याण के लिए एक विशिष्ट भूमिका निभा सकती है।

योग के महत्त्व के बारे में हमारे देश के कर्णधारों को जानकारी हुई। शिक्षा नीति बनाने वाले अधिकारियों को हमारे देश में योग का क्या महत्त्व है? इसका ज्ञान हुआ। परिणामस्वरूप योग के इसी व्यापक महत्त्व एवं उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए योग को पाठ्यक्रम में एक अनिवार्य विषय बनाने की बात जोर पकड़ती जा रही है।

पिछले दिनों पतंजलि योग विद्या पीठ की स्थापना के अवसर पर भारत के उपराष्ट्रपति श्री भैरोसिंह शेखावत, उत्तरांचल के मुख्यमंत्री श्री नारायण दत्त तिवारी तथा अन्य उच्च अधिकारियों तथा पूंजीपतियों की उपस्थिति योग साधना के पीछे उनकी रुचि का परिचायक है।

योग हमारे व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन की पूर्णता के लिए आवश्यक तथा उपयोगी है। इसलिए इसे ठीक प्रकार से समझने जानने, क्रियाओं का क्रियात्मक ज्ञान तथा उसमें निहित आवश्यक सावधानियों तथा लाभों की पूरी जानकारी प्राप्त करना तथा विद्यार्थियों के समक्ष इन्हें रखना तथा उन्हें योग-क्रियाओं के लिए प्रेरित करना बहुत आवश्यक है। योग साधना से विद्यार्थियों का शारीरिक तथा मानसिक विकास संभव हो सकता है।

योग शिक्षा विद्यार्थियों के हित में है। योग शिक्षा विद्यार्थियों में एकाग्रचित्तता पैदा करेगी, जिससे वे पढ़ाई में ज्यादा ध्यान देने में सफल होंगे। परन्तु विचारणीय प्रश्न यह है कि योग-शिक्षा का क्षेत्र, कार्य व्यापार तथा उद्देश्य क्या निश्चित किए जाएँ। किस वर्ग के विद्यार्थियों के लिए योग शिक्षा अनिवार्य की जाए तथा कितना समय इस कार्य के लिए प्रदान किए जाए। कुछ ऐसे ही महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर हम चर्चा करने का प्रयास करेंगे जिससे विद्यार्थियों, अध्यापकों तथा शिक्षा से जुड़े अन्य सदस्यों को भी योग की क्रियाओं का लाभ प्राप्त हो सके।

❖ योग शिक्षा का क्षेत्र
(The Scope of Yoga Education)

अध्ययन सामग्री के किसी भी विषय के क्षेत्र की जब चर्चा की जाती है तो उस विषय के विशेषज्ञों के समक्ष विचार करने के लिए दो महत्त्वपूर्ण बिन्दु होते हैं, जिन पर गहन चर्चा होती है तथा गहन विचार-विमर्श के पश्चात् ही उस विषय के संबंध में निर्णय लिया जाता है। उस विषय की अध्ययन सामग्री पर भी चर्चा होती है।

ये महत्त्वपूर्ण विन्दु जिन पर गहन विचार-विमर्श तथा गहन चर्चा होती है वे हैं–

1. उस विषय के अध्ययन के अंतर्गत क्या-क्या शामिल किया जाए अर्थात् अध्ययन सामग्री क्या हो?
2. उस विषय की उपयोगिता-सैद्धांतिक आधार पर तथा व्यावहारिक आधार पर क्या होगी?

योग विषय भी अन्य विपयों की तरह कक्षाओं में पढ़ाया जाये–Theory तथा Practical रूप में।

जहाँ तक योग का संबंध है इसके उपयोग का क्षेत्र वहुत व्यापक है। इसे कुछ सीमाओं में बाँधना संभव नहीं है। विद्यार्थियों के हितों को ध्यान में रखते हुए पाठ्यक्रम निर्धारित करना आवश्यक है। इसलिए योग शिक्षा के अंतर्गत निम्न विषय-वस्तु हो सकती है–

1. योग से अभिप्राय, योग क्या है, विभिन्न धर्मों के आचार्यों के विचार।
2. योग की व्यक्तिगत तथा सामाजिक दृष्टि से उपयोगिता।
3. योग के विभिन्न प्रकार
4. योग से संबंधित प्राचीन पुस्तकों तथा ग्रंथों की जानकारी।
5. अष्टांग योग के सभी अंगों की सैद्धांतिक तथा क्रियात्मक जानकारी।
6. यौगिक क्रियाएँ तथा यौगिक आहार। जिससे शरीर सुंदर तथा शक्तिशाली बन सके।
7. मानसिक विकास के लिए यौगिक क्रियाओं की जानकारी।
8. शारीरिक, मानसिक विकास के साथ-साथ आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति। अर्थ, काम, धर्म तथा सबसे **महत्त्वपूर्ण मोक्ष की प्राप्ति**। आत्मा का परमात्मा से मिलन।

योग शिक्षा की उपयोगिता : प्रयोग की दृष्टि से इसका क्षेत्र–

योग शिक्षा के क्षेत्र की बात यदि योग से उठाए जाने वाले लाभों के संदर्भ में की जाए तो यह एक सार्वभौमिक सत्य है कि योग का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है तथा एक दृष्टि से सीमाहीन है। व्यक्तिगत कल्याण केवल आर्थिक उपयोग की सीमाओं को लांघ कर आत्मिक उत्थान तथा परमपिता परमेश्वर से मिलने की बात कहने लग जाए तो ऐसे स्थिति में उस विषय को किन सीमाओं में बाँधा जा सकता है। अनंत में लीन होने की अभिलाषा किस मानव में नहीं होती। परमपिता परमेश्वर में लीन होने के लिए ऋषि-मुनि, साधु-सन्त, योगी-भोगी सभी कितना प्रयास करते हैं। गर्भ-गृह के अंधकूप में कौन बार-बार उल्टा लटके रहना चाहेगा। अनन्त में विलीन होने के लिए जितने भी साधन बन पड़े, उतने ही थोड़े हैं।

योग विषय में मार्गों की कोई सीमा नहीं है। साध्य एक होते हुए भी साधन एक नहीं वरन् अनेक हैं।

योग जब सामाजिक मूल्यों की बात करता है तब भी उसका क्षेत्र काफी व्यापक बन जाता है।

रिश्वत, बेईमानी, भ्रष्टाचार, अनैतिकता आदि से समाज आज आक्रान्त है।

निठारी काण्ड जहाँ बच्चों का यौन शोषण तथा उनकी हत्या करके अंगों को काटना तथा उन्हें खाना दानव वृत्ति से भी वीभत्स है। पैसे की लालच में मानव इतना अंधा कि इन बच्चों के अंगों की तस्करी करने में भी उनकी की आत्मा उन्हें नहीं कोसती।

ऐसे दूषित समाज में यदि कोई आशा की किरण शेष रह जाती है तो वह केवल योग है।

योग मन तथा शरीर की शुद्धता तथा पवित्रता से जनमानस तथा समाज के लिए प्रेरक बन सकता है। एक-एक अच्छे व्यक्ति से जुड़ते हुए ऐसे समाज की कल्पना की जा सकती है, जहाँ शांति, समानता, भाई-चारे तथा प्रेम की समरसता प्रवाहित हो सके। जहाँ कोई पुलिस अधिकारी किसी बंदी के शरीर को जलती सिगरेट से न दागे तथा जहाँ निठारी कांड जैसे जघन्य कांड न हों।

यह कहा जा सकता है कि योग द्वारा प्रदत्त शिक्षा की सामग्री, उसका कार्य क्षेत्र तथा उसके उद्देश्य अत्यन्त व्यापक हैं जिनमें जन-जन की सर्वांगीण उन्नति (शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक) के साथ-साथ समाज, राष्ट्र तथा संपूर्ण विश्व की शांति तथा प्रगति संभव है।

योग-साधना कोई नवीन विषय नहीं है। इसके बीज अतीत में छुपे हुए हैं। यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि योग के तत्त्व सृष्टि के मूल में निहित हैं। भारतीय दर्शन तथा संस्कृति योग पर आधारित रही है

और आज भी है। भारतीय ग्रंथों में हमें पढ़ने को मिलता है कि हमारे ऋषि-मुनि हजारों सालों का स्वस्थ जीवन बिताते थे। शारीरिक तथा मानसिक रूप से हृष्ट-पुष्ट रहते थे। यह सब योग-साधना के कारण ही था।

योग हमारे जीवन का आधार है, जबकि वियोग जीवन से पलायन। जहाँ जीवन है, प्रगति तथा सम्पन्नता है, वहाँ योग है। जीवन की गति तथा प्रगति सभी तरह से अथाह है, सार्वभौमिक है, शाश्वत् सत्य है। योग की शिक्षा की अनिवार्यता, सार्वभौमिकता, विस्तृतता तथा व्यापकता को भी हमें स्वीकार करना है।

योग से ही हम व्यक्तिगत तथा सामाजिक, राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय कल्याण की आशा कर सकते हैं।

❖ योग शिक्षा के कार्य (Functions of Yoga Education)

योग शिक्षा के कार्य बहुत व्यापक हैं, जिसे सीमाओं में बांधना संभव नहीं है। योग मानव जीवन से संबंधित सभी पहलुओं से किसी न किसी रूप में जुड़ा हुआ है। योग शिक्षा ही सही अर्थों में जीवन को सही ढंग से जीने की कला है, शिक्षा है।

योग शिक्षा में निहित योग संबंधी ज्ञान तथा यौगिक क्रियाओं का संक्षिप्त वर्णन निम्नलिखित है–

❖ शारीरिक स्वास्थ्य तथा मानसिक विकास (Physical Health and Mental Development)

एक स्वस्थ शरीर में ही एक स्वस्थ मन हो सकता है। सुंदर, स्वस्थ तथा बलिष्ठ शरीर दूसरों को भी प्रभावित करता है।

योग शिक्षा द्वारा शारीरिक विकास तथा शारीरिक स्वास्थ्य की दिशा में निम्नलिखित कार्य निभाए जाते हैं–

1. योग की शिक्षा अथवा योग का ज्ञान रीढ़ की हड्डी तथा शारीरिक मांसपेशियों के उचित गठन, नियंत्रण तथा लचीला और शक्तिशाली बनाने में सहायता देता है।
2. हमारा शरीर विकारों से भरा हुआ है। वात, कफ, पित्त के कारण अनेक रोग शरीर में लगे रहते हैं। ऐसी स्थिति में शरीर से विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालने में यौगिक क्रियाएँ महत्त्वपूर्ण योगदान देती हैं।
3. योग शरीर के आंतरिक अवयवों तथा प्रणालियों को ठीक ढंग से सफाई करने में सहायता प्रदान करता है।
4. योग से रक्त-दबाव, हृदय-गति तथा शरीर का तापमान आदि को सामान्य तथा उपयुक्त बनाए रखने में सहायता मिलती है।
5. हमारे भोजन का शरीर पर बहुत प्रभाव पड़ता है। भाग-दौड़ की जिन्दगी में आहार भी भाग-दौड़ अर्थात् पैकेट बंद तथा जंकफूड हो गया है। शांति से बैठकर भोजन करने का समय ही नहीं है। ऐसी स्थिति में पाचन क्रिया का बिगड़ना स्वाभाविक है। योग पाचन क्रिया को ठीक प्रकार से नियंत्रित कर शरीर की आवश्यकता के अनुरूप ढालने में सहायता करता है।
6. यौगिक क्रियाएँ शरीर में विभिन्न रस द्रव्यों का निर्माण करने वाली विभिन्न ग्रंथियों को ठीक प्रकार से नियंत्रित कर उन्हें सजग तथा क्रियाशील बनाये रखने में सहायता प्रदान करती है।
7. योग से श्वास प्रक्रिया नियंत्रित होती है तथा श्वास स्थिर होता है।
8. फेफड़ों की शक्ति में वृद्धि करके योग रक्त-संचार तथा रक्त-शुद्धि के कार्य में भी सहायक होता है।
9. योग से ऐसी ऊर्जा तथा शक्ति प्राप्त होती है, जो शरीर को रोग के कीटाणुओं से लड़ने की शक्ति प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त शरीर को बदलते मौसम तथा वातावरण के अनुकूल ढालने की क्षमता भी योग से प्राप्त हो जाती है।

10. शरीर की थकावट दूर करने, नीरोग बनाने तथा रोग ग्रस्त होने पर उपयुक्त उपचार में भी यौगिक क्रियाओं से सहायता मिलती है।
11. शरीर की अनावश्यक चर्बी को घटाकर मोटापे को दूर करने अथवा कम करने में, शरीर को नीरोग, कांतिमान् तथा पुष्प के समान हल्का, सुंदर व सुगन्धित बनाने में योग के अतिरिक्त और कोई साधन नहीं है।

योग से शरीर स्वास्थ्य तथा दीर्घायु को प्राप्त करता है। जीवन की सभी क्रियाओं में स्वस्थ शरीर अति आवश्यक है। स्वस्थ शरीर के लिए योग सबसे उपयुक्त साधन है।

❖ मानसिक विकास (Mental Development)

स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का निवास हो सकता है। शरीर सुंदर है तो ही मन सुंदर हो सकता है। जीवन में तन तथा मन दोनों का स्वस्थ होना अनिवार्य है। योग जहाँ शरीर को स्वस्थ, बलिष्ठ तथा नीरोग रखता है, वहाँ मन को अच्छे कार्यों की ओर प्रेरित करता है। इसलिये योग शिक्षा मानव के शारीरिक विकास में ही नहीं वरन् मानसिक विकास में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

योग शिक्षा मानसिक विकास के लिए उचित पृष्ठभूमि ही तैयार नहीं करती वरन् उनका उचित पोषण भी करती है।

मानसिक विकास की दृष्टि से योग शिक्षा के कार्यों अथवा महत्त्व का निम्नलिखित आधार पर वर्णन किया जा सकता है—

1. यह कहावत केवल कहावत ही नहीं वरन् शाश्वत सत्य है कि 'स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का वास होता है।' योग शिक्षा जहाँ शरीर को सबल, सुंदर तथा हृष्ट-पुष्ठ बनाती है। वहाँ मन को सुंदर बनाती है। योग की क्रियाओं से तन मन दोनों सुंदर बनते हैं।
2. यौगिक क्रियाएँ शरीर के मल को तो बाहर निकालती ही हैं, मन के विकारों को भी समाप्त करती हैं। आधुनिक भौतिकवादी युग में पैसे की हवस बहुत बढ़ गई है। अधिकांश लोग तनाव में जीवन व्यतीत करते हैं। योग-शिक्षा तनावों को दूर करने का सबसे सरल उपाय हैं। योग मन को एकाग्र तथा संतुलित रखता है।
3. यम, नियम, ध्यान, धारणा, समाधि आदि क्रियाएँ मन की चंचलता पर अंकुश लगाती हैं। जब चित्तवृत्तियों पर नियंत्रण लग जाता है तो मन एकाग्र हो जाता है। एकाग्रता ध्यान को स्थिर रखने के लिए बहुत अनिवार्य है।
4. योग चिंतन, मनन तथा मानसिक शक्तियों का उचित पोषण एवं विकास करता है।
5. सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, स्वाध्याय आदि यौगिक क्रियाएँ व्यक्ति की कर्मेन्द्रियों को शांत करके ज्ञानेन्द्रियों को स्वस्थ, सबल तथा संवेदनशील बनाती हैं। इससे व्यक्ति की ज्ञान प्राप्त करने की लालसा बढ़ती है।
6. योग साधना से चित्तवृत्तियाँ निर्मल हो जाती हैं। एकाग्रता में वृद्धि होती है। परिणामस्वरूप व्यक्ति की तर्कशक्ति, स्मरणशक्ति तथा निर्णय करने की शक्ति में वृद्धि होती है। वह कल्पनाशील बनता है तथा उसमें निर्णय करने की शक्ति तथा प्रमाणों द्वारा निर्णय को लागू करवाने की क्षमता भी बढ़ जाती है।

मानसिक स्वास्थ्य तथा मन की शांति (Mental Health and Peace)

जैसाकि बार-बार कहा गया है कि वर्तमान भौतिकवादी युग में मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति बढ़ी है तो इसके साथ-साथ मानसिक तनाव तथा अशांति भी बढ़ी है। असंतोष बढ़ा है, बीमारियाँ बढ़ी हैं। ऐसी स्थिति में मानसिक स्वास्थ्य तथा मन की शांति के लिए कोई सरल उपाय बचा है तो वह केवल योग है।

मानसिक तनाव को दूर करने तथा मानसिक स्वास्थ्य तथा विकास की दिशा में योग शिक्षा द्वारा निम्न कार्य किए जा सकते हैं–

1. योग से चिंता, तनाव, संघर्ष व शिथिलता को दूर करके उपयुक्त मानसिक शांति व स्वास्थ्य प्राप्त कराने में मदद मिलती है।
2. ज्ञानेन्द्रियाँ सबल बनती हैं। उनकी संवेदना तथा ग्रहणशीलता में योग द्वारा वृद्धि होती है।
3. यौगिक क्रियाओं से स्नायु संस्थान, रीढ़ की हड्डी तथा मस्तिष्क स्वस्थ, सजग तथा पुष्ट बनता है तथा मानसिक स्वास्थ्य में वृद्धि होती है।
5. मानसिक व्याधियों तथा शारीरिक अस्वस्थता में योग द्वारा उपचार लाभप्रद होता है।

❖ सामाजिक विकास (Social Development)

योग शिक्षा से व्यक्ति की कायाकल्प हो जाती है। व्यक्ति चरित्रवान् बनता है। कर्त्तव्य-पालन की भावना बढ़ती है। यदि जन-जन में कर्त्तव्यनिष्ठा आ जाए, जन-जन चरित्रवान् बन जाए तो समाज, राष्ट्र तथा अन्त में सारे विश्व का कल्याण हो जाए। योग शिक्षा से व्यक्ति में सामाजिक कल्याण तथा विकास की भावनाएँ भी भरी जा सकती हैं।

सामाजिक विकास तथा उन्नति में योग शिक्षा निम्न आधार पर सहायक हो सकती है–

1. व्यक्ति समाज कल्याण के लिए तभी सहायक हो सकता है यदि वह स्वयं तन तथा मन से स्वस्थ है। योग तन तथा मन को स्वस्थ रखकर व्यक्तियों की कार्यक्षमता में वृद्धि करता है। व्यक्तियों की कार्यक्षमता में वृद्धि से अभिप्राय है समाज की भलाई तथा विकास।
2. योग राजसी तथा तामसी भोजन के स्थान पर सात्त्विक भोजन पर बल देता है। यह कहा जाता है–'जैसा अन्न वैसा मन'। सात्त्विक भोजन से आचरण तथा व्यवहार में सुधार होता है। योग सद् आचरण की प्रेरणा देता है। आज की युवा पीढ़ी पर देश का भविष्य निर्भर करता है। यदि वर्तमान युवा पीढ़ी सद् आचरण करने वाली होगी तो निश्चित रूप से भारत का भविष्य सुरक्षित है।
3. योग-शिक्षा भौतिक मूल्यों के स्थान पर नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों की स्थापना में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। योग-शिक्षा से समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर कर आदर्श सामाजिक व्यवस्था बनाई जा सकती है।
4. व्यक्ति की सबसे बड़ी बुराई स्वार्थ तथा अहंकार है। योग-शिक्षा दूर करके इन बुराइयों को व्यक्तियों में सहयोग तथा समायोजन की भावना भरती है।

अन्ततः योग-शिक्षा जहाँ व्यक्ति के कल्याण में सहायक है वहाँ सामाजिक कल्याण तथा विकास में भी सहायक है।

❖ नैतिक विकास (Moral Development)

योग शिक्षा नैतिक विकास में भी महत्त्वपूर्ण योगदान देती है। कहा जाता है कि यदि धन गुम हो जाए तो व्यक्ति धन फिर कमा लेगा। यदि उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं है तो वह जीवन में कुछ खोता है परन्तु चरित्र ही नहीं है तो उसने सब कुछ खो दिया है।

योग शिक्षा नैतिक विकास तथा संवेगात्मक विकास की दिशा में निम्नलिखित कार्य करती है–

1. योग सद् आचरण, संयम, इन्द्रिय-निग्रह की भावना मन में भरता है। उपयुक्त समय पर उपयुक्त कार्य करना तथा संवेगात्मक व्यवहार करने के गुण पैदा करता है।
2. आज सत्यप्रियता, कर्त्तव्यनिष्ठा, दया, सहानुभूति, प्रेम, शांति, सहयोग केवल पुस्तकीय शब्द रह गये हैं। वास्तविक जीवन में इनका कोई मूल्य नहीं है। यौगिक क्रियाओं से व्यक्ति में ये गुण पैदा ही नहीं होते वरन् वास्तविक जीवन में व्यक्ति इन्हें अपनाता भी है।

3. संवेगों पर उचित नियंत्रण तथा संवेगात्मक संतुलन बनाए रखने में भी योग-शिक्षा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।
4. भौतिकवाद ने व्यक्ति को भोग विलास का दास बना दिया है। इन्द्रिय-सुख ही वास्तविक सुख है। जेसिका कांड, मधुमति कांड, निठारी कांड जैसी न जाने कितनी घटनाएँ घटती हैं, जिनकी हमें जानकारी भी नहीं मिलती। व्यक्ति में ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, स्वार्थ, वैमनस्य, छलकपट, धोखाधड़ी, रिश्वत, बेईमानी, नशीले पदार्थों का सेवन, विषय-वासनाओं में आसक्ति तथा न जाने कितनी और बुराइयाँ बढ़ती जा रही हैं। इन सब बुराइयों को दूर करने का रामबाण उपचार है—योग। योग की शिक्षा से ही समाज में फैल रही बुराइयों से मुक्ति मिल सकती है।

❖ सांस्कृतिक विकास (Cultural Development)

किसी भी देश के उत्थान-पतन में उस देश की संस्कृति का बहुत योगदान होता है। भारत का गौरवमय इतिहास इस बात का प्रमाण है। भारत 'सोने की चिड़िया' के नाम से विख्यात था, जहाँ धन-धान्य की कोई कमी नहीं, आध्यात्मिक आधार पर विश्व गुरु। संस्कृति का पतन होता रहा, देश का पतन होता रहा। आज भारत की आधी से भी अधिक जनसंख्या गरीबी रेखा से भी निम्न जीवन जीने को विवश है तथा भारत विश्व समुदाय का कर्जदार है। ऐसी विकट स्थिति में रोशनी की मध्यम सी लौ नजर आती है तो वह केवल योग है।

योग-शिक्षा व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाने तथा सांस्कृतिक विकास की दिशा में निम्नलिखित कार्य कर सकती है—

1. योग शिक्षा सद् आचरण, संयम, नियम तथा इन्द्रिय-निग्रह आदि के माध्यम से उपयुक्त मानवीय मूल्यों को विकसित कर व्यक्ति को सुसंस्कृत बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकती है।
2. युवा वर्ग को विशेष रूप से योग संबंधी साहित्य तथा दर्शन आदि से परिचित करवा कर, अपनी संस्कृति को, जो पश्चिमी संस्कृति के कारण समाप्त होती जा रही है, जानने तथा पहचानने में सहायता मिल सकती है। युवा वर्ग को अपनी प्राचीन संस्कृति पर गर्व करने का अवसर तथा उसके मूल्यों को आत्मसात करने का अवसर मिल सकता है।
3. प्राचीन सांस्कृतिक विरासत को समझने, उसको सुरक्षित रखने, उसमें वृद्धि करने तथा उसे आगे पुनर्जीवित रखने में योग शिक्षा का महत्त्वपूर्ण योगदान हो सकता है।

❖ आध्यात्मिक विकास (Spiritual Development)

भारत आर्थिक आधार पर नहीं वरन् आध्यात्मिक आधार पर विश्व-गुरु माना जाता रहा है। विश्व के अनेक देशों के लोग ज्ञान प्राप्त करने के लिए भारत आते थे। भारत के साधु-सन्यासियों का संयमी जीवन, लम्बी आयु, जीवन के आदर्श उनके प्रेरणा स्रोत थे। धीरे-धीरे हम अपना गौरव भूलते चले गए। वर्षों तक वदेशियों द्वारा लूट तथा दासता के जीवन ने हमें आर्थिक आधार पर ही नहीं आध्यात्मिक आधार पर भी खोखला बना दिया।

योग-शिक्षा ही एक ऐसा उपाय नजर आता है जो व्यक्ति के आत्मिक उत्थान तथा आध्यात्मिक विकास की दिशा में निम्नलिखित कार्य सम्पन्न कर सकती है—

1. योग शिक्षा से स्थूल शरीर के अतिरिक्त सूक्ष्म शरीर के अस्तित्व का बोध संभव है। महत्त्व शरीर का नहीं आत्मा का है। शरीर तो जन्म लेता तथा मरता है परन्तु आत्मा अमर है। जैसे हम कपड़े बदलते हैं उसी तरह आत्मा शरीर बदलती है। स्थूल शरीर तो यहीं समाप्त हो जाता है, ऊपर सूक्ष्म शरीर ही जाता है।
2. सभी प्राणी उस परमपिता परमेश्वर के अंश हैं। इसलिए सभी से प्रेम करना चाहिए। छोटे-बड़े का भेदभाव भूल कर समता की भावना भरने में योग शिक्षा वहुत सहायक हो सकती है।

3. मानव जीवन में चार तत्त्व यथा–अर्थ, काम, धर्म तथा मोक्ष हैं। व्यक्ति के जीवन का अंतिम लक्ष्य है, परमात्मा के अस्तित्व में लीन होना, आवागमन के चक्र से मुक्त होना तथा गर्भ के अंधे कुएँ में उल्टे लटकने से छुटकारा प्राप्त करना। योग शिक्षा ही इस तथ्य का बोध करवा सकती है।
4. भोग विलास, विषय वासनाओं, भौतिक सुख-सुविधाओं से कभी शांति नहीं मिल सकती क्योंकि भौतिक सुख-सुविधाओं का कोई अंत नहीं। इच्छा, तृष्णा कभी पूरी नहीं होती। इच्छाओं की पूर्ति का अभाव दुःख तथा असंतोष देता है। इसलिए वास्तविक सुख तथा शांति भोग-विलास में नहीं है। योग शिक्षा भौतिक सुखों की अपेक्षा आध्यात्मिक सुखों पर अधिक बल देती है।
5. योग साधना के विभिन्न साधनों से परमात्मा से मिलन तथा आत्मिक आनन्द की प्राप्ति हो सकती है।

योग-शिक्षा के ऊपर वर्णित कार्यों से स्पष्ट होता है कि योग शिक्षा को सीमित दायरे में कैद नहीं किया जा सकता। शरीर के किसी एक ही अंग के विकास से सारे शरीर का विकास नहीं होता। एक अंग के विकास से तो शरीर की सुंदरता समाप्त हो जाती है। यदि पेट बहुत फूला हुआ है तथा हाथ-पाँव पतले-पतले हैं तो शरीर बेढंगा लगेगा। शरीर सुंदर, बलिष्ठ, सबल तथा प्रभावशाली तभी लगेगा यदि उसके सभी अंगों का विकास संतुलित ढंग से हो। इसी तरह योग शिक्षा का क्षेत्र अथवा कार्य एक नहीं अनेक हैं। योग शिक्षा शरीर के स्वास्थ्य तथा विकास के साथ-साथ मानसिक, शांति तथा मानसिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

यदि देश का प्रत्येक व्यक्ति तन तथा मन से स्वस्थ है, उसके जीवन में शांति है तो ही वह समाज के विकास में अपना योगदान दे सकता है। योग शिक्षा सामाजिक विकास संबंधी कार्य भी सम्पन्न करती है।

संवेगात्मक तथा नैतिक विकास के कार्य में यौगिक क्रियाएँ महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं। देश आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा तथा सम्मान व गौरव पुनः प्राप्त कर सकता है। यह केवल योग शिक्षा के माध्यम से ही संभव हो सकता है।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि योग शिक्षा का क्षेत्र तथा कार्य बहुत विस्तृत है। योग शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है।

❖ योग शिक्षा के उद्देश्य (Aims of Yoga Education)

योग शिक्षा को माध्यमिक विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों के छात्र, छात्राओं के लिए अनिवार्य किया जाना चाहिए। जिससे देश की युवा पीढ़ी का सर्वांगीण विकास हो सके। वे सत् चरित्र वाले बनें। उन्हें देश के गौरव की पहचान करवाई जाए जिससे विश्व में भारत को वही सम्मान तथा गौरव प्राप्त हो, जो उसे अतीत में प्राप्त था।

शिक्षा संस्थाओं में योग शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य हो सकते हैं–

1. योग साधना के माध्यम से विद्यार्थियों के आत्मिक तथा आध्यात्मिक विकास में सहायता करना।
2. विद्यार्थियों के शारीरिक विकास का मार्ग प्रशस्त करना।
3. युवा वर्ग को विभिन्न रोगों से ग्रसित न होने देना।
4. योग-साहित्य तथा योग-आचरण से उनमें अच्छे संस्कार डालना। युवा पीढ़ी को मानवीय मूल्यों का ज्ञान करवाना।
5. रोगों से ग्रसित न होने देना। रोग-ग्रस्त होने की दशा में यौगिक क्रियाओं से रोग-मुक्त होने के उपाय बताना।
6. युवा वर्ग की मानसिक शक्तियों के उपयुक्त विकास में सहायता प्रदान करना।
7. युवा पीढ़ी को मानसिक अशांति तथा तनाव मुक्त जीवन जीने की कला से परिचित करवाना।
8. यौगिक क्रियाओं से तन तथा मन को स्वस्थ तथा सुंदर बनाने के उपाय बताना।

9. विद्यार्थियों को भोग-विलास से दूर रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए शिक्षा प्राप्त करना।
10. विद्यार्थियों को संवेगात्मक रूप से स्थिर तथा सबल बनाने में सहायता करना।
11. विद्यार्थियों के नैतिक तथा चारित्रिक उत्थान में सहायता देना।

?

सम्भावित प्रश्न

1. योग शिक्षा से क्या अभिप्राय है? योग शिक्षा का उद्देश्य क्या है?
2. योग शिक्षा विद्यालयों में क्यों अनिवार्य होनी चाहिए।
3. योग शिक्षा से क्या अभिप्राय है? इसके कार्य लिखें।
4. शारीरिक विकास के लिए योग शिक्षा क्यों अनिवार्य है?

◆◆◆

13
योग : इतिहास के झरोखे से
[Yoga : Historical Perspectives]

भारत ऋषि मुनियों का देश है। प्राचीन काल में हमारे ऋषि मुनि हजारों साल का स्वस्थ जीवन व्यतीत करते थे। उनकी इतनी लम्बी आयु तथा स्वस्थ जीवन का रहस्य केवल योग था। योग की शक्ति से केवल उनका तन ही नहीं वरन् मन भी शुद्ध था। उनका अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण नियंत्रण था। वे भोग-विलास तथा विषय-वासनाओं से बहुत दूर रहते थे। अपवाद स्वरूप ही किसी संत महात्मा का मन चंचल होता था वरन् सुंदर से सुंदर अप्सराएँ भी उनकी समाधि को तोड़ने में सफल नहीं होती थीं। कामदेव भी उनसे पराजित हो जाता था।

निश्चित रूप से यह कहना अनुचित नहीं है कि भारत में योग का इतिहास बहुत पुराना है। भारत के धार्मिक ग्रंथ योगियों के योग की शक्ति के वर्णन से भरे पड़े हैं। योग भारत की प्राचीनतम विद्या है। भारत के धार्मिक ग्रंथों में कुछ ऋषियों का मत है कि योग-विद्या के जनक हिन्दुओं के सर्वमान्य देवता ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं। शिव की समाधि को तो कामदेव भी भंग नहीं कर सका था तथा शिव के तीसरे नेत्र की अग्नि से कामदेव भी भस्म हो गये थे। नारद ने भी काम पर विजय प्राप्त की थी। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि योग-विद्या सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही आरंभ हो गई थी।

भारतीय धार्मिक ग्रंथों में सबसे प्राचीन वेदों को माना जाता है तथा वेदों का रचियता ब्रह्मा जी को माना जाता है। चारों वेदों यथा--ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद में भी योग का उल्लेख मिलता है। वेदों में योग-विद्या का वर्णन इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि योग-विद्या आदि काल से है।

केवल वेदों में ही योग-विद्या का वर्णन नहीं है वरन् उपनिषद्, पुराण, गीता तथा स्मृति आदि में भी योग की महिमा का वर्णन किया गया है।

सबसे स्पष्ट तथा सटीक व्याख्या पतंजलि ने अपने ग्रंथ योगसूत्र में की है। हमारे सभी धार्मिक ग्रंथों में योग-शक्ति का किसी न किसी रूप में वर्णन अवश्य मिल जाता है। विभिन्न धार्मिक ग्रंथ अपने आपमें योग का एक पूर्ण इतिहास हैं।

❖ उपनिषदों में योग (Yoga in Upanishadas)

भारतीय धार्मिक ग्रंथों में वेदों के पश्चात् उपनिषदों को बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है। यदि यूँ कहा जाए कि उपनिषद्-युग को भारतीय चिंतन का स्वर्ण काल कहा जाता है तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

उपनिषद् काल में योग-चितन एक ठोस धरातल पर खड़ा दिखाई देता है। उपनिषदों में छांदोग्य और बृहदारण्यक उपनिषद् सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। इन उपनिषदों में योग के दो महत्त्वपूर्ण तत्त्वों यथा—प्राण और वायु पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। छांदोग्य उपनिषद् में ऋषि आरूणि तथा उनके पुत्र श्वेतकेतु में इसी पर विशद चर्चा होती है कि प्रकाश, जल तथा पृथ्वी का जन्म अनंत सत्ता से हुआ है तथा यही अनन्त सत्ता वायु है।

बृहदारण्यक उपनिषद् में राजा जनक के दरबार में ऋषि याज्ञवाल्क्य ज्ञान-चर्चा में इस बात पर बल देते हैं कि वायु ही विश्व की सबसे बड़ी सत्ता है। ऋषि याज्ञवाल्क्य जी यह भी स्वीकार करते हैं कि कोई ऐसी सत्ता भी है जो वायु से भी परे है।

छांदोग्य तथा बृहदारण्यक उपनिषदों में षट्कर्मों यथा—नेति, धौति, बस्ति, न्यौली, कपाल भाति तथा त्राटक क्रिया के साथ अष्टांग योग के यम तथा नियमों की भी सूत्र रूप में चर्चा की गई है। यद्यपि प्राणायाम का अलग से वर्णन नहीं है परन्तु प्राण की चर्चा करते समय प्राणायाम की धारणा का आभास मिल जाता है। इंगला, पिंगला, सुषुम्ना तथा कुंडलिनी नाड़ियों का भी इन उपनिषदों में वर्णन किया गया है।

यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उपनिषदों के रचियता ऋषिगण चिंतन के उच्चतम धरातल पर पहुँच चुके थे। शायद ये ऋषिगण योग-साधना के उच्चतम शिखर पर पहुँच चुके होंगे जब इन ग्रंथों की रचना हुई।

तैत्तिरीय तथा ऐतरेय उपनिषदों में भी योग की चर्चा की गई है। इन उपनिषदों में प्राण व अपान के साथ तप पर भी प्रकाश डाला गया है। उस युग में तप का बहुत महत्त्व था।

ईश, केन, कठ उपनिषदों में भी योग का वर्णन किया गया है। इन उपनिषदों में कर्मयोग पर गीता की तरह विशेष बल दिया गया है। गीता में भी कर्मयोग को श्रेष्ठ योग माना गया है। भगवद्‌गीता में कर्मयोग अपनी संपूर्णता को प्राप्त हुआ है।

कठोपनिषद् में यम तथा नचिकेता के मध्य वार्तालाप के माध्यम से योग पर सूक्ष्म रूप से प्रकाश डाला गया है। यम कुमार नचिकेता को इस तथ्य से अवगत करवाने का प्रयास करता है कि केवल अध्यात्म योग के द्वारा ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है।

आध्यात्मिक योग की व्याख्या रथ तथा उसके स्वामी के रूप में की गई है। शरीर को रथ माना गया है और आत्मा रथ की स्वामिनी है, बुद्धि सारथी है, मस्तिष्क लगाम है। इन्द्रियाँ रथ के घोड़े हैं। ये शरीररूपी रथ को लुभावने रास्तों पर चलती हैं। शरीररूपी रथ मोक्ष प्राप्त करना चाहता है परन्तु मोक्ष मिलना इतना सरल नहीं है। शरीररूपी रथ मोक्ष तभी प्राप्त कर सकता है यदि सारथी रूपी बुद्धि अश्वरूपी इन्द्रियों की लगाम कस कर रखे।

प्रश्न-उपनिषद् और मुंडक-उपनिषद् में भी योग-साधना का वर्णन किया गया है। इनमें यह बताया गया है कि योग साधना से रहस्यात्मक अनुभूति होती है।

मुंडक-उपनिषद् सबसे छोटा उपनिषद् है जिसमें केवल 12 मंत्र हैं। इस उपनिषद् में 'ॐ' की महिमा का वर्णन किया गया है। ॐ अनंत सत्ता का प्रतीक है। इसी तरह उपनिषदों में ऋषियों तथा तपस्वियों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से योग के महत्त्व का वर्णन किया है।

उपनिषदों में इस तथ्य को प्रकट करने का प्रयास किया गया है अथवा इस बात पर बल दिया गया है कि ज्ञान-चिंतन द्वारा परमात्मा के रहस्य को जानने वाले को ब्रह्मविद कहा जाता है।

इस तथ्य को उदाहरण के रूप में सिद्ध करते हुए तर्क दिया गया है कि जिस प्रकार अग्नि स्वयं काष्ठ में निहित है परन्तु अग्नि पैदा करने के लिए लकड़ियों की रगड़ अनिवार्य है। लकड़ियों के घर्षण के बिना अग्नि प्रज्वलित नहीं हो सकती। इसी तरह सत्य प्रत्येक मानव में निहित है परन्तु उसे जानने के लिए गहन चिंतन की आवश्यकता पड़ती है। गहन चिंतन के बिना मानव के अंदर के सत्य को नहीं जाना जा सकता।

श्वेताश्वतर उपनिषद् में आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार का वर्णन किया गया है कलान्तर में प्राणायाम तथा प्रत्याहार हठ योग तथा राजयोग के मुख्य विचार बिन्दु बने।

उपनिषदों में योग की महिमा अथवा महत्त्व पर विचार करते हुए यह कहा जा सकता है कि सभी उपनिषदों में योग का किसी न किसी रूप में वर्णन किया गया है। योग-साधना में किसी उपनिषद् में एक तत्त्व का महत्त्व दर्शाया गया है तो दूसरे में किसी अन्य तत्त्व का महत्त्व दर्शाया गया है।

कर्मयोग, भक्ति योग, ज्ञान योग, अध्यात्म योग। योग के अनेक रूप तथा साधन हैं। साधक किसी भी साधन को अपना कर अपने अंतिम लक्ष्य अर्थात् आत्मा को परमात्मा में लीन करने को प्राप्त कर सकता है।

सभी उपनिषदों में योग का गहराई से चिंतन हुआ है।

साधारण शब्दों में यह कहा जा सकता है कि योग आत्म-विद्या का बीज है। उसकी साधना से चेतना पर छाया जो आवरण है, वह दूर होता है।

योग केवल आसन-प्राणायाम ही नहीं है। आसन प्राणायाम से शरीर स्वस्थ तथा शक्तिशाली बनता है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन रहता है। स्वस्थ मन में निर्मल भावना का विकास होता है। भावना की निर्मलता ध्यान को स्थिर बनाती है। स्थिर ध्यान से आत्मा अनावृत होती है।

चेतना को अनावृत बनाने के लिए अनिवार्य है—शरीर की सुखपूर्वक स्थिरता। यह सब योग से ही संभव हो सकता है।

❖ भगवद् गीता में योग (Yoga in Bhagavad Gita)

भगवान् श्रीकृष्ण को महान् योगी माना जाता है। श्रीमद् भगवद्गीता को मानव चिंतन की एक महान् तथा अद्भुत उपलब्धि माना जाता है। कुरुक्षेत्र के मैदान में जब अर्जुन का रथ दोनों सेनाओं के मध्य पहुँचता है और अर्जुन अपने समक्ष गुरु द्रोणाचार्य, भीष्म तथा अन्य सगे संबंधियों को देखता है तो वह मोहग्रस्त हो जाता है तथा युद्ध करने से इंकार कर देता है। मोहग्रस्त अर्जुन को मोह से निकालने तथा युद्ध के लिए तैयार करने के लिए श्रीकृष्ण गीता का उपदेश देते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण कर्म योग का उपदेश देते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को फल की आशा छोड़कर कर्म करना चाहिए। कर्म का फल अपने आप मिल जाता है। कर्म में कुशलता ही योग है। गीता ने योग को विशेषकर के कर्म- योग को बहुत महत्त्वपूर्ण बना दिया। कर्मयोग के दर्शन के कारण ही गीता का अनुवाद विश्व की अनेक भाषाओं में किया गया।

समाज में विभिन्न वर्गों के लोग निवास करते हैं, जिनका स्वभाव तथा चित्तवृत्तियाँ एक जैसी नहीं है। यद्यपि योग का महत्त्व एक जैसा है, परन्तु योग मार्ग भिन्न-भिन्न हैं। इसलिए योग के विभिन्न मार्गों का वर्णन किया गया है। योग के चार मार्ग बताए गए हैं—

1. कर्मयोग
2. ज्ञानयोग
3. ध्यानयोग
4. भक्तियोग।

गीता में कर्मयोग को सबसे श्रेष्ठ माना गया है। कर्मयोग फल की इच्छा से रहित होकर अपने कर्त्तव्य का पालन करना अर्थात् कर्त्तव्यनिष्ठ होना ही योग है। मोहग्रस्त अुर्जन को मोह से निकालने के लिए ही कर्मयोग की व्याख्या की गई है। कर्म की व्याख्या सामाजिक उपयोगिता तथा नैतिक मूल्यों के संदर्भ में की गई है। कर्म करना सभी मानवों का कर्त्तव्य है। कर्त्तव्य से विमुख व्यक्ति समाज में आदर नहीं वरन् अनादर पाता है।

ज्ञानयोग सर्वसाधारण के लिए नहीं है। ज्ञानयोग उन व्यक्तियों के लिए है जो परमपिता परमेश्वर के अमूर्त चिंतन में गहरी रुचि रखते हैं। अज्ञानता के अंधकार से केवल ज्ञान के प्रकाश द्वारा ही निकला जा सकता है। ज्ञान की आभा में मनुष्य अंतिम सत्ता की झलक पाता है तथा आध्यात्मिक संतुलन की प्राप्ति करता है।

ध्यानयोग में मस्तिष्क को सभी बाह्य वस्तुओं से हटाकर आत्मा पर केन्द्रित करने का प्रयास करना पड़ता है। ध्यानयोग में बाह्य सभी बातों यथा—आहार, निद्रा, भोग-विलास को त्यागकर संयम का जीवन बिताना पड़ता है। ध्यानयोग में अपने इष्टदेव की ओर ही ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है। एक ध्यानयोग का साधक तभी अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हो सकता है।

भक्तियोग में मानव सांसारिक मोह माया के बंधनों से मुक्त होकर अपना सर्वस्व परमपिता परमेश्वर को अर्पित कर देता है। भक्तियोग में साधक ईश्वर की भक्ति में लीन होने का प्रयास करता है।

श्रीमद् भगवद्गीता में योग पर विशेष रूप से चर्चा की गई है। गीता में योग पर की गई चर्चा आने वाले सभी युगों में मानव जाति के विकास की दिशा में अपूर्व सहयोग देती रहेगी। जब तक सृष्टि पर मानव रहेगा गीता का उपदेश प्रासंगिक रहेगा।

❖ स्मृति तथा पुराणों में योग (Yoga in Smiritis and Puranas)

स्मृति-साहित्य में योग को आत्म-साक्षात्कार का साधन माना गया है। स्मृति-ग्रंथों में अनेक ऐसे निर्देशों की व्याख्या की गई है जिनमें यह कहा गया है कि समाज के सभी वर्ग योग से आत्म- ज्ञान की प्राप्ति कर सकते हैं।

स्मृति-ग्रंथों में योग को एक विशेष क्रियाकलाप से जोड़कर क्रियात्मक योग की एक नई प्रक्रिया को जन्म दिया है। योग क्रियाओं में यम, नियम, ध्यान, धारणा, अपरिग्रह, समाधि आदि अनेक तत्त्व हैं परन्तु स्मृति-ग्रंथों में सबसे अधिक बल प्राणायाम पर दिया गया है। पतंजलि योग की बहुत-सी बातें स्मृति-साहित्य में निहित हैं। स्मृति ग्रंथों में यद्यपि प्राणायाम को अधिक महत्त्व दिया गया है परन्तु इनमें यम, नियम तथा ध्यान, धारणा के महत्त्व का वर्णन भी किया गया है।

स्मृति-ग्रंथों के अतिरिक्त पुराणों में भी योग के महत्त्व की चर्चा की गई है। सतरह पुराणों तथा अठारवें महापुराण भागवत में यम, नियम, ध्यान, धारणा का वर्णन मिलता है।

योग सूत्र में योग—महर्षि पतंजलि ने अपने योग दर्शन में 195 योग सूत्रों की रचना की है। जिन्हें चार अध्यायों में बाँटा गया है—समाधिपाद, साधनापाद, विभूतिपाद तथा कैवल्यपाद।

समाधिपाद में 51 सूत्र हैं। इन सूत्रों में योग द्वारा चित्तवृत्तियों पर नियंत्रण कैसे रखा जा सकता है? इसकी व्याख्या की गई है। समाधि दो प्रकार की होती है—

1. संप्रज्ञात समाधि तथा असंप्रज्ञात समाधि—जब समाधि में ध्यान केन्द्रित करने के लिए किसी सहारे की आवश्यकता पड़ती है, चाहे वह दीपक की लौ हो, कोई चित्र अथवा अपने किसी ईष्टदेव की मूर्ति आदि तो इसे संप्रज्ञात समाधि कहा जाता है। योगी अथवा साधक वस्तु विशेष पर ध्यान केन्द्रित करता है तथा उसी में लीन हो जाता है। इसे सबीज समाधि भी कहा जाता है। इस तरह की समाधि में फल पाने की इच्छा बनी रहती है।

जिस समाधि में किसी अवलम्बन अथवा किसी वस्तु-विशेष की आवश्यकता नहीं रहती उसे असंप्रज्ञात समाधि कहा जाता है। इस समाधि को निर्बीज समाधि भी कहा जाता है। यह समाधि साधक के सभी कर्म फलों को नष्ट करने वाली होती है। इस समाधि में साधक पूर्णतया बंधनमुक्त हो जाता है तथा आवागमन के चक्कर से छूट जाता है। इस समाधि में कुछ पाने की अथवा फल की इच्छा बिल्कुल समाप्त हो जाती है। यहाँ तक कि साधक अपने अस्तित्व को भी भूल कर पूर्ण तन्मयता की स्थिति में पहुँच जाता है। इस प्रकार की समाधि श्रद्धा, स्मृति तथा प्रज्ञा आदि उपायों द्वारा प्राप्त होती है।

इस प्रकार समाधि को सबीज तथा निर्बीज दो रूपों में भी विभक्त किया जा सकता है। सबीज समाधि में फल की इच्छा बनी रहती है जिसके कारण वह जन्म लेता रहता है। यह समाधि निचले स्तर की होती है।

निर्बीज समाधि में साधक को किसी प्रकार के फल की इच्छा अथवा अभिलाषा नहीं होती। सबीज समाधि में इच्छा, तृष्णा तथा आसक्ति बनी रहती है जबकि इसके विपरीत निर्बीज समाधि में कोई किसी तरह की इच्छा नहीं रहती। इस अवस्था में योगी अथवा साधक सब कुछ भूल जाता है। वह अपने अस्तित्व को भी भूल जाता है। साधक परमपिता परमेश्वर में तल्लीन हो जाता है।

साधना पाद—साधनापाद में 55 सूत्र दिए गए हैं। इन सूत्रों में व्याख्या की गई है कि योग साधना में राग, द्वेष, अहंकार, अविद्या तथा अभिनिवेश आदि बहुत-सी बाधाएँ हैं। जब तक साधक में क्लेश, संताप तथ दुःख है, वह ईश्वर तक नहीं पहुँच सकता। प्रकृति त्रिगुणात्मक है। सृष्टि में जो कुछ है, वह त्रिगुणात्मक है। ये तीन गुण हैं—सत्त्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण। इस सृष्टि का रचियता ईश्वर है। सृष्टि के सभी पदार्थों में उसी का रूप झलकता है। यह संसार में जो कुछ भी दिखाई देता है, वह सब भ्रम तथा मिथ्या है जिसका अन्त होना स्वाभाविक है। सृष्टि के अंतराल में छुपे भेदों को केवल एक सच्चा योगी अथवा साधक ही जान सकता है। वही अपनी आत्मा को सही ढंग से पहचान सकता है। अष्टांग योग साधक अथवा योगी को अपने लक्ष्य तक पहुँचाने में मदद कर सकता है।

विभूतिपाद–विभूतिपाद के 55 श्लोकों में यह स्पष्ट व्याख्या की गई है कि अष्टांग योग अर्थात् यम, नियम, ध्यान, धारणा, प्राणायाम, प्रत्याहार, आसन तथा समाधि के अनुष्ठान से अविद्या आदि क्लेश समाप्त हो जाते हैं। जब अज्ञानता समाप्त हो जाती है तो विवेक तथा संयम की प्राप्ति होती है। एक साधक अथवा योगी संयम द्वारा चमत्कारिक तथा अलौकिक शक्ति प्राप्त कर लेता है। उसे सभी प्रकर की सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

कैवल्यपाद–कैवल्यपाद को मुक्तिपाद के नाम से भी जाना जाता है। इसमें 34 श्लोकों के माध्यम से मानव जीवन के परम उद्देश्य अर्थात् मोक्ष के बारे बताया गया है।

चित्त बड़ा चंचल है जो कभी भी स्थिर नहीं रहता। इधर-उधर भटकता रहता है। आत्मा स्थिर है परन्तु आत्मा तक पहुँचने का मार्ग चित्त से होकर ही जाता है।

एक सच्चा योगी अपने चंचल मन पर संयम से नियंत्रण रखकर साधना द्वारा आत्मा से साक्षात्कार कर सकता है।

जब योगी अपने मन पर नियंत्रण करने में सफल हो जाता है। तब उसका अविवेक समाप्त हो जाता है एवम् चित्तवृत्तियों पर उसका नियंत्रण हो जाता है। वह विवेकमार्गी होकर कैवल्य अथवा मुक्ति की ओर उन्मुख हो जाता है। योगी ऐसी समाधि की अवस्था में पहुँच जाता है जहाँ अविवेक, अज्ञान, क्लेश, संताप सब समाप्त हो जाते हैं। योगी को सभी कर्मो से निवृत्ति मिल जाती है।

यह समाधि की अंतिम अवस्था होती है, जब साधक अथवा योगी की आत्मा का परमात्मा से मिलन हो। जब आत्मा परमात्मा में विलीन हो जाती है तो उसे सुख की अनुभूति होती है। वह आवागमन के चक्र से सदैव के लिए मुक्त हो जाती है। आत्मा, परमात्मा, में विलीन होकर एक हो जाती है। आत्मा और परमात्मा का भेद समाप्त हो जाता है।

?

सम्भावित प्रश्न

1. उपनिषदों में योग के महत्त्व का वर्णन करें।
2. 'गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कर्मयोग का विस्तार से वर्णन करते हैं। कर्मयोग की अपने शब्दों में व्याख्या करें।
3. स्मृति ग्रंथों में योग के महत्त्व का वर्णन करें।

◆◆◆

14

योग व शरीर विज्ञान
[Yoga and Physiology]

सम्पूर्ण सृष्टि में सबसे अधिक महत्त्व मनुष्य-तन का है। मानव शरीर अनमोल है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामायण की एक चौपाई में कहा है कि—

बड़े भाग्य मानुष तन पावा।
सुर दुर्लभ सद्ग्रंथिन गावा।।

कहते हैं कि मानव शरीर बड़े भाग्य से मिलता है। 84 लाख योनियों में भटकने के पश्चात् मानव-तन मिलता है। इसलिए यदि सुंदर-स्वस्थ शरीर के साथ-साथ दिल तथा दिमाग किसी के पास है तो वह केवल मनुष्य के पास है।

मनुष्य को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक स्वस्थ शरीर की आवश्यकता पड़ती है। दैनिक-चर्या से लेकर इस संसार के जितने भी कार्य हैं, सभी इस शरीर से किए जाते हैं।

परमपिता परमेश्वर की विशेष अनुकम्पा से यह बेजोड़ तथा अनमोल शरीर बड़े से बड़ा कार्य करने की क्षमता रखता है। यह सब तभी संभव हो सकता जब मानव का मन-मस्तिष्क तथा शरीर हृष्ट-पुष्ट हो। क्षुद्रकार्य से लेकर परमार्थ तक के कार्य इसी शरीर से सम्पन्न किए जाते हैं। जब तक कोई व्यक्ति स्वयं स्वस्थ नहीं होगा, तब तक वह किसी ओर की सहायता नहीं कर सकता है। ऐसा व्यक्ति जो स्वस्थ नहीं है, समाज तथा देश का तो क्या अपना स्वयं का भी उत्थान नहीं कर सकता।

निश्चित रूप से यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि मानव सृष्टि की सर्वोत्तम रचना का प्रतीक है। शारीरिक रचना की दृष्टि से यह परमपिता परमेश्वर द्वारा निर्मित अद्भुत रचना है।

ईश्वर की यह विशेष रचना जिसे मानव-शरीर कहा जाता है—पाँच महाभूतों—आकाश, पृथ्वी, वायु, जल तथा अग्नि से निर्मित है। इन पाँच तत्त्वों का प्रतिनिधित्व हमारे शरीर की पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ करती हैं—आकाश का गुण है—शब्द जो हम कान से सुनते हैं। पृथ्वी का गुण है—गंध, गंध का ज्ञान हमें नाक से होता है। वायु का गुण है—स्पर्श, स्पर्श हम त्वचा से करते हैं।

जल का गुण है—स्वाद, स्वाद का अनुभव हमें जिह्वा से होता है। मीठा नमकीन, फीका, कड़वा आदि स्वादों को हम जिह्वा से चखते हैं।

अग्नि का गुण है—प्रकाश, प्रकाश हम आँखों से देखते हैं। इससे हमें गर्मी भी मिलती है। जठराग्नि से पाचन का काम भी होता है।

इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों के अतिरिक्त पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं—मुख, हाथ, पाँव, लिंग तथा गुदा। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, शरीर के संस्थान, ग्रंथियाँ आदि 24 तत्त्वों से हमारे शरीर का संचालन होता है। इन सब पर शासन करने वाला मन, मन पर शासन करने वाली बुद्धि, बुद्धि का शासक अहंकार तथा उसका स्वामी है जीवात्मा।

प्रकृति ने इस शरीर की रचना अपने आप में पूर्ण की है। इसमें अपने को चलाने, विकारों को बाहर निकालने, रोगों से बचाने तथा रोगों से स्वस्थ रखने की पूरी व्यवस्था है। केवल प्रकृति के कुछ नियमों को समझने तथा उनका पालन करने की आवश्यकता है। शेष कार्य शरीर स्वयं कर लेता है।

उदाहरण के लिए जिस प्रकार एक मकान कई प्रकार की छोटी-बड़ी ईंटों, सीमेंट, गारा, चूना आदि के मेल से बनता है, उसी प्रकार जीवधारियों के शरीर की बनावट अनेक छोटी-बड़ी ईंटों से हुई है। अंतर केवल इतना है कि मकान की ईंटें जड़ होती हैं तथा शरीर की ईंटें सजीव।

इसे इस तरह भी समझा जा सकता है। मानव शरीर को कुछ महत्त्वपूर्ण तंत्र तथा संस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है। इन संस्थाओं की तुलना किसी राज्य अथवा संस्था में कार्यरत विभिन्न विभागों के रूप में की जा सकती है। एक संस्थान में कई छोटे-बड़े अधिकारी तथा कर्मचारी कार्य करते हैं। यद्यपि सभी के कार्य भिन्न-भिन्न होते हैं परन्तु सभी मिलकर कार्य करते हैं तभी संस्थान सफलतापूर्वक कार्य करता है। इसी तरह मानव शरीर के विभिन्न अंग अपना-अपना कार्य करते हैं परन्तु पूर्ण शरीर का कार्य सुचारू रूप से चले यह तभी संभव होगा यदि सभी अंगों में सहयोग तथा सामंजस्य हो।

शरीर के सभी संस्थानों की कार्यविधि को ठीक प्रकार से चलाये रखने में योग-संबंधी क्रियाएँ तथा आसन बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

योग एक संपूर्ण विद्या है। यह मानव को स्वयं का परिचय कराने की कला है।

हम मानव शरीर के विभिन्न संस्थानों, उनकी कार्यप्रणाली तथा इन प्रणालियों को सुचारू रूप से चलाये रखने में योग की भूमिका पर विचार करेंगे।

❖ मानव शरीर संस्थानों का परिचय तथा योग की भूमिका (Human Body System : Introduction and the Role of Yoga in their Proper Maintenance)

शरीर की रचना की तुलना एक बड़े राज्य से की जा सकती है। राज्य-शासन के कार्य अनेक विभागों द्वारा सम्पन्न किए जाते हैं तथा सभी विभाग अपने-अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी होते हैं। इसी तरह शरीर के कई विभाग हैं। अनेक अंगों से मिलकर एक विभाग बनता है। शरीर के विभाग को संस्थान कहा जाता है। सभी अंगों के अपने-अपने कार्य हैं तथा अंग अपने-अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी हैं। एक अंग दूसरे अंग के साथ सहयोग करता है। शरीर के सभी अंगों के सहयोग से ही सारे शरीर का अस्तित्व है। शरीर के एक अंग के विकार का प्रभाव दूसरे अंग अर्थात् सारे शरीर पर पड़ता है। सारे अंगों के सहयोग का ही प्रतिफल है कि चोट कहीं भी लगे हाय मुख से ही निकलती है। शरीर के अंगों का यह सहयोग ठीक ढंग से हो, अंदर के सभी अंग पूरी तरह सक्रिय रहें तभी शरीर स्वस्थ, सबल, बलिष्ठ तथ सुंदर रहेगा। शरीर नीरोग रहे, विकारों से रहित रहे, यह सब कुछ केवल योग से ही संभव है।

शरीर के मुख्य संस्थान निम्नलिखित हैं–

1. अस्थि संस्थान : हड्डियाँ (Skelton System)
2. मांस संस्थान : मांसपेशियाँ (Muscular System)
3. रक्त और रक्त वाहन संस्थान (Blood Circulatory System)
4. नलिका विहीन ग्रन्थि संस्थान (Endo Crine System)
5. उत्पादक संस्थान (Reproductory System)
6. स्नायु संस्थान (Nervous System)
7. श्वसन संस्थान (Respiratory System)
8. पाचन संस्थान (Digestive System)
9. ज्ञानेन्द्रिय संस्थान (Sensory System)
10. विसर्जन संस्थान (Excretory System)

इनके अतिरिक्त और भी कई प्रकार की ग्रंथियाँ हैं जो हमारे शरीर में कार्य करती हैं। योगासनों का प्रभाव रीढ़, मांसपेशियों, रक्त संस्थान, नाड़ी संस्थान तथा पाचन यंत्रों पर पड़ता है। हृदय, फेफड़े तथा मस्तिष्क से क्योंकि इनका घनिष्ठ संबंध है इसलिए इन सब अंगों के कार्यों तथा रचना का मोटे तौर पर वर्णन इस प्रकार है–

1. अस्थि संस्थान (Skelton System)

मनुष्य के कंकाल में छोटी-बड़ी मिलाकर 206 हड्डियाँ होती हैं। 22 अस्थियाँ सिर में, 52 धड़ में, 6 दोनों कानों में तथा शेष 126 पैरों तथा हाथों में होती है। हड्डियों में किसी भी प्रकार की कोई कमी शरीर के आकार-प्रकार तथा कार्य प्रणाली में बहुत अंतर डाल देती है। इससे हमारा शरीर विकृत भी हो सकता है।

हड्डियों को आवश्यक रूप से लचीला, स्वस्थ तथा मजबूत बनाने के लिए अच्छे तथा पौष्टिक आहार के साथ-साथ नियमित रूप से व्यायाम करना भी आवश्यक है।

योगासन तथा योग संबंधी अन्य क्रियाएँ इस कार्य में बहुत सहायक होती हैं।

आहार के अतिरिक्त हमारी हड्डियों को जो कुछ चाहिए वह सभी कुछ योगासनों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

मानव-हड्डियों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण रीढ़ की हड्डी होती है। इसे मेरूदण्ड भी कहा जाता है।

गर्दन, पीठ तथा कमर के बीच जो हड्डी होती है उसे रीढ़ की हड्डी अथवा मेरूदण्ड कहा जाता है। इसके 26 भाग होते हैं जो आपस में बंधे रहते हैं। रीढ की अस्थियों को मोहरे अथवा गोटे कहा जाता है। हमारे गर्दन अथवा धड़ में गति ही न हो पाती यदि मेरूदण्ड एक ही हड्डी का होता। शरीर के स्वस्थ रहने का संबंध सीधा रीढ़ की हड्डी से है। शरीर में जितनी लचक रहेगी, ये 26 मोहरे साफ रहेंगे तो इनके मुड़ने तथा तुड़ने में रुकावट नहीं होगी। इससे हमारा स्वास्थ्य तथा यौवन बना रहेगा।

26 अस्थियों में 7 गर्दन, 12 पीठ, 5 कमर तथा शेष 2 कमर के नीचे गुदा के पास होती हैं इन्हीं के मध्य से, सिर के पिछले भाग से सुषम्ना नाड़ी निकल कर गुदा द्वार के पास आती है जो सारे शरीर को नियन्त्रित करती है।

सर्पासन, चक्रासन, हलासन, पश्चिमोत्तासन आदि आसनों का मेरूदण्ड पर बहुत उपयोगी प्रभाव पड़ता है।

2. मांसपेशियाँ संस्थान (Muscular System)

अस्थि पिंजर के भीतर शरीर के कार्य को चलाने के लिए कोमल अंग होते हैं जो सौत्रिक तंतुओं द्वारा इन अस्थियों से जुड़े रहते हैं। शरीर में कई तरह की ग्रंथियाँ होती हैं जो शरीर को चलाने का काम करती हैं। अस्थियों को ढकने तथा ग्रंथियों तथा अन्य कोमल अंगों की रक्षा के लिए मांसपेशियाँ होती हैं, जिनसे शरीर सुडौल बनता है। इन मांसपेशियों के ऊपर चर्बी होती है तथा उससे ऊपर त्वचा जो शरीर पर दिखाई देती है। मांस का यह विशेष गुण है कि यह सिकुड़ कर मोटा तथा छोटा हो जाता है तथा फिर अपनी पहली दशा में आ जाता है। मांस को सिकुड़ने को संकोच तथा फैलने को प्रसार कहते हैं।

मांसपेशियों का यही गुण हमारे शरीर की विभिन्न कार्य प्रणालियों के लिए आवश्यक आधार भूमि तैयार करता है।

जितनी गतियाँ हमारे शरीर में होती हैं, उनका संपादन मांसपेशियों द्वारा ही संभव हो पाता है।

हमारे शरीर में दो प्रकार की गतियाँ होती हैं। एक वे जो हमारी इच्छानुसार होती हैं। जैसे—चलना-फिरना, हाथ-उठाना, भोजन चबाना आदि। इन गतियों पर हमारा नियंत्रण होता है। ये सभी गतियाँ हमारी इच्छानुसार होती हैं। इसलिए इन्हें ऐच्छिक गति भी कहा जा सकता है।

दूसरी गतियाँ वे हैं जिन पर हमारा कोई अधिकार नहीं होता। इन गतियों को हम रोक नहीं सकते तथा यदि रुक जाएँ तो इनको चलाने में बड़ी कठिनाई आती है। हृदय धड़कता रहता है हम उसे बंद नहीं कर सकते। यदि हृदय की धड़कन रुक जाए तथा समय पर उपचार न मिले और यदि उपचार मिल भी जाए तो अनिवार्य नहीं है कि हृदय की धड़कन अथवा गति को आरंभ किया जा सके। हृदय गति का रुकने का स्पष्ट संकेत है—व्यक्ति की मृत्यु।

आँतों में गति होती रहती है, जिसके कारण भोजन ऊपर से नीचे को सरकता रहता है। प्रकाश के प्रभाव

से आँख की पुतली सिकुड़ जाती है तथा अंधकार के कारण फैलकर चौड़ी हो जाती है, ऐसी गतियाँ इच्छा के अधीन न होने के कारण अनैच्छिक अथवा सहज गतियाँ कहलाती हैं।

शरीर की मांसपेशियों को स्वस्थ तथा क्रियाशील बनाने के लिए योगासन तथा यौगिक क्रियाओं का बहुत महत्त्व है। योगाभ्यास से मांसपेशियों के सभी तन्तु स्वस्थ तथा लचीले बने रहते हैं।

मांसपेशियों में भिन्न-भिन्न प्रकार के छोटे-छोटे कोश (Cells) होते हैं, जिनमें टूट-फूट होती रहती है। मांसपेशियों की पर्याप्त संख्या बनी रहे, इसके लिए शुद्ध रक्त के प्रवाह की बहुत आवश्यकता रहती है। शुद्ध रक्त के प्रवाह के अभाव में विभिन्न अंग अधिक समय तक कार्य करने में समर्थ नहीं रहते।

योगासन, प्राणायाम तथा अन्य योग की क्रियाओं द्वारा मांसपेशियों के कोशों को वह सब कुछ प्राप्त हो जाता है, जिनकी उन्हें अपनी सक्रियता के लिए आवश्यकता होती है।

इस प्रकार योगाभ्यास-संबंधी क्रियाएँ मांसपेशियों को पर्याप्त सुदृढ़ता तथा कार्यशीलता में समर्थ बनाती है।

चर्बी की अधिकता भी शरीर को बहुत हानि पहुँचाती है। बढ़ी हुई अनावश्यक चर्बी को भी योगाभ्यास द्वारा समाप्त किया जा सकता है।

3. रक्त वाहन संस्थान (Blood Circulatory System)

मनुष्य के रक्त वाहन संस्थान में हृदय, धमनियाँ, शिराएँ, कोशिकाएँ तथा रक्तकण आदि प्रमुख अंग शामिल हैं।

मनुष्य का हृदय उसकी बंद मुट्ठी के समान होता है। हृदय छाती में बाईं तरफ फेफड़ों के बीच में स्थित होता है। तेज दौड़कर आने के बाद तथा घबराहट में तेजी से धड़कते हुए दिल अथवा हृदय का अनुभव किया जा सकता है।

सारे शरीर को हृदय से रक्त देने तथा उसे वापस हृदय में लाने के लिए दो प्रकार की नलियाँ होती हैं, जो सारे शरीर में फैली रहती हैं। इनमें से कई तो बाल से भी बारीक होती हैं। हृदय के फैलने व सिकुड़ने की क्रिया एक मिनट में 70 से 75 बार होती है। इसे हृदय की धड़कन कहते हैं। हृदय की गति के असामान्य होने पर व्यक्ति के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ता है। यदि हृदय की धड़कन बहुत तेज हो जाए अथवा बंद हो जाए तो व्यक्ति की मृत्यु तक हो सकती है।

शरीर को हृदय से रक्त देने तथा उसे वापस हृदय में लाने अर्थात् रक्त को हृदय में लाने तथा वापस ले जाने वाली नलियों को धमनियाँ कहा जाता है।

बाएँ विलय में जो बड़ी धमनी निकलती है उसे महाधमनी कहा जाता है। इस महाधमनी से छोटी-छोटी कई धमनियों द्वारा स्वच्छ रक्त शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचाया जाता है।

एक अन्य प्रकार की धमनी जो दाएँ निलय से निकलती है तथा जो गंदे रक्त को फेफड़ों तक पहुँचाने का कार्य करती है उसे फुफ्फुस धमनी कहा जाता है।

इस प्रकार हृदय से गंदा रक्त फेफड़ों तक पहुँचाया जाता है तथा शुद्ध रक्त शरीर के अन्य भागों में। शिराएँ अशुद्ध रक्त वाहिनी नीले रंग की वे नलियाँ हैं जो शरीर के विभिन्न भागों से अशुद्ध रक्त को हृदय की ओर लाती हैं। ये धमनियों की अपेक्षा कमजोर तथा पतली होती हैं।

कोशिकाएँ—शरीर में जाल की तरह फैली हुई अति सूक्ष्म रक्तवाहिनी नलियों को कोशिकाएँ कहा जाता है। इन नलियों की दीवारों में मांस नहीं होता। यह कोशों की एक तह से बनी होती हैं। इनका कार्य शरीर के विभिन्न कोशों तक रक्त पहुँचाना होता है। कोशिकाओं की दीवारें शरीर के विभिन्न अंगों से संबंधित कोशों से सटी हुई अथवा उनसे मिली हुई रहती हैं।

हृदय एक बार में 60 से 80 ग्राम रक्त पम्प करता है। हृदय एक मिनट में 5 से 6 लीटर के लगभग रक्त शरीर को भेजता है। यह क्रम जीवनपर्यन्त चलता है।

रक्त को शुद्ध करने वाले मुख्य अंग हैं—फुफ्फुस, वृक्क तथा त्वचा। इसके अतिरिक्त लीवर स्पलीन तथा

कई अन्य ग्रंथियां भी रक्त को शुद्ध करने में सहायता देती हैं। फेफड़ों द्वारा शरीर से कार्बन डाईऑक्साइड, उड़नशील हानिकारक पदार्थ तथा जलीय वाष्प बाहर निकलते हैं तथा ऑक्सीजन गैस (शुद्ध वायु) फेफड़ों में प्रवेश करती है।

हृदय तथा उसके द्वारा सम्पन्न रक्त-संचरण प्रक्रिया हमारे शरीर तथा उसके स्वास्थ्य के लिए अति आवश्यक है। हृदय को 24 घंटे कार्य करना पड़ता है। हृदय को भी आराम की आवश्यकता पड़ती है, उसके रक्त संचार में कोई बाधा न पहुँचे, यही ध्यान रखना ही हृदय को आराम देना है।

शिराओं, छोटी-छोटी कोशिकाओं तथा रक्त नलिकाओं, जिनसे रक्त संचरण होता है, वे उसी प्रकार साफ रहें जैसे कि पानी को ले जाने वाली नालियाँ रहती हैं। इन कोशिकाओं तथा नलिकाओं के मार्ग में थोड़ी-सी रुकावट भी हृदय को हानि पहुँचा सकती है।

हृदय को हानि पहुँचने से रोकने के लिए योग महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। योग के विभिन्न आसनों से रक्त की नलिकाओं व कोशिकाओं की सफाई होती रहती है तथा रक्तसंचरण का कार्य निर्बाध रूप से सम्पन्न होता रहता है।

4. श्वास क्रम अथवा श्वसन संस्थान
(Breathing Steps or Respiratory System)

वायु का नाक द्वारा फेफड़ों में जाना तथा बाहर निकलना श्वास क्रम कहलाता है। साँस सदा नाक से लेना चाहिए, मुख से नहीं। नाक में इस प्रकार के यंत्र हैं जो साँस को पहले छान कर गरम करते हैं, फिर उसे फेफड़ों में भेजते हैं। इस प्रकार नाक से साँस लेने पर कोई भी विकार फेफड़ों में नहीं पहुँच सकता, जब कि मुख में इस प्रकार के यंत्र नहीं हैं।

फेफड़े एक प्रकार से रक्त को शुद्ध करने वाले यंत्र हैं। फेफड़ों में शुद्ध होकर ही हवा हृदय में जाती है। साधारणतः स्वस्थ मनुष्य एक निमट में 13 से 20 बार तक श्वास लेता है।

श्वास के छोड़ने के साथ हम कार्बन डाईऑक्साइड गैस नाक से बाहर निकाल देते हैं। जितना गहरा साँस हम लेते हैं उतनी ही ऑक्सीजन हमारे फेफड़ों में जाती है। फेफड़े तथा छाती उतनी ही फैलती है तथा रक्त उतना ही अधिक शुद्ध होता है। गहरे श्वास का श्वसन क्रिया की सफलता तथा अच्छे स्वास्थ्य से गहरा संबंध है।

योगासन तथा प्राणायाम इस दृष्टि से श्वसन क्रिया की सफलता तथा उत्तम स्वास्थ्य के लिए बहुत गुणकारी सिद्ध होते हैं।

5. पाचन संस्थान अथवा पोषण संस्थान
(Digestive System)

वे सभी अंग जो भोजन को पचाने में सहायक होते हैं जैसे—मुख, गला, आमाशय, पक्वाशय, छोटी-बड़ी आंत, यकृत (लीवर) आदि सभी पाचन संस्थान कहलाते हैं। एक तरह से सभी पाचन संस्थान एक 28-30 फुट लम्बे रास्ते आहार पथ का निर्माण करते हैं। इस पाचन संस्थान का आरम्भ मुख से होता है तथा अन्त नीचे जाकर मल द्वार से बाहर निकल कर।

शरीर को चलाये रखने तथा उसे शक्ति देने के लिए हम जो कुछ भी मुख में खाने के लिए डालते हैं, वह सबसे पहले दाँतों द्वारा पीसा जाता है। यहाँ पर भोजन को मुख की लार (soliva) मिलती है। जो भोजन के श्वेतसार को पचाने में बहुत सहायक है। लार एक क्षारीय पदार्थ है जो मुख की ग्रंथियों से निकलती है। इन ग्रंथियों में एक विशेष गुण वाला पदार्थ होता है जो श्वेतसार को शर्करा में परिवर्तित कर देता है। लार भोजन को पतला करके गले की लगभग 10 इंच लम्बी नली में धकेल देती है। अन्न नली से भोजन आमाशय में पहुँचता है।

आमाशय एक थैली के समान होता है, जिसे पाक स्थली भी कहा जाता है। यह थैली पेट के बाएँ भाग में पसलियों के नीचे होती है।

आमाशय के दो द्वार होते हैं। एक द्वार ऊपर की ओर बाएँ हृदय के निकट होता है, यहीं से भोजन आमाशय में आता है। दूसरा नीचे दाहिनी ओर होता है, इसमें से होकर भोजन छोटी आँ में जाता है। यह पक्वाशयिक

द्वार कहलाता है। यह छोटी आँत का पहला शिरा है, जो घेरेदार पेशियों का बना होता है। यह तब तक बंद रहता है जब तक भोजन आमाशय के रस के साथ मिलकर उतरने योग्य नहीं हो जाता।

पक्वाशय में उतरने वाले भोजन में पित्त तथा कलोम नामक दो ग्रंथियों से पित्त तथा कलोम रस मिल जाते हैं। वसा के पचाव में ये दोनों ही रस अपने क्षारीय गुणों के कारण बहुत सहयोगी सिद्ध होते हैं।

पित्त से मिलकर कलोम रस अपनी सब क्रियाओं में प्रबल हो जाता है। वसा के पचाव तथा आत्मीकरण के लिए पित्त बड़ी आवश्यक चीज है। जब पित्त कम बनता है अथवा किसी कारण आँत में नहीं पहुँच पाता तब वसा बहुत कम पचती है तथा उसका अधिक भाग मल के रूप में शरीर से बाहर निकल जाता है। आहार में पित्त के रहने से सड़ाव कम होने पाता है। जब छोटी आँत में पित्त नहीं पहुँच पाता तब सड़ाव अधिक होता है तथा मल बहुत बदबूदार होता है।

जब आहार बड़ी आंत में पहुँचता है तब भी वह काफी पतला होता है। बड़ी आंत भी बचे हुए आवश्यक रस को चूस लेती है तथा शेष को आगे बढ़ाकर गुदा द्वारा मल के रूप में बाहर निकाल देती है। बड़ी आंत में यह क्रिया 5 से 6 घंटे तक होती है।

पाचन संस्थान के सभी अंग अपना-अपना कार्य ठीक प्रकार से करें, इसमें योग-क्रियाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान हो सकता है। विशेष रूप से पश्चिमोत्तानासन, मयूरासन, धनुरासन, पवन मुक्तासन, वज्रासन, भुजंगासन आदि। इन आसनों की मदद से पाचन-संस्थान को शक्ति तथा कार्य क्षमता प्राप्त होती है।

पाचन-संस्थान को ठीक प्रकार से कार्य करने में षट्कर्म का भी बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान हो सकता है। षट्कर्म के रूप में न्यौली, धौति, शंख प्रक्षालन व बस्तिपान संस्थानरूपी मशीन की सफाई में सहायक हो सकते हैं। इन षट्कर्म की क्रियाओं से अंगों को स्वस्थ तथा कार्यशील बनाए रखने में बहुत मदद मिल सकती है।

6. विसर्जन संस्थान (Excretory System)

जीवित शरीर में दो क्रियाएँ होती हैं। एक ओर वस्तुओं की भोजन तथा श्वास द्वारा 'आय' होती है तो दूसरी ओर कार्य करने में, मल मूत्र त्यागने में, पसीने तथा श्वास द्वारा उनका 'व्यय' होता है। शरीर के पोषण के लिए दोनों क्रियाओं की आवश्यकता पड़ती है।

शरीर में उपस्थित सभी ऐसे पदार्थ जिन की शरीर को आवश्यकता नहीं होती, उन्हें विजातीय पदार्थ कहा जाता है। ऐसे सभी अनावश्यक पदार्थों को बाहर निकालने का कार्य जिन अंगों द्वारा सम्पन्न किया जाता है, उन सभी अंगों को विसर्जन-संस्थान कहा जाता है।

त्वचा, गुर्दे, मुँह, नाक, गुदा ऐसे ही अंग हैं, जो विसर्जन का कार्य करते हैं।

त्वचा के माध्यम से पानी, यूरिया व साधारण नमक पसीने के रूप में बाहर निकाल दिए जाते हैं। गुर्दे यूरिया, पानी, यूरिक एसिड आदि मूत्र के रूप में बाहर निकाल देते हैं। शरीर के मेरूदण्ड अर्थात् रीढ की हड्डी के दोनों ओर एक जोड़ी गुरदे पाये जाते हैं। दोनों गुर्दों का आकार सेम के बीज की तरह होता है। गुर्दों के भीतरी भाग से मूत्र नली निकलती है जो कि गुर्दे से मूत्र को मूत्राशय तक पहुँचाती है। मूत्राशय से एक छोटी-सी नली मूत्र मार्ग द्वारा मूत्र बाहर निकाल दिया जाता है।

मुँह तथा नाक से कार्बन डाईऑक्साइड बाहर निकाली जाती है।

गुदा से मल के रूप में भोजन का वह अंश जो पचता नहीं है बाहर निकाल दिया जाता है। विसर्जन संस्थान से संबंधी जितने भी अंग कार्य करते हैं, उन्हें ठीक-ठाक रखने में योग महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

प्राणायाम की क्रियाओं से गंदी वायु तथा कार्बन डाईऑक्साइड को बाहर निकालने में बड़ी मदद मिलती है। आसनों के कारण पसीना अधिक आता है, जिससे त्वचा को विसर्जन के कार्य में मदद मिलती है। षट्कर्म की विभिन्न क्रियाओं यथा—न्यौली, धौति, बस्ति, शंख प्रक्षालन आदि क्रियाओं से विर्सजन का कार्य आसानी से हो जाता है।

मयूरासन, भुजंगासन, शलभासन आदि गुर्दों की कार्यक्षमता में वृद्धि करते हैं। इसी तरह आँतड़ियों तथा

गुदा संकुचन व प्रसार के कार्य में सहायक अन्य कई आसन तथा बंध मल मूत्र विसर्जन में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं।

7. ज्ञानेन्द्रिय संस्थान (Sensory System)

शरीर के जिन अंगों से हमारे चारों ओर के परिवेश का ज्ञान होता है, जिनसे हमें दूसरों के बारे में जानकारी मिलती है, उन सभी अंगों को ज्ञानेन्द्रियाँ कहा जाता है। शरीर में पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं—आँख, कान, नाक, जिह्वा तथा त्वचा। इन ज्ञानेन्द्रियों का सीधा संबंध हमारे देखने, सुनने, सूंघने, स्वाद तथा स्पर्श से है।

आँख के कार्य संपादन में वस्तु से परावर्तित प्रकाश की किरणें आँख के विभिन्न भागों यथा—कार्निया, उपतारा तथा पुतली में प्रवेश करके लैंस द्वारा केन्द्रित की जाती हैं। केन्द्रित हुई ये किरणें चक्षुद्र को पार करती हुई दृष्टिपटल पर प्रतिबिम्ब बनाकर उसे संवेदित करती हैं। यह संवेदना फिर चक्षु-शिरा के द्वारा मस्तिष्क तक पहुँचती है तथा हमें देखने संबंधी संवेदना की अनुभूति होती है।

कान की रचना की दृष्टि से तीन भाग हैं—बाह्य, मध्य तथा आंतरिक।

बाह्य कान का काम ध्वनि तरंगों को पकड़कर मध्य कान तक पहुँचाना है। मध्य कान ध्वनि तरंगों को आंतरिक कान तक पहुँचाता है। आंतरिक कान में सुनने संबंधी संवेदना को ग्रहण करने के शिरा कोश पाए जाते हैं, जो इस संवेदना को मस्तिष्क कोश तक पहुँचा कर हमें इसका अनुभव कराते हैं।

गंध का ज्ञान नाक द्वारा होता है। नाक के दो भाग आंतरिक तथा बाह्य होते हैं। सूँघने को अनुभव कराने वाले कोश आंतरिक नाक में स्थित नासिका गुहा में होते हैं। ये कोश गंध युक्त पदार्थों से निकलने वाले सूक्ष्म वाष्पमय कणों से प्रभावित होकर संबंधित संवेदना को मस्तिष्क की घ्राण शिरा तक पहुँचाने का कार्य करते हैं। इस क्रिया के कारण हमें गंध की अनुभूति होती है।

जिह्वा में जगह-जगह जो गड्ढे तथा उभार होते हैं, उनमें स्वाद कलिकाएँ पाई जाती हैं, जो हमें स्वाद का ज्ञान करवाती हैं। जिह्वा की नोक पर स्थित स्वाद कलिकाएँ मिठास की तथा पिछले भाग में स्थित कलिकाएँ कड़वाहट की अनुभूति करवाती है। जो भोजन हम करते हैं वह लार में अच्छी तरह मिलकर जिह्वा के स्वाद तन्तुओं के द्वारा स्वाद कोशों तक पहुँचता है जो हमें मस्तिष्क की सहायता से विभिन्न स्वादों की जानकारी देते हैं।

त्वचा स्पर्श, ताप, शीत, दबाव तथा पीड़ा का ज्ञान करवाती है। त्वचा की तीन परतें बाह्य, मध्य तथा आंतरिक होती हैं। इन सभी परतों में विभिन्न प्रकार के स्पर्श संबंधी संवेदन कोश पाए जाते हैं। इस संवेदन के द्वारा हमें पदार्थों के खुरदरे, चिकने, कड़े, मुलायम, सूखे तथा गीले होने का भान होता है।

ज्ञानेन्द्रियों को अपना कार्य ठीक प्रकार से निर्वाह करने की दिशा में यौगिक क्रियाएँ तथा योगासन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन सभी अंगों के लिए अलग-अलग यौगिक क्रियाएँ हैं।

शीर्षासन, सर्वांगासन, कर्णपीड़ा आसन, मत्स्यासन, भुजंगासन आदि आँख, कान, नाक तथा जिह्वा की कार्यक्षमता बढ़ाने में सहायक हैं।

मालिश व स्नान से त्वचा के रोम कूप विकसित होते हैं तथा त्वचा की संवेदना में वृद्धि करते हैं। सर्वांगासन, शीर्षासन, गजकरणी, कपाल भाति तथा प्राणायाम द्वारा भी त्वचा के स्वास्थ्य तथा उसकी कार्यक्षमता पर प्रभाव पड़ता है।

❖ नलिका विहीन ग्रंथि संस्थान (Endocrine System)

मानव शरीर में दो प्रकार की ग्रंथियाँ पाई जाती हैं। एक वे ग्रंथियाँ जो अपने द्वारा बनाए गए रसों को बारीक नलियों के द्वारा बाहर निकालती हैं। इस प्रकार की ग्रंथियों को नलिका युक्त ग्रंथियाँ कहा जाता है। दूसरे प्रकार की ग्रंथियाँ वे होती हैं, जिनमें उत्पन्न रस बिना किसी नलिका के माध्यम से सीधे ही रक्त में मिल जाते हैं। इस प्रकार की ग्रंथियों को **नलिका विहीन ग्रंथियाँ** कहा जाता है।

इन ग्रंथियों द्वारा निर्मित रसों को हारमोन कहा जाता है। शरीर में ये ग्रंथियाँ अपने-अपने निश्चित स्थानों पर क्रियाशील रहती हैं। इन विभिन्न ग्रंथियों में कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रंथियाँ निम्नलिखित हैं–

1. पिनियल ग्रंथि (Pineal Gland)–यह ग्रंथि कपाल में होती है। हमारी जैविक क्रियाओं जैसे चलना, फिरना, सोना, प्रजनन तथा ज्ञानेन्द्रियों संबंधी विकास को यह प्रभावित करती हैं। इस ग्रंथि के ठीक प्रकार से कार्य करने में मेधा-शक्ति बढ़ती है, बुद्धि का विकास होता है तथा शरीर में दृढ़ता तथा स्थिरता आती है। सर्वांगासन, शीर्षासन, प्राणायाम का इस ग्रंथि की क्रियाशीलता पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

2. पीयूष अथवा पिट्यूटरी ग्रंथि (Pituitary Gland)–सिर के निचले भाग में जहाँ से नाड़ी संस्थान मस्तिष्क से निकलता है, वहीं यह ग्रंथि स्थित होती है। इससे प्रत्येक अंग का समुचित विकास होता है। इसके ठीक कार्य करने से मोटापा नहीं आता। अन्य सभी ग्रंथियों को प्रभावित करने के कारण इसे स्वामिनी ग्रंथि भी कहा जाता है। जठराग्नि की वृद्धि, ज्ञानेन्द्रियों का विकास, बुढ़ापे तथा रोगों से मुक्ति, स्नायुओं को अपने मूल रूप में रखना आदि इसके मुख्य कार्य हैं।

प्राणायाम, शीर्षासन, मत्स्यासन तथा सर्वांगासन करने से यह स्वस्थ रहती है।

3. थाइराइड ग्रंथि (Thyriod Gland)–यह ग्रंथि श्वास नली के सामने गरदन के मूल में स्थित होती है। इस ग्रंथि का कार्य है रसायन क्रियाओं को सम रखना, पाचक रसों को बढ़ाना, विचार शक्ति व धारणा शक्ति बढ़ाना तथा कद बढ़ाने के साथ-साथ पुरुषत्व की वृद्धि, ज्ञानेन्द्रियों का विकास करना।

भुजंगासन, मत्स्यासन, हलासन तथा सर्वांगासन से इस ग्रंथि की कार्यक्षमता पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

4. लीवर (Liver)–लीवर अर्थात् यकृत ग्रंथि दायीं ओर पसलियों के नीचे पेट में स्थित होती है। इससे पित्त की उत्पत्ति होती है तथा खुराक के तत्त्वों का उचित बँटवारा होता है।

यह ग्रंथि पेट के रोगों को रोकती है तथा वात, पित्त तथा कफ को सम रखती है। सब नाड़ियों का मल दूर करके सब अंगों को शुद्ध करती है। सारे शरीर को गर्मी देती है।

सूर्य नमस्कार, योग मुद्रा, पश्चिमोत्तानासन आदि से इस ग्रंथि को स्वस्थ रखा जा सकता है।

5. गुर्दे (Kidney)–ये पेट की रीढ की हड्डी के दोनों ओर होते हैं। ये रक्त को शुद्ध करने का कार्य करते हुए मूत्र बनाते हैं, जिससे यूरिक एसिड शरीर से बाहर निकलता है।

भुजंगासन, धनुरासन व शलभासन आदि इनके स्वस्थ रखने में उपयोगी होते हैं

6. यौन ग्रंथियाँ (The Sex Gland)–ये यौन ग्रंथियाँ पुरुषों तथा स्त्रियों में अलग-अलग होती हैं। पुरुषों में यौन ग्रंथियों की स्थिति अंडकोशों में तथा स्त्रियों के अंडाशयों में होती है। पुरुषों की यौन ग्रंथियाँ एंड्रोजीन तथा स्त्रियों की यौन ग्रंथियाँ एस्ट्रोजीन नामक हारमोन उत्पन्न करती है। इनकी अधिक सक्रियता तथा निष्क्रियता दोनों ही शरीर के लिए हानिकारक है।

इन ग्रंथियों की कार्यक्षमता के उचित संपादन में प्राणायाम, धनुरासन, जानुसिरासन, गोरक्षासन, चक्रासन आदि यौगिक क्रियाएँ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

7. एड्रीनल ग्रंथि (Adrenal Glands)–यह ग्रंथि पेट में नाभि के बायीं ओर स्थित होती है। इस ग्रंथि का कार्य रक्त का प्रवाह बढ़ाना, पाचक रसों की वृद्धि तथा धमनियों की संकोचन शक्ति को बढ़ाना है। यह ग्रंथि पेट के रोगों को दूर करने तथा कब्ज को दूर करने का कार्य करती है।

मयूरासन इस ग्रंथि की सक्रियता बढ़ाने में सहायक होता है।

8. क्लोम (Cloume)–यह ग्रंथि पेट के मध्य में आमाशय के पास होती है। इसमें से पाचक रस निकलता है। खुराक के तत्त्वों को सब भागों में पहुँचाना, स्नायु शर्करा पूर्ति करना, प्रोटीन तथा चर्बी आदि तत्त्वों को शर्करा में बदलना आदि इस ग्रंथि के कार्य हैं।

यह ग्रंथि उड्डयन बंध, नौलि क्रिया आदि से प्रभावित होती हैं।

9. उत्पादक संस्थान (Reproductory Organs)–उत्पादक संस्थान जैसाकि नाम से स्पष्ट है, इसमें स्त्री व पुरुष में निहित वे अंश शामिल हैं जो संतानोत्पत्ति में सहायक होते हैं।

पुरुष में शिशन तथा अंडकोश तथा स्त्री में योनि तथा गर्भाशय उत्पादक संस्थान संबंधी महत्त्वपूर्ण अंग

होते हैं। इन अंगों की समुचित रूप से वृद्धि तथा इनकी क्रियाशीलता, यौन ग्रंथियों के उचित रूप से कार्य करने पर निर्भर करती है।

योग की विभिन्न क्रियाएँ तथा आसन उत्पादक संस्थान के लिए हितकर होते हैं।

चक्रासन व सर्वांगासन स्त्रियों को मासिक धर्म में होने वाली पीड़ा से आराम दिलवाता है।

धनुरासन से स्त्रियों के मासिक धर्म के विकार दूर होते हैं।

सुप्त वज्रासन से स्त्री व पुरुष दोनों के जनन अंग पुष्ट होते हैं।

10. स्नायु संस्थान (Nervous System)–मानव शरीर में त्वचा के नीचे धागों की तरह अनगिनत तंतुओं का जाल बिछा हुआ है, इन्हें नाड़ियाँ अथवा स्नायु कहते हैं। ये टेलीफोन की तारों के समान हैं, जो एक विशाल टेलीफोन व्यवस्था की तरह शरीर के प्रत्येक भाग से अपना संबंध रखता है। केवल अंतर इतना है कि टेलीफोन की एक तार संदेश ग्रहण करती है तथा संदेश भेजती भी है परन्तु शरीर में यह कार्य दो अलग-अलग नाड़ियों द्वारा किए जाते हैं।

शरीर के अन्य भागों से मस्तिष्क तक संदेश पहुँचाने का कार्य सांवेदनिक अथवा ज्ञानवाही नाड़ियाँ करती हैं तथा मस्तिष्क का संदेश मांसपेशियों तक पहुँचाने का कार्य गतिवाहक नाड़ियाँ करती हैं।

संपूर्ण स्नायु संस्थान को मुख्य रूप से दो भागों में बाँटा जा सकता है–

1. केन्द्रीय स्नायु संस्थान
2. संयोजक स्नायु संस्थान

केंद्रीय स्नायु संस्थान में मस्तिष्क, थेलेमस, सुषुम्नाशीर्ष, सुषुम्ना आदि शामिल होते हैं। मस्तिष्क तथा सुषुम्ना से युक्त केंद्रीय स्नायु संस्थान के आवरण के बाहर शेष सभी स्नायु नाड़ियाँ, संयोजक संस्थान के अंतर्गत आती हैं।

इस प्रकार प्रकृति ने शरीर का पूर्ण रूप से संगठन किया है। किसी प्रकार की इसमें त्रुटि नहीं रहने दी। यदि किसी भी अंग पर कोई हानिकारक प्रभाव पड़ता है तो सभी अंग मिलकर उसका मुकाबला करते हैं। पाँव में काँटा लगने पर मुँह से हाय निकलती है तथा काँटा निकालने में आँखें, हाथ, मस्तिष्क सभी कार्य करते हैं, जिससे काँटा निकाला जा सके।

इसी प्रकार जब शरीर में रोग आता है तब सभी संबंधित अंग उस रोग को शरीर से बाहर निकालने में लग जाते हैं। रोग होने की दशा में यदि हम दवाई से अथवा गलत खानपान से उसके मार्ग में रुकावट नहीं डालते तो विभिन्न अंग रोग को शरीर से बाहर निकालकर ही दम लेते हैं। शरीर के सभी अंग सुचारू रूप से कार्य करें इसके लिए योगासन पद्धति निश्चित रूप से लाभदायक है।

?
सम्भावित प्रश्न

1. मानव शरीर संस्थानों का संक्षेप में वर्णन करें।
2. मानव शरीर संस्थानों पर योग की भूमिका का वर्णन करें।

◆◆◆

PRACTICAL WORK

योगासन
[Yogasanas]

❖ योगासन–अर्थ तथा महत्त्व
(Yogasans–Meaning and Importance)

योगासन एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक तथा भावनात्मक दोषों का निवारण होता है तथा निरंतर अभ्यास से बल तथा पौरुष की वृद्धि होती है। योगासन के कारण व्यक्ति सर्वतोन्मुखी उन्नति करता है।

आसन का अर्थ–योगासन दो शब्द के मेल से बना है–योग + आसन। आसन शब्द संस्कृत भाषा का शब्द है जो आस् धातु से बना है। आस् का अर्थ होता है बैठना अथवा किसी विशेष स्थिति में स्थिर रहना। इस प्रकार बैठकर अथवा किसी स्थिति-विशेष में स्थिर रहकर योग-साधना करने की क्रिया को योगासन का नाम दिया जाता है।

महर्षि पतंजलि ने योगासन के संबंध में लिखा है 'स्थिरं सुखम् आसनम्'। शरीर की वह स्थिति, जिसमें साधक बिना कष्ट के सुखपूर्वक शारीरिक तथा मानसिक रूप से स्थिर एवं संतुलित रहकर योग-साधना में रत रह सकता है, आसन कहलाती है।

शरीर के सभी अंगों एवं संस्थानों को सबल एवं सक्षम बनाने में योगासनों का महत्त्वपूर्ण योगदान हो सकता है। थोड़े समय में सीमित शक्ति तथा साधनों का उपयोग करते हुए ये किसी भी व्यक्ति को उसके सर्वांगीण विकास का अच्छे से अच्छा मार्ग तय कराने में पूरी तरह समर्थ हैं। शरीर तथा मन को पूरी तरह नियंत्रण में रख उसे अपनी आध्यात्मिक उन्नति का माध्यम बनाने में योगासन व्यक्ति की पूरी-पूरी सहायता करते हैं। आसन के तीन अक्षर आ, स, न का आध्यात्मिक अर्थ भी है।

आ का अर्थ है–आत्मा आसन साधक को आत्मा से परिचित कराता है।

स का अर्थ है–सर्व अर्थात् सब। इसमें साधक सर्व जीव जगत् के हित की बात सोचता है क्योंकि उसे सब में एक ही आत्मा के दर्शन होते हैं।

न का अर्थ है–'नभ' यानी ब्रह्म से साक्षात्कार। इस रूप में साधक अपने आत्मस्वरूप को परमपिता परमेश्वर में लीन करने का प्रयत्न करता है।

योगासन के इन शब्दों के अर्थ की विवेचना करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि योगासन जैसी सुलभ एवं सहज साधना से साधक अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करके अपने अभीष्ट लक्ष्य (मोक्ष) को प्राप्त कर सकता है।

❖ आसन का महत्त्व
(Importance of Yogasan)

आसनों का हमारे जीवन में बहुत महत्त्व है। वर्तमान युग में व्यक्ति के पास इतना समय ही नहीं है कि वह अपने स्वास्थ्य की तरफ भी देखे। इस भाग दौड़ के जीवन में आराम से बैठकर शांत मन से भोजन तक नहीं कर सकता। अधिक समय काम करने से स्वास्थ्य खराब होना स्वाभाविक है। अधिकांश लोग तनावपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। ऐसी विकट स्थिति में यदि कोई सरल तथा सुलभ साधन दिखाई देता है तो वह है–योगासन।

विभिन्न प्रकार के आसनों से हमें स्वास्थ्य को बनाए रखने तथा मन को शांत रखने की शक्ति प्राप्त होती है। कुछ आसन तो ऐसे हैं जिनका प्रतिदिन अभ्यास करते रहने पर व्यक्ति को विशेष प्रकार की ऊर्जा प्राप्त होती है जिससे मन-मस्तिष्क पर पड़ने वाले सभी दबाव समाप्त हो जाते हैं तथा विवेक की उत्पत्ति होती है।

आसन व्यक्ति को सुंदर, स्वस्थ तथा बलिष्ठ शरीर प्रदान करते हैं। आसनों की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इस सिद्धांत का निरंतर अभ्यास करने से व्यक्ति को अनेक प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

शरीर की टूट-फूट व उसके कार्य करने से जो विकार पैदा होता है तथा भोजन के पचने के पश्चात् अवशिष्ट के रूप में जो मल शरीर में एकत्रित होता है, उसे शरीर चार मार्गों से बाहर निकालता है। यदि ऐसा न हो तो शरीर में इतने विकार हो जाएँ जिनकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

अवशिष्ट मल को बाहर निकालने के चार मार्ग–

1. नाक से श्वास द्वारा कार्बन डाईऑक्साइड बाहर निकालती है।
2. गुदा से मल बाहर निकलता है।
3. लिंग से मूत्र द्वारा अपशिष्ट पदार्थ शरीर से बाहर निकलता है।
4. त्वचा से पसीने द्वारा। इन चारों मार्गों से अवशिष्ट तथा अनावश्यक तत्त्व शरीर से बाहर निकलते हैं।

ये विकृत अथवा विजातीय तत्त्व यदि शरीर में रह जाएँ तो कितने ही प्रकार के रोग शरीर में उत्पन्न हो जाएँ।

इन विकारों को दूर करने में योगासन पद्धति का बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान है। सिद्धासन जैसे ऐसे बहुत से योगासन हैं जिनके द्वारा आत्मा का परमात्मा से साक्षात्कार हो सकता है। इससे यह तथ्य तो स्वतः सिद्ध हो जाता है कि आसनों के सतत अभ्यास से अपने परम लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं। अतः आसनों का महत्त्व अवर्णनीय है।

अब कुछ महत्त्वपूर्ण आसनों पर विचार करेंगे। जिससे आसनों के संबंध में व्यावहारिक जानकारी प्राप्त हो सके। इसके साथ ही आसनों की उपयोगिता की जानकारी भी मिल सके।

❖ शवासन (Shavasana)

शवासन का दूसरा नाम 'मृतासन' भी है। यह आसन ध्यान, प्राणायाम, जप आदि से बहुत उपयोगी है। यह आसन सभी आसनों के आरंभ में किया जाता है। यह आसन सभी आसनों के आरंभ में ही नहीं वरन् मध्य तथा अन्त में भी किया जाना चाहिए।

चित्र : शवासन

यह आसन सभी स्नायु तथा नाड़ियों के आराम के लिए किया जाता है। सबसे सरल लगने वाला यह आसन सिद्ध करना बहुत कठिन है। इस आसन में मन को शरीर से मुक्त करने का प्रयत्न किया जाता है। कम से कम समय में अधिक से अधिक आराम प्राप्त करने की यह एक यौगिक पद्धति है। आधुनिक युग में शिथिलीकरण (Relaxation) अत्यन्त आवश्यक है। वर्तमान युग में भाग-दौड़, स्पर्धा तथा आपा-धापी बढ़ती जा रही है परिणामस्वरूप तनाव भी बढ़ता जा रहा है।

तनावपूर्ण जीवन से मुक्ति का अमोघ अस्त्र यदि कोई है तो वह है–शवासन।

पद्धति अथवा विधि–पीठ के बल लेट जाइए। पैरों में एक फुट का फासला, हथेलियाँ आकाश की ओर, शरीर से थोड़ी अलग, शरीर सीधा परन्तु ढीला होना चाहिए।

शवासन तीन भागों में किया जाता है–

1. शरीर का प्रत्येक अंग ढीला होना चाहिए। पैर के पंजों को हिलाकर भी ढीला करें। इससे पैर की नसें ढीली होंगी। कंधों को हिलाएँ। इससे धड़ ढीला होगा। गर्दन को हिलाएँ। इससे मस्तिष्क की नसें ढीली होंगी। मन में यह भाव लाएँ कि मेरा पूरा शरीर ढीला हो रहा है।
2. साँस जैसे आता है तथा जाता है उसे आने-जाने दें। इससे साँस अपने आप सामान्य होगा। साँस जितना सूक्ष्म होगा, उतना अधिक अपने आपको शिथिल कर पायेंगे।
3. पैर के अंगूठे से लेकर सिर की चोटी तक एक-एक अंग को मन की आँख से निहारें, बिल्कुल वैसे ही जैसे खड़ा व्यक्ति लेटे व्यक्ति को देखता है। सारी इन्द्रियों को केन्द्रित करें। इससे मन व शरीर विश्राम में आता है।

शवासन में मन ही मन 'ॐकार' का रटन करें। आत्मा का विचार करें। परमात्मा का ध्यान धरें। कम से कम 10-15 मिनट तक ध्यान धरें। इससे आपको एक ऐसी संपूर्ण शांति, आराम तथा संतोष का अनुभव होगा जिसका शब्दों में वर्णन संभव नहीं है। जिन लोगों को मानसिक संघर्ष अथवा हृदय रोग हो, उन्हें नियमित रूप से केवल शवासन ही करना चाहिए।

दायीं तथा बायीं करवट का शवासन–शवासन के इस प्रकार में स्वर विज्ञान को आधार बनाया गया है। बायाँ श्वास शरीर को ठंडक देता है तथा दायाँ गर्मी। जब आप दायीं करवट लेटते हैं तो बायाँ श्वास चलता है तथा जब आप बायीं करवट लेटते हैं तो दायाँ श्वास चलता है।

शवासन करने के लिए पहले दायीं करवट लेटें। दायीं कोहनी का तकिया बनाकर उसे सिर के नीचे रखें। दूसरा हाथ कमर पर, टाँग थोड़ी-सी मुड़ी हुई हो, जिससे नीचे का भाग भी शिथिल हो जाए। एक दो मिनट लेटकर फिर बायीं करवट लेटें।

भोजन करने के पश्चात् कुछ समय के लिए बायीं करवट लेटने से भोजन अच्छी तरह पच जाता है। शवासन सब आसनों में महत्त्वपूर्ण आसन है। इसके लिए पूरे अभ्यास की आवश्यकता है। प्रत्येक आसन के पश्चात् शवासन करें।

शवासन के लाभ–

1. सोने से पूर्व प्रतिदिन कुछ समय के लिए शवासन करने से रात को नींद अच्छी आती है।
2. इस आसन में आसन तथा ध्यान दोनों का समन्वय होता है। इससे तन तथा मन दोनों को शांति मिलती है।
3. शवासन से शरीर के सभी स्नायुओं को राहत तथा आराम मिलता है।
4. शारीरिक तथा मानसिक रूप से जिन्हें शीघ्र थकावट हो जाती है, उन्हें इस आसन से नई शक्ति तथा उत्साह मिलता है।
5. न्यून अथवा अधिक रक्त चाप, नाड़ियों की दुर्बलता तथा गैस जैसे रोगों से छुटकारा दिलाने में यह आसन सहायक होता है।
6. हृदय की तकलीफ तथा मानसिक रोगियों के लिए शवासन बहुत लाभदायक है।
7. इस आसन से शरीर में शुद्ध रक्त का संचार होता है तथा शरीर में नवजीवन आता है।
8. यदि इस आसन को निरंतर किया जाए तो इससे क्रोध शांत होता है।

ऊपर वर्णित लाभों के कारण प्रत्येक योगाभ्यासी को यह आसन प्रतिदिन अवश्य करना चाहिए।

❖ सर्वांगासन
(Sarvangasana)

सर्वांगासन अर्थात् सब अंगों का आसन। इसीलिए इस आसन को सर्व-अंग-आसन कहा जाता है। यह आसन एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण आसन है क्योंकि इस आसन में शरीर के सभी अंग आसन करने में सक्रिय रहते हैं। सभी अंगों की सक्रियता के कारण ही इसे सर्वांगासन कहा जाता है।
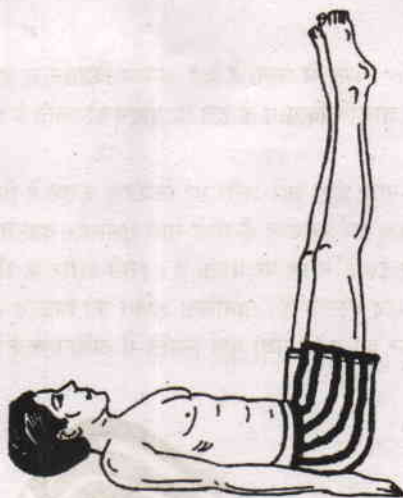
चित्र : सर्वांगासन

इस आसन में जब हम गर्दन से शरीर को उल्टा कर पाँव ऊपर कर लेते हैं तो शिराओं को हृदय की ओर रक्त को दौड़ाने में सुविधा मिलती है, जिससे शिराएँ शुद्ध व साफ हो जाती हैं। इससे शरीर की सुंदरता बढ़ती है। ग्रीवा में दबी हुई दूलिका ग्रंथी सक्रिय हो जाती है। यह ग्रंथि सारे शरीर का संतुलन बनाती है।

विधि अथवा पद्धति–इस आसन में पीठ के बल सीधे लेट जाइए। इसके बाद दोनों नथुनों से फेफड़ों में साँस भरकर दोनों पैरों को एक साथ धीरे-धीरे ऊपर की ओर उठाइए। पाँवों को तान कर धीरे-धीरे हाथों पर दबाव देते हुए 90 अंश तक ले जाइए। यहाँ पर कुछ क्षण रुककर श्वास बाहर निकालते हुए कमर को उठाते हुए टांगों को भूमि के समानांतर करें। दोनों हाथों का सहारा पीठ को दें। हाथ जितने नीचे रहेंगे पीठ उतनी ही सीधी होगी। अब धीरे से दोनों पांवों को आकाश की ओर उठा दें। ठोड़ी कंठकूप में। कंधों से लेकर पांव की उंगलियों तक शरीर सक सीध में रहे। कोहनियाँ अंदर की ओर रहें। पांवों को ढीला करें। पूर्ण सर्वांग में आने पर श्वास स्वाभाविक स्थिति में लें।

इस आसन का धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाते हुए 10 मिनट तक कर सकते हैं। वापिस आते हुए भी कोई झटका न लगे। पहले अपनी टांगों को भूमि के समानांतर करें। फिर पीठ को लगाते हुए 90 अंश तक लाएँ तथा श्वास भर कर पाँवों को धीरे-धीरे भूमि पर ले आएँ। नीचे आते ही विश्राम करें। ध्यान विशुद्धि चक्र पर हो।

लाभ–

1. सर्वांग आसन मधुमेह तथा बवासीर की बीमारी में लाभकारी है। यह आसन मूत्राशय की बीमारी में भी उपयोगी होता है।
2. इस आसन से रक्त का संचार संतुलित रहता है।
3. स्त्रियों के लिए मासिक धर्म के रोगों में विशेष लाभदायक है।
4. यह आसन मेरूदण्ड की स्थिति स्थापकता बनाए रखता है तथा मेरूदण्ड में जड़ता नहीं आने पाती।

5. यह आसन स्वप्न दोष को रोक कर ब्रह्मचर्य के पालन में सहायक।
6. यह आसन नाड़ी तंत्र तथा पाचन तंत्र के लिए तात्कालिक उपलब्ध होने वाला एकमात्र टॉनिक है।
7. यह आसन कुंडलिनी को जागृत तथा पाचक रसों को प्रज्वलित करता है।
8. यह आसन शरीर को नीरोगी बना कर स्फूर्ति प्रदान करता है।

❖ हलासन (Halasana)

हलासन जैसा कि नाम से स्पष्ट हो जाता है यह आसन किसान के हल के समान है। इस आसन को करते समय मनुष्य के शरीर की आकृति किसान के हल के समान हो जाती है। इसलिए इसे हलासन कहा जाता है।

हमारा मस्तिष्क सुषुम्ना नाड़ी द्वारा सारे शरीर पर नियंत्रण करता है। सुषुम्ना नाड़ी सिर के पिछले भाग में स्थित लघु मस्तिष्क में से निकल कर मेरूदण्ड के साथ-साथ मूलाधार चक्र तक जाती है। इस आसन से सबसे अधिक प्रभाव स्नायु मंडल तथा इसके स्त्रोत पर पड़ता है। इससे शरीर के भीतरी तथा बाहरी भागों पर भली प्रकार नियंत्रण प्राप्त करने में मदद मिलती है। मानसिक शक्ति का विकास होता है। सारे चक्र प्रभावित होते हैं। जितना धीरे-धीरे इस आसन को करेंगे तथा पूर्ण स्थिति में अधिक रुकेंगे, उतना अधिक लाभ होगा।

चित्र : हलासन

आसन की पद्धति अथवा विधि–इस आसन के लिए पीठ के बल सीधे जमीन पर लेट जाएँ। दोनों पैर सीधे तथा आपस में मिले हुए हों। हाथ सीधे शरीर के साथ लंबाई में चिपके हुए हों। हथेलियों का रुख जमीन की ओर होना चाहिए।

धीरे-धीरे साँस भरते हुए पैरों को ऊपर की ओर 90 अंश के कोण तक ले जाएँ। ऊपर पहुँच जाने पर साँस छोड़ दें।

पैरों को सीधा रखते हुए सिर के पीछे ले जाएँ। पैरों के पीछे की भूमि पर बिना पैर मोड़े पंजे टेक दें। अब फिर साँस भरें तथा कंधे तथा कमर को भूमि पर टेकते हुए 90 अंश का कोण बनाएँ। साँस भी लेते रहें।

दुबारा साँस भरें, पैरों को सिर के पीछे से उठाकर धीरे-धीरे आगे ले आएँ तथा साँस पूरी तरह से छोड़ कर शरीर को शिथिल अवस्था में रहने दें।

लाभ–

1. हलासन से सभी पाचन अंगों व रीढ के एक-एक मोहरे का व्यायाम होता है। लचक आती है तथा पुष्ट होते हैं।
2. इस आसन से गले की ग्रंथियों को लाभ पहुँचाता है।

3. नाड़ी संस्थान सतेज व स्वस्थ होता है। शरीर संतुलन में आता है, पेट व कमर की चर्बी कम होती है।
4. इस आसन से रक्त संचार तेज होता है तथा भूख बढ़ती है।
5. इस आसन से रक्त परिभ्रमण अच्छी तरह होने से चेहरे के तंतुओं में सक्रियता आती है, फलस्वरूप चेहरे पर यौवन की चमक छा जाती है।
6. स्थायी कब्ज, वायु गोला, यकृत तथा पलीहा के संकुचन-विस्तरण दूर हो जाते हैं।
7. इस आसन से मेरूदण्ड कोमल तथा स्थिति स्थापक रहता है। अतः नियमित रूप से हलासन करने वाला व्यक्ति त्वरित गतिशील, फुर्तीला तथा पूर्ण सशक्त रहता है।
8. इस आसन से पेट के स्नायु सशक्त बनते हैं।
9. मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य के लिए हलासन सर्वोत्तम है।

❖ पश्चिमोत्तानासन (Paschimotonasana)

पश्चिमोत्तानासन जानु शिरासन का विकसित तथा विस्तृत रूप है। इस आसन को उग्रासन भी कहा जाता है। उग्र शब्द का अर्थ है—शिव तथा भगवान् शिव हैं—संहार के प्रतीक अर्थात् संहार कर्त्ता, इसलिए वे उग्र अथवा भयंकर नामों से भी प्रसिद्ध हैं। यह आसन बहुत कठिन होने के कारण उग्रासन के नाम से भी जाना जाता है।

उग्रासन नाम के अतिरिक्त शाब्दिक अर्थ के अंतर्गत पश्चिम कहते हैं पीठ के भाग को और पश्चिमोत्तानासन अर्थात् पीठ के भाग को तानना। पूरा नाड़ी संस्थान पीठ से होकर ही सारे शरीर में फैलता है, इसलिए इस आसन को करने में समूचा नाड़ी संस्थान सक्रिय हो जाता है। कमर के ऊपर का भाग जंघाओं पर लाने से पाचन संस्थान दबता है, इसलिए इस आसन से पूरा नाड़ी संस्थान तथा पाचन संस्थान प्रभावित होता है।

चित्र : पश्चिमोत्तानासन

आसन की विधि–दोनों पैरों को सीधा बिना मोड़े सामने की ओर फैलाते हुए जमीन पर बैठ जाएँ। ध्यान रहे कि मेरूदण्ड, गर्दन व कंधे सीधे रहें। पूरक करते समय दोनों हाथों को बिना मोड़े ऊपर की ओर तान दें। अब धीरे-धीरे साँस छोड़ते हुए दोनों हाथों से पैर के अंगूठों को पकड़ने का प्रयास करें। आरम्भ में आसन लगाते समय इतना ही करें क्योंकि घुटनों के नीचे दर्द होने की संभावना हो सकती है।

अभ्यस्त हो जाने पर सिर के अगले भाग से घुटनों को छूने का प्रयास करें। ऐसी स्थिति में सिर दोनों बाजुओं के बीच रहता है।

पूरक दोहराते हुए अब मेरूदण्ड को सीधा करें। रेचक करते हुए पुनः घटनों पर नाक, सिर का अगला भाग लगाएँ। अभ्यस्त हो जाने पर यदि घुटनों पर सिर रख कर लम्बे समय तक रुकने का मन करे तो श्वास-प्रश्वास सामान्य रहनी चाहिए।

आरम्भ में इस आसन को एक से तीन मिनट का समय दिया जाना चाहिए। अभ्यास हो जाने पर समय बढ़ाया भी जा सकता है।

आसन के प्रभाव अथवा लाभ–

1. इस आसन से जठराग्नि प्रज्वलित होती है, जिसके कारण भूख बढ़ती है।

2. यह आसन से तिल्ली व यकृत के विकार दूर होते हैं।
3. यह मोटापा, श्याटिका, बवासीर तथा कमर दर्द में रामबाण दवा है।
4. शरीर में लचक पैदा होती है।
5. इस आसन से नाड़ी संस्थान पुष्ट होते हैं।
6. इस आसन से मूत्राशय, जठर, पित्ताशय आदि पेट के अवयव क्रियाशील बनते हैं।
7. इस आसन से जोड़ों में स्थिति स्थापकता आती है।
8. शरीर सुडौल तथा गठीला बनता है तथा पैर के स्नायु सशक्त बनते हैं।
9. इस आसन से हिचकी के रोग में आराम मिलता है।
10. यह आसन श्वास को ब्रह्मनाड़ी सुषुम्ना में से प्रवाहित करता है।

यह एक बड़ा ही अच्छा आसन है।

❖ भुजंगासन (Bhujangasana)

संस्कृत भाषा में भुजंग शब्द का अर्थ साँप होता है। भुजंग आसन करते समय शरीर की आकृति साँप के समान हो जाती है। इस आसन में ऊपर की ओर हुए सिर और नीचे स्थित धड़ से ऐसा लगता है मानों साँप फन उठाए हुए हो। संभवतः इसी कारण इस आसन का नाम भुजंग आसन पड़ा है।

इस आसन की तीन अलग-अलग परिस्थितियाँ हैं–

1. पहली स्थिति–पेट के बल जमीन पर लेट जाएँ। पैर के अंगूठे जीमन पर टिके रहें। दोनों हाथों की हथेलियाँ जमीन पर लगी हुईं, पसलियों से एक फुट की दूरी पर रहें।

गहरी साँस भरते हुए सीना व गर्दन धीरे-धीरे ऊपर की ओर उठाएँ। साँप की तरह फुँफकारते हुए मुँह से तेजी से साँस छोड़ें। साँस छोड़ते समय दांत आपस में सटे रहें तथा होंठ ही खुलें। जिस समय साँस भरें तो गर्दन सहित नाभि तक का शरीर ऊपर उठाया जाता है।
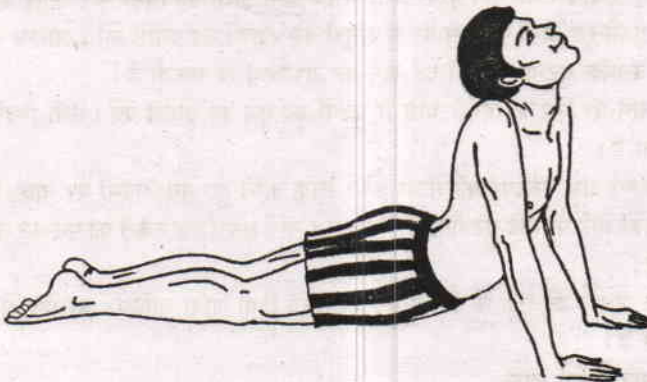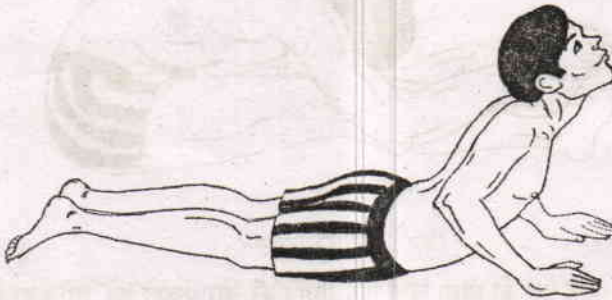
चित्र : भुजंगासन

2. दूसरी तथा तीसरी स्थिति–भुंजग आसन की दूसरी तथा तीसरी विधि अथवा स्थिति लगभग एक समान है। दूसरी स्थिति में भी पेट के बल लेट जाएँ। दोनों हाथों को सीने से लगभग आधा फुट की दूरी पर रखें। साँस भरते हुए गर्दन तथा छाती को लगभग आधा फुट की ऊँचाई तक उठाएँ। नाभि तक के शरीर को हवा में रखते हुए हथेलियाँ जमीन पर टिकाएँ तथा कोहनियाँ सीधी रखें। सर्प की तरह फुफकार छोड़ते हुए गर्दन, छाती व शरीर पृथ्वी पर शिथिल छोड़कर विश्राम करें।

3. ठीक इसी प्रकार धीरे-धीरे तीसरी स्थिति को भी करें।

भुजंग आसन का शरीर पर प्रभाव अथवा लाभ–

1. इस आसन में श्वास व प्रश्वास की प्रधानता होने के कारण अधिकाधिक प्राण वायु को ग्रहण किया जाता है। फेफड़ों से अशुद्ध वायु निकल कर शुद्ध वायु का प्रवाह होता है, जिससे रक्त शोधन होता है।
2. इस आसन में मेरूदण्ड पर विशेष प्रभाव पड़ता है, जिससे कमर का दर्द तथा अनावश्यक चर्बी दूर होती है।
3. इस आसन से गुर्दों को विशेष रूप से लाभ मिलता है।
4. टौंसिल व गले की ग्रंथियों को बल मिलता है, जिससे शरीर में यौवनपूर्ण लचक पैदा होती है।
5. पीठ, छाती, हृदय, गर्दन, कंधे व पेशियाँ शक्तिशाली बनती हैं।
6. हृदय रोग तथा सर्वाईकल रोगों के लिए रामबाण है।
7. यह आसन मुख्यतः स्त्रियों के बीजाशय एवं गर्भाशय को पुष्टि देने में अत्यन्त सहायक सिद्ध होता है तथा मासिक धर्म संबंधी तकलीफें दूर करता है। यह आसन करने से गर्भाशय में रक्त परिभ्रमण पर्याप्त मात्रा में होता है। फलस्वरूप प्रसव अत्यन्त प्राकृतिक रूप से तथा सरलता से होती है।

❖ शलभासन
(Shalabhasana)

शलभासन में मानव शरीर की आकृति पतंगे जैसी हो जाती है। इसी कारण इस आसन को शलभासन कहा जाता है। शलभ का शाब्दिक अर्थ है–पतंगा।

यह आसन एक पैर से भी किया जाता है तथा दोनों पैरों को एक साथ ऊपर उठाकर भी इस आसन को किया जा सकता है।

चित्र : शलभासन

जब यह आसन एक पाँव से किया जाता है तब उसे अर्ध शलभासन कहा जाता है।

जब यह आसन दोनों पैरों को एक साथ उठाकर किया जाता है तब उसे पूर्ण शलभासन कहा जाता है।

अर्ध शलभासन की पद्धति अथवा विधि–मुँह नीचे की ओर रखकर भूमि पर औंधे लेट जाइए। दोनों हाथ बगल में रखिए। हाथ की मुट्ठियाँ बंद रखें। हाथों को जंघाओं के नीचे भी रखा जा सकता है। थोड़ी साँस लें। जब तक यह आसन करें तब तक साँस रोके रखिए। शरीर को तना हुआ रखकर किसी भी एक पैर को लगभग 30 सें.मी. ऊपर उठाएँ। इसमें पैर ऊपर उतना ही उठाएँ जितना आप आसानी से उठा सकते हैं। पैर के तलवे को खींचिए। पाँच से 7 सैकेंड तक इस स्थिति में रहें। फिर पैर को धीरे-धीरे नीचे की ओर लाइए। अत्यन्त धीमे से साँस छोड़ें। यह क्रिया दूसरे पैर से भी करें।

पूर्ण शलभासन–प्रथम प्रकार की अर्थात् अर्द्ध शलभासन की विधि अथवा स्थिति ग्रहण कीजिए। अर्द्ध शलभासन में एक पैर उठाया जाता है जबकि पूर्ण शलभासन में दोनों पैरों को एक साथ ऊपर उठाया जाता है।

लाभ–

1. शलभासन से बदहजमी, वायु-अपच आदि पेट-संबंधी रोग दूर होते हैं। उदर पर इसका विशेष प्रभाव पड़ता है। शरीर के निचले भाग को मजबूत बनाता है।
2. इस आसन से पुट्ठे मजबूत होते हैं तथा मोटापा दूर होता है।
3. यह आसन कंधे, फेफड़े तथा हृदय को स्वस्थ करता है तथा हृदय रोगों से बचाता है।
4. इस आसन से मेरूदण्ड तथा नस-नाड़ियाँ प्रभावित होती हैं।
5. यह आसन जठर, पित्ताशय, पलीहा, मूत्राशय तथा आँतों के रोगों को दूर करता है।
6. यह आसन जठराग्नि सतेज करता है तथा मंदाग्नि दूर करता है।
7. स्त्रियों को रजो दर्शन के समय कन्द स्थान में होने वाली वेदना भी इस आसन से मिट जाती है।
8. पैरों की सूजन मिटती है।
9. इससे जलोदर का रोग सदा के लिए मिट जाता है। भंगदर यदि आरंभिक स्थिति में हो तो उसे ठीक करने में यह प्रभावशाली होता है।

❖ धनुरासन (Dhanurasana)

धनुरासन करते समय शरीर की आकृति धनुष के समान हो जाती है। मेरूदण्ड धनुष के समान मुड़ती है तथा हाथ धनुष की डोरी के समान होते हैं। इसलिए इसे धनुरासन कहा जाता है।

यह आसन रीढ को पीछे की ओर मोड़ता है। यह आसन भुजंगासन तथा शलभासन का संयुक्त रूप है। भुजंगासन, शलभासन तथा धनुरासन मिलकर अत्यन्त मूल्यवान सम्मिश्रण बनता है।

आसनों की यह त्रिपुरी रीढ को आगे की ओर मोड़ने वाले हलासन तथा पश्चिमोत्तासन के विपरीत कार्य करती है।

चित्र : धनुरासन

आसन की विधि–जमीन पर पेट के बल लेट जाएँ। स्नायु को शिथिल कर दें। दोनों हाथ बगल से सटाकर रखें। दोनों पैरों को घुटनों से मोड़कर नितम्बों पर टेक दें। दोनों पैरों के टखनों को हाथों से पूरी मजबूती से पकड़ लें। पैरों को पकड़े रहें तथा वापस जमीन की तरफ लाने की कोशिश करें। उस आसन को करते समय

घुटने, जांघें तथा छाती तक का भाग जमीन से ऊपर उठा रहता है। केवल पेट ही भूमि पर टिका रहता है। इसलिए खाली पेट ही यह आसन करें। धनुषाकार शरीर को धीरे-धीरे आगे पीछे तथा दाएँ-बाएँ हिलाकर व्यायाम किया जा सकता है। जितने समय तक यह आसन कर सकें, उतने समय तक ही करें।

आरंभ में इस आसन को आधा मिनट से आरंभ करके तीन मिनट तक किया जा सकता है। इस आसन में पैरों को पकड़ कर खींचते समय गहरी साँस भरें तथा आगे की ओर झूलते समय साँस को बाहर छोड़े। कम से कम एक सप्ताह के अभ्यास के पश्चात् इस आसन से आप पूरे शरीर की मांसपेशियों में सुखद खिंचाव तथा स्फूर्ति अनुभव करेंगे।

स्वास्थ्य पर प्रभाव अथवा लाभ–

1. इस आसन से मेरूदण्ड लचीला तथा मजबूत होता है।
2. गर्दन तथा कमर पर एकत्रित अनावश्यक चर्बी खत्म होती है।
3. यकृत, गुर्दे, अग्नाशय तथा आँतों की कार्य शक्ति में मजबूती आती है।
4. इस आसन से यदि नाभि अपने स्थान से हट गई है तो पुनः अपने स्थान पर आ जाती है।
5. इस आसन के अभ्यास से शरीर के समस्त अंगों का व्यायाम होता है, मोटापा कम होता है।
6. मधुमेह के रोगियों के लिए यह आसन रामबाण दवा है। गैस तथा आँतों के मरीजों के लिए भी यह आसन आशीर्वाद स्वरूप है।
7. स्त्रियों के लिए यह आसन बड़ा लाभप्रद है क्योंकि इससे मासिक धर्म की अनियमितता तथा प्रजनन तंत्र की तकलीफें दूर होती हैं।

❖ चक्रासन
(Chakrasana)

चक्रासन में रीढ चक्र जैसा आकार धारण करती है। इसलिए इसे चक्रासन कहा जाता है। वास्तव में तो यह आसन चक्र की अपेक्षा अर्द्ध गोल अथवा इन्द्रधनुष से अधिक मिलता जुलता है।
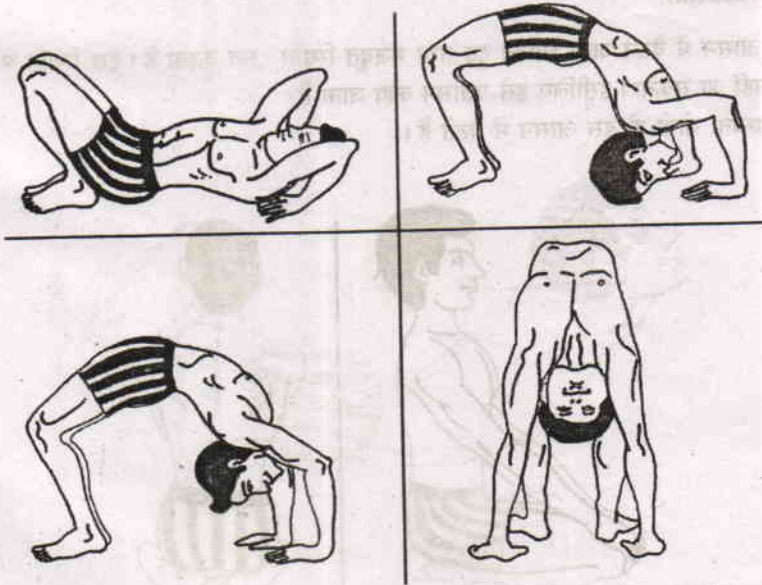
चित्र : चक्रासन

पद्धति–भूमि पर चित्त लेट जाइए। दोनों पैरों को घुटनों से मोड़कर नितम्ब के पास इस प्रकार रखें, जिससे पैर के तलवे भूमि पर स्पर्श करते रहें। दोनों पैरों के बीच का अंतर चार से छह इंच जितना रखें। दोनों हाथों को कुहनियों से मोड़कर मस्तिष्क के दोनों तरफ भूमि पर रखें।

साँस को भीतर को खींचिए तथा कमर से मस्तक तक का शरीर का पीछे का भाग ऊपर की ओर उठाइए। साँस लेने छोड़ने की क्रिया जारी रखिए। मस्तक को यथा संभव पीठ की ओर मोड़िए। दोनों हाथ सीधे रहें। शरीर को स्थिर रखिए तथा हाथ-पैरों को अपने स्थान से मत हटाएँ। पीठ का भाग यथाशक्ति ऊपर की ओर उठाने का प्रयास करें। लगभग एक मिनट तक इसी स्थिति में रहें।

आरंभ में साधक के हाथों व पैरों का अंतर अधिक होता है। धीरे-धीरे अभ्यास होने पर शरीर में लचीलापन आने पर फासला कम हो जाता है।

आसन का शरीर पर प्रभाव अथवा लाभ–

1. इस आसन से मेरूदण्ड पर विशेष प्रभाव पड़ता है। आसन से रीढ की हड्डी का संकुचन दूर होता है तथा लचीलापन बढ़ता है तथा सारा शरीर रबड़ के समान लचीला बन जाता है।
2. पैर व हाथ की मांसपेशियाँ व स्नायु तंत्र विकसित होता है।
3. अवरुद्ध धमनियों पर खिंचाव पड़ने के कारण सुचारु रूप से रक्त संचार होता है।
4. पूरे शरीर में लचीलापन बढ़ने के साथ-साथ पेट तथा कमर पर जमी अनावश्यक चर्बी दूर होती है। इससे मोटापा कम होता है।
5. इस आसन से पाचन तंत्र ठीक रहता है, जिससे रक्त का संतुलन बना रहता है।
6. स्त्रियों को मासिक धर्म में होने वाली पीड़ा में लाभ मिलता है।
7. सिर, गर्दन तथा पाँवों में कम्पन का रोग नहीं होता।
8. यह आसन सर्वांगासन का पूरक है। यदि सर्वांगासन के अंत में गर्दन अथवा कंधे में किसी भी प्रकार की पीड़ा हो तो फौरन कुछ मिनटों के लिए यह आसन करें।

❖ वज्रासन
(Vajrasana)

इस आसन में बैठने वाला व्यक्ति दृढ़ तथा मजबूत स्थिति ाप्त करता है। इस स्थिति में सरलता से हिला-डुला नहीं जा सकता। इसीलिए इसे वज्रासन कहा जाता है।

सामान्यतः योगी ही इस आसन में बैठते हैं।
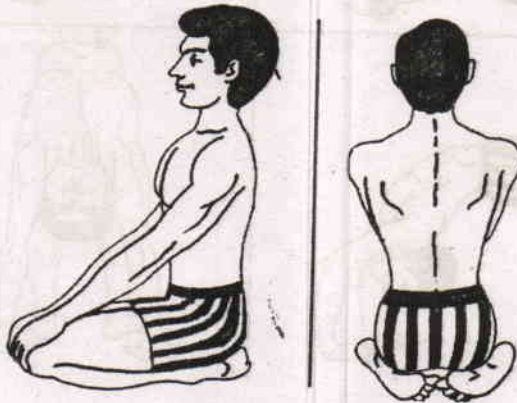
चित्र : वज्रासन

आसन की विधि अथवा पद्धति–दोनों पैरों को मोड़कर नितम्ब के नीचे इस प्रकार रखें कि एड़ियाँ बाहर की ओर निकली हुई तथा पंजे नितम्ब से लगे हुए हों।

इस स्थिति में पैरों के अंगूठे एक दूसरे से मिले हुए होने चाहिएँ। गर्दन तथा सिर सीधे रहें। घुटने मिले हुए हों तथा हाथों को घुटनों पर रखें।

इस आसन के अभ्यास के दौरान श्वासोच्छ्वास जारी रखिए।

प्रारंभ में संभवतः घुटनों तथा टखनों में दर्द होगा किन्तु बाद में यह दर्द बहुत जल्द अपने आप दूर हो जाएगा।

अभ्यास होने पर इस आसन में काफी लम्बे समय तक आराम से बैठा जा सकता है।

आसन के शरीर पर प्रभाव अथवा लाभ–

1. यह एक आध्यात्मिक आसन है जो मन की चंचलता को दूर करता है।
2. यह आसन निरंतर करने से घुटनों, पैरों, पंजों तथा जांघों में होने वाला दर्द दूर होता है।
3. नियमित रूप से इस आसन को करने वाला व्यक्ति ज्वर, कब्ज, मंदाग्नि तथा अजीर्ण आदि छोटे-बड़े किसी भी रोग से पीड़ित नहीं होता।
4. इस आसन के प्रयोग से वज्र नाड़ी, जिसे वीर्य धारा नाड़ी भी कहा जाता है, मजबूत होती है तथा वीर्य की गति ऊर्ध्व होने से शरीर वज्र जैसा बनता है।
5. रक्त संचार ठीक करने में भी इसका काफी योगदान रहता है।
6. कुछ विशेष रोगों जैसे पीलिया, अतिसार, पीठ दर्द, छाती की बीमारियाँ, स्त्रियों के मासिक धर्म संबंधी रोग, पैरों तथा कमर का वात रोग आदि में इस आसन से काफी लाभ पहुँचता है।
7. यही एक ऐसा आसन है जो भोजन करने के पश्चात् भी किया जा सकता है। इस आसन के करने से पाचन शक्ति में वृद्धि होती है तथा कब्ज दूर होती है।

❖ सुप्तवज्रासन
(Supat Vajrasana)

इस आसन की स्थिति आधे शवासन के समान है। यह आसन कुछ अंशों में मत्स्यासन के वर्ग का माना जा सकता है।

वज्रासन में निपुणता प्राप्त करने के पश्चात् ही यह आसन किया जाना चाहिए। यह आसन वज्रासन की तुलना में अधिक बल प्रदान करता है।
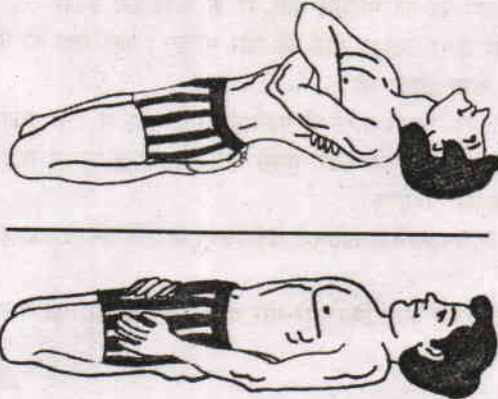
चित्र : सुप्त वज्रासन (1, 2)

सुप्तवज्रासन की विधि–वज्रासन में बैठकर हाथों को पार्श्व भाग में रखकर उनकी सहायता से शरीर को पीछे झुकाते हुए भूमि पर सिर को टिका दें। घुटने मिले हुए हों तथा भूमि पर टिके हुए हों।

धीरे-धीरे कंधों, गर्दन तथा पीठ को भूमि पर टिकाने का प्रयास करें। हाथों को जंघाओं पर सीधा रखें। आरम्भ में पीठ का पूरा हिस्सा भूमि का स्पर्श नहीं करेगा, नीचे का हिस्सा उठा रहेगा।

थोड़े दिनों के अभ्यास के पश्चात् यह आसन सुविधापूर्वक हो सकता है।

इस आसन को दिन में तीन-चार बार किया जा सकता है।

आसन के शरीर पर प्रभाव अथवा लाभ–

1. इस आसन से पेट के नीचे वाला भाग खिंचता है, जिससे बड़ी आँत सक्रिय होती है। इससे कोष्ठबद्धता मिटती है।
2. नाभि का टलना दूर करता है।
3. यह आसन गुर्दो के लिए भी लाभप्रद है।
4. नियमित रूप से यह आसन करने से कुंडलिनी शक्ति आसानी से ऊर्ध्वगमन करने लगती है।
5. इस आसन में रीढ पीछे की ओर मुड़ती है। इससे पीठ की कूबड़ नष्ट हो जाती है। रीढ स्थिति स्थापक बनती है।
6. मधुप्रमेह से पीड़ित लोगों को इस आसन से विशेष लाभ होता है।
7. यह आसन बुढ़ापे का दुश्मन है। इसके द्वारा स्त्री, पुरुष के गुप्तांगों में दृढ़ता आती है तथा संबंधित हारमोनस के सक्रिय होने में भी सहायता मिलती है।
8. यह आसन पेट, आंत, लीवर, किडनी तथा उदर के सभी भागों में रहने वाली गड़बड़ियों को सुधार कर उन अंगों को सबल तथा सशक्त बनाता है।
9. स्त्रियों के लिए यह आसन काफी उपयोगी है। इससे बच्चेदानी अपने स्थान पर आ जाती है तथा वह गर्भधारण के योग्य बन जाती है।

❖ गोमुखासन (Gomukhasana)

गोमुखासन दो शब्दों के मेल से बना है; गो+मुख। गो का अर्थ है–गाय तथा मुख का अर्थ है–मुँह। इस आसन में गाय के मुँह जैसा आकार बनता है, इसीलिए इसे गोमुखासन कहा जाता है। यह आसन चौरासी आसनों में से एक है।

आसन की विधि अथवा पद्धति–दण्डासन में बैठकर बाएँ पैर को मोड़कर एडी को दाएँ नितम्ब के पास रखें अथवा एडी पर बैठें। दाएँ पैर को मोड़कर बाएँ पैर के ऊपर इस प्रकार रखें कि दोनों घुटने एक दूसरे को स्पर्श करें। दाएँ हाथ को ऊपर उठाकर पीठ की ओर मोड़िए। बाएँ हाथ को पीठ के पीछे से लेकर दाएँ हाथ को पकड़िए। गर्दन व कमर सीधी रहे।

एक ओर से लगभग एक मिनट करने के पश्चात् दूसरी ओर से इसी प्रकार करें।

धीरे-धीरे श्वास लीजिए। शरीर से ऊपरी हिस्से तथा मस्तक को सीधी रेखा में रखिए।

हाथ तथा पैर को क्रमशः बदलिए।

स्थूल व्यक्ति को यह आसन करने में कठिनाई होगी किन्तु धीरे-धीरे निरंतर अभ्यास से यह आसन भलीभाँति होने लगेगा।

प्रथमतः सप्ताह में चार बार करें। फिर धीरे-धीरे बढ़ते हुए छह बार तक ले जाएँ। धीरे-धीरे इस आसन को 15 मिनट तक करें।
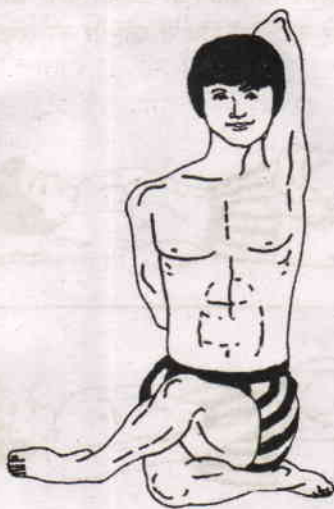
चित्र : गोमुखासन

आसन के शरीर पर प्रभाव अथवा लाभ–

1. यह आसन गुर्दे, वक्षस्थल को बल देता है। संधिवात तथा गठिया को दूर करता है।
2. इससे हाथ, पैर व स्कंध का व्यायाम होता है।
3. इसके अभ्यास से फेफड़ों से सम्बन्धित विकार दूर होकर रक्तसंचार में सहायता मिलती है।
4. इस आसन से बगल में होने वाली गांठ मिट जाती है।
5. शरीर के छोटे-बड़े जोड़ों पर यह आसन अच्छा प्रभाव डालता है। जोड़ लचीले बनते हैं तथा हड्डियाँ मजबूत होती हैं।
6. ब्रह्मचर्य तथा अच्छे स्वास्थ्य के लिए यह आसन बहुत उपयोगी है।
7. यह आसन कब्ज, मंदाग्नि, अरुचि, पीठ का दर्द तथा हाथ की मोच दूर करता है।
8. इस आसन से चित्तवृत्तियों पर नियंत्रण हो जाता है।
9. लम्बे समय तक ध्यानस्थ होने के लिए भी यह आसन उपयोगी है।

❖ मत्स्यासन (Matusyasna)

मत्स्यासन में प्लाविनी प्राणायाम की सहायता से पानी में मछली की तरह सरलता से तैरा जा सकता है, इसीलिए इसे मत्स्यासन कहा जाता है।

यदि यह आसन पानी में लगाया जाए तो बिल्कुल मछली की तरह विचरण किया जा सकता है।

आसन लगाने के बाद नाक पानी से बाहर रहती है, जिसके कारण सामान्य रूप से साँस ली जा सकती है तथा डूबने का खतरा भी नहीं रहता। इस आसन को लगाकर घंटों तक तैरा जा सकता है।

यह आसन ध्यान, धारणा तथा समाधि के लिए बहुत उपयोगी है।

आरंभ में यह आसन जमीन पर ही लगाया जाना चाहिए। जल में केवल उन लोगों को ही यह आसन लगाना चाहिए, जो अच्छे तैराक हों।

आसन की विधि अथवा पद्धति–पहले पद्मासन की मुद्रा में बैठ जाएँ। जो पद्मासन नहीं लगा सकते, वे वज्रासन में मत्स्यासन कर सकते हैं।

पद्मासन लगाकर धीरे-धीरे पीठ के बल जमीन पर लेट जाएँ। दोनों हाथ पीछे सिर के पास ले जाकर

हथेलियाँ कानों के पास टिकाते हुए सिर को जमीन पर टेककर ऊपर की ओर उठा लें। अब दोनों हाथों को आगे ले आएँ तथा बाएँ हाथ से बाएँ तथा दाएँ हाथ से दाएँ पैर का अंगूठा पकड़कर भी जमीन से ऊपर की उठा लें।
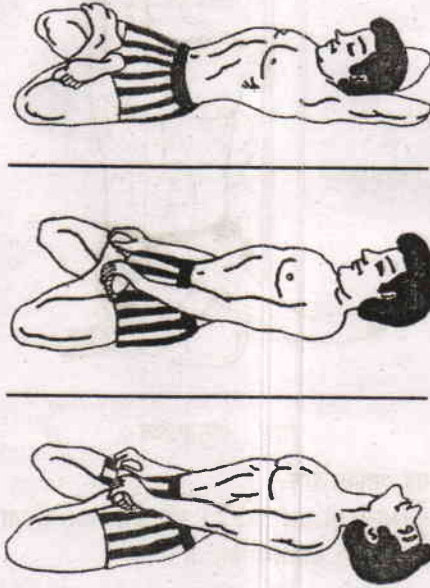
चित्र : मत्स्यासन

वापिस सामान्य अवस्था में आने के लिए पूरी क्रिया को विपरीत क्रम से करें।

इस आसन को करते समय श्वास-प्रश्वास लम्बा रखना चाहिए। इस आसन को करते समय अनुलोम तथा विलोम प्राणायाम भी किया जा सकता है।

आसन के शरीर पर प्रभाव अथवा लाभ–

1. इस आसन से पेट के समस्त रोग दूर होते हैं।
2. इस आसन से टौंसिल, नेत्र रोग, फेफड़े संबंधी रोग आदि दूर करने में भी सहायता मिलती है।
3. यह आसन मधुमेह के रोगियों के लिए विशेष रूप से लाभकारी है।
4. इस आसन में श्वास नलिका तथा स्वर पेटी काफी खुले रहते हैं। इसलिए गहरे श्वासोच्छ्वास के लिए यह अनुकूल है।
5. दमे के रोगियों के लिए भी यह आसन गुणकारी है।
6. इस आसन से मेरूदण्ड तथा पीठ की मांसपेशियाँ सक्रिय होती हैं।
7. इस आसन से चेहरे के तन्तुओं पर अच्छा प्रभाव पड़ता है तथा मुख की कांति बढ़ती है।
8. मनुष्य की स्मरणशक्ति में वृद्धि होती है। एकाग्रता बढ़ती है तथा स्नायु सुदृढ़ होते हैं।

❖ जानु शिरासन
(Janu Shirasana)

जानु संस्कृत भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है–घुटना। जब घुटनों को सिर के अगले भाग से छुआ जाता है तब उससे जो मुद्रा बनती है, उसे ही जानु शिरासन कहा जाता है। यह बैठकर किया जाने वाला आसन है। इस आसन के अभ्यास से शरीर के अनेक अंग प्रभावित होते हैं।

चित्र : जानु शिरासन

आसन की विधि–भूमि पर कंबल अथवा अन्य कोई आसन बिछा कर बैठ जाइए। रीढ की हड्डी को एकदम सीधा रखिए। बाएँ पैर को घुटने से इस प्रकार मोड़कर दाईं जांघ पर लाएँ कि उस पैर का तलवा दाईं जांघ से चिपका रहे। गहरी साँस भरते हुए हाथ को सीधा रखते हुए ऊपर उठाइए। धीरे-धीरे साँस छोड़ते हुए दाएँ पैर की उंगलियों को दोनों हाथों से पकड़ें। पुनः गहरी साँस भरिए। सिर के अगले भाग से दाएँ घुटने को छुएँ। धीरे-धीरे साँस छोड़िए। पेट तथा नाभि को अन्दर की ओर खींचकर रखने के साथ-साथ मूल बंध भी लगाइए। इस स्थिति में सुविधानुसार जितनी देर तक रुक सकते हैं, रुकिए।

अब इसी क्रिया को पैर बदल कर दूसरी दिशा में दोहराइए।

आसन के शरीर पर प्रभाव अथवा लाभ–

1. इस आसन के अभ्यास से हर्निया व बढ़े हुए अंडकोश आदि रोग आसानी से दूर हो जाते हैं। हर्निया रोगी को जहाँ सूजन हो ठीक उसके ऊपर एडी का दबाव डालना चाहिए।
2. इस आसन से जठराग्नि प्रदीप्त होती है तथा पाचनक्रिया में सहायता मिलती है।
3. ब्रह्मचर्य के पालन में यह आसन महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
4. इस आसन से मूत्र की सारी शिकायतें दूर हो जाती हैं।
5. आँतों की पीड़ा के लिए भी यह आसन उपयोगी है।
6. इस आसन से कुंडलिनी जागृत होती है तथा आलस्य तथा अशक्ति दूर होती है।
7. पश्चिमोत्तानासन से प्राप्त होने वाले सभी लाभ इस आसन से प्राप्त हो सकते हैं।

❖ अर्द्ध मत्स्येन्द्रासन
(Ardh Matsyendasana)

जैसे कि नाम से ही स्पष्ट है। यह अर्द्ध अर्थात् आधा आसन है। योगी मत्स्येन्द्र नाथ ने हठ योग के साधकों को सर्वप्रथम यह आसन सिखाया था। उन्हीं के नाम पर इस आसन का नामकरण हुआ है। कहा जाता है कि मत्स्येन्द्र नाथ भगवान शंकर के शिष्य थे।

विधि अथवा पद्धति–दण्डासन में बैठकर बायें पैर को मोड़ कर एड़ी को नितम्ब के पास लगाएँ। दायें पैर को बाएँ पैर के घुटने के पास बाहर की ओर भूमि पर रखें। बाएँ हाथ को दायें घुटने के समीप बाहर की ओर सीधा रखते हुए दायें पैर के पंजे को पकड़ें। दायें हाथ को पीठ के पीछे घुमाकर पीछे की ओर देखें। इसी प्रकार दूसरी ओर से इस आसन को करें।

आसन के शरीर पर प्रभाव अथवा लाभ–

1. मधुमेह एवं कमर दर्द में लाभकारी है।
2. मेरूदण्ड के इर्द-गिर्द फैली हुई नस-नाड़ियों में रक्त संचार को सुचारू रूप से चलाने में भी इस आसन का बहुत योगदान है।
3. यह आसन उदर विकारों को दूर कर आंतों को बल प्रदान करता है।
4. इस आसन के अभ्यास से कमर की मांसपेशियों की मालिश हो जाती है।
5. इस आसन के अभ्यास से पेट के कीड़े भी मर जाते हैं।
6. यह आसन स्वास्थ्य के साथ-साथ साधना की दृष्टि से भी उपयोगी है।
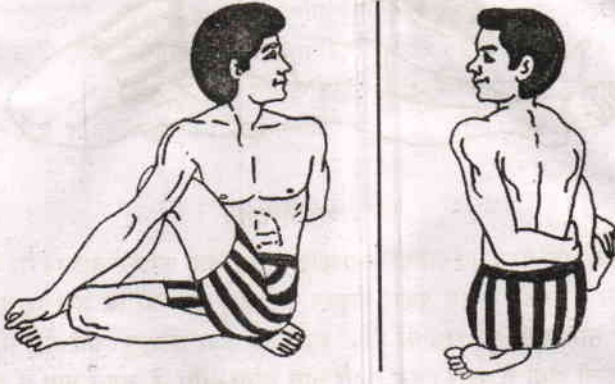
चित्र : अर्द्ध मत्स्येन्द्रासन

7. हाथ व पैरों की मांसपेशियाँ लचीली व शक्तिशाली होती हैं तथा स्नायु तंत्र संतुलित रूप से सक्रिय रहता है।
8. आसन के नियमित अभ्यास से शरीर सुंदर व सुडौल होता है। नवीन जीवन तथा स्फूर्ति का विस्तार होता है। व्यक्ति के मुखमंडल पर एक नई आभा चमक उठती है।
9. यह आसन कुंडलिनी को जागृत करता है तथा चन्द्र नाड़ी को स्थिर करता है।

❖ पद्मासन
(Padmasanasa)

पद्म अर्थात् कमल। जब यह आसन किया जाता है तब साधक की स्थिति कमल के समान हो जाती है, इसीलिए पद्मासन को कमलासन भी कहा जाता है। जैसे कमल कीचड़ में खिलते हुए भी कीचड़ अथवा पानी से ऊपर रहता है अर्थात् पानी को स्पर्श तक नहीं करता। वैसे पद्मासन में बैठे हुए साधक को भी भौतिक क्लेश तथा चिंताओं से मुक्ति मिल जाती है।

चित्र : पद्मासन

योग साधना तथा ध्यान के लिए किए जाने वाले आसनों में इस आसन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह आसन पुरुषों तथा महिलाओं अर्थात् दोनों के लिए उपयुक्त है।

पद्मासन के कुछ अन्य रूप जैसे अर्द्ध पद्मासन तथा बद्ध पद्मासन भी प्रचलित है। अर्द्ध पद्मासन इसका सरल रूप है जबकि बद्ध पद्मासन कुछ कठिन आसन माना जाता है।

पद्मासन की स्थिति अथवा विधि–इस आसन को करने के लिए किसी चटाई, दरी अथवा खाली स्वच्छ समतल भूमि पर बैठ जाइए।

दण्डासन में बैठकर दाहिने पैर को बाएँ पैर की जंघा पर रखें। इसी प्रकार बाएँ पैर को दाहिने जांघ पर स्थिर करें। मेरूदण्ड सीधा रहें। सुविधानुसार बाएँ पैर को जंघा पर रखकर दाएँ पैर को बाएँ जंघा पर स्थिर कर सकते हैं।

दोनों हाथों की अंजलि बनाकर (बायाँ हाथ नीचे तथा दायाँ हाथ ऊपर) गोद में रखें, नाक के अग्र भाग पर अथवा किसी एक स्थान पर मन को केन्द्रित करें। इष्ट देवता का ध्यान भी किया जा सकता है।

यदि दोनों पैर जंघा पर रखने संभव न हों तो केवल एक पैर को ही जांघ पर रख सकते हैं। ऐसे व्यक्तियों को भी प्रतिदिन उत्साहपूर्वक अभ्यास करना चाहिए। थोड़े समय के अभ्यास के पश्चात् वे इस आसन को सरलता से कर सकेंगे।

आरंभ में यह आसन एक दो मिनट तक करें। फिर धीरे-धीरे समय बढ़ायें।

पद्मासन के शरीर पर प्रभाव अथवा लाभ–

1. तन्द्रा-निद्रा, आलस्य, कब्ज, स्वप्नदोष, वीर्यविकार आदि दूर करता है।
2. मिर्गी, क्षय, दमा, खांसी आदि रोगों से सुरक्षित रखता है।
3. इस आसन से पाचन शक्ति बढ़ती है तथा कमर से ऊपर के अंग पुष्ट होते हैं।
4. कम वजन वालों के लिए वजन बढ़ाने में सहायक होता है।
5. जप, प्राणायाम, धारणा, ध्यान तथा समाधि के लिए यह आसन लाभदायक है।
6. इससे मन की एकाग्रता व प्राणोत्थान बढ़ता है।
7. जठराग्नि को तीव्र करता है तथा वात व्याधि में लाभदायक है।

❖ शीर्षासन
(Shirshasana)

शीर्ष शब्द का अर्थ सिर अथवा मस्तक है। सिर के बल खड़े होकर अथवा पूरे शरीर को सिर के आधार पर टिकाने के कारण ही इसे शीर्षासन कहा जाता है। शीर्षासन के योगाचार्यों ने इस आसन को 'सभी आसनों का राजा' का पद दिया है। इससे स्पष्ट है कि इस आसन में महत्त्वपूर्ण गुण व लाभ छुपे हुए हैं। इस आसन को कपिलासन, वृक्षासन तथा विपरीतकरणी आसन भी कहा जाता है।

यद्यपि यह आसन, आसनों का राजा है, इस आसन के बहुत लाभ व गुण भी हैं परन्तु इस आसन के अभ्यास से पहले कुछ सावधानियाँ रखनी पड़ती हैं, जिनसे अच्छी तरह परिचित होना अनिवार्य है अन्यथा इस आसन से लाभ होने के स्थान पर हानि भी हो सकती है।

आसन करने से पूर्व की सावधानियाँ–

1. भोजन के पश्चात् कम से कम तीन घंटे से पहले इस आसन को नहीं करना चाहिए।
2. कठिन व्यायाम तथा परिश्रम के पश्चात् भी इस आसन को करने की मनाही है।
3. कान, आँख, गर्दन तथा रक्तचाप से पीड़ित व्यक्तियों के लिए भी यह आसन हानिकारक है। इसलिए ऐसे रोगियों को भी यह आसन नहीं करना चाहिए।
4. तीव्र पित्तप्रवृत्ति वाले व्यक्तियों के लिए भी इस आसन की मनाही है।
5. आसन करते समय यदि किसी भी प्रकार की कठिनाई महसूस हो तो बिना किसी मार्गदर्शक यह आसन नहीं करना चाहिए।

6. शीर्षासन का अभ्यास करते समय गर्दन को झटकना, टेढ़ा करना तथा झुकाना भी वर्जित है।
7. सिर के बल खड़े होने को शीर्षासन कहा जाता है। यह आसन कठिन आसन है इसलिए इसका अभ्यास अन्य आसनों के अच्छे अभ्यास के पश्चात् ही करना चाहिए। अभ्यास में सतर्कता तथा सावधानी की आवश्यकता है। आरंभ में किसी को पास खड़ा करके ही अभ्यास करें ताकि संतुलन बिगड़ जाने की स्थिति में गर्दन व पीठ की हड्डी अथवा नस-नाड़ी पर कोई चोट न लगे।
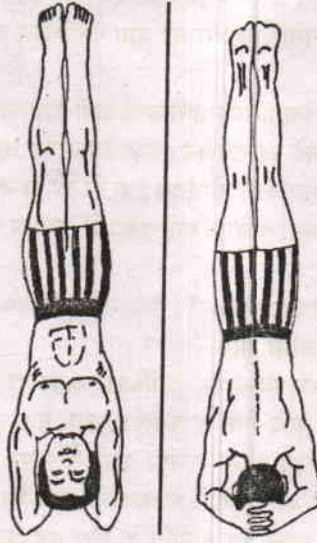
चित्र : शीर्षासन

गृहस्थ व्यक्ति 10 मिनट से अधिक शीर्षासन न करें।

आसन की विधि–किसी कम्बल अथवा मोटे तौलिये की चार तह करें, जिससे गद्दी सी बन जाए। गद्दी की लम्बाई-चौड़ाई इतनी अवश्य होनी चाहिए कि आप के बाजू तथा सिर उस पर आ जाएँ। घुटने मोड़कर उस गद्दी पर झुक जाएं। दोनों हाथों की उंगलियों को एक-दूसरे में फंसाकर कोहनियों तक गद्दी पर टिका दें। कोहनियों में कंधों से थोड़ा अधिक फासला रखें। सिर के अगले भाग को गद्दे पर टिका दें। दोनों हाथों से सिर को सहारा दें। अब घुटनों को अधिक से अधिक छाती की तरफ लाकर पीठ को सीधा करें। पाँव का अगला भाग जमीन से स्पर्श करें। इस स्थिति में अपने आप को संतुलित करते हुए पाँव को उठा दें तथा घुटनों को मोड़कर एडियों को नितम्बों के पास ले जाएँ। इस स्थिति में सिर के बल खड़े होने का अभ्यास करें।

इस अभ्यास के पश्चात् घुटनों तक अपने को सीधा करें। एड़ियाँ नितम्बों के साथ ही रहेंगी। इस स्थिति में कुछ दिन रहने का अभ्यास करें। यदि कोई व्यक्ति सहारे के लिए नहीं है तो दीवार का सहारा लिया जा सकता है।

इस अभ्यास के पश्चात् पांवों को बिल्कुल सीधा करें। शरीर सीधा रहना चाहिए। टांगों में तनाव नहीं होना चाहिए, जिससे रक्त का संचार बराबर बना रहे। जितनी देर आसानी से सिर के बल खड़े रह सकते हैं, खड़े रहें। वापिस आते हुए भी धीरे-धीरे वापस आएँ। झटके के साथ नीचे न गिरें।

नीचे आते ही दो मिनट के लिए शवासन में लेट जाएँ, जिससे रक्त का संचार व नस नाड़ियाँ अपनी स्वाभाविक स्थिति में आ जाएँ।

खाली पेट होने पर ही यह आसन करें। यदि समय हो तो सुबह-शाम को यह आसन किया जा सकता है। जब सिर के बल खड़े हों तो धीरे-धीरे श्वास लें। मुँह से कभी भी श्वासोच्छ्वास न करें।

ग्रीष्म ऋतु में यह आसन लम्बे समय तक न करें। सर्दी की ऋतु में आप इच्छानुसार यथासंभव लम्बे समय तक यह आसन कर सकते हैं।

आसन करते समय आँखें खुली अथवा बंद रख सकते हैं। यदि लम्बे समय तक आसन करना हो तो आँखें बंद रखिए। ऐसा करने से मन की एकाग्रता बनी रहेगी।

आसन के पश्चात् कम से कम 5 मिनट के विश्राम के पश्चात् एक कप दूध अथवा हल्का नाश्ता लें।

आसन के शरीर पर प्रभाव अथवा लाभ–

1. योग की दृष्टि से यह आसन बड़े महत्त्व का है। शरीर का कोई भी अंग अथवा संस्थान ऐसा नहीं है जिस इस आसन से लाभ न होता हो।
2. मस्तिष्क के विकास तथा मानसिक शक्ति को बढ़ाने में यह आसन बहुत उपयोगी है।
3. स्नायु मंडल, रक्तसंचार, मांसपेशियों, पाचन संस्थान, जनन अंग, श्वास-प्रश्वास, हृदय, विसर्जन संस्थान आदि सभी अंगों को यह आसन शक्ति प्रदान करता है।
4. यह आसन मानसिक शक्ति में वृद्धि करता है। स्मरण शक्ति को विकसित करता है तथा कुंडलिनी शक्ति को जागृत करता है।
5. हार्निया तथा बवासीर जैसे रोग भी इस आसन से ठीक हो जाते हैं।
6. यह आसन बुढ़ापे को दूर रखता है।
7. यह आसन गुरुत्वाकर्षण-नियम के विपरीत है। यह आसन करने से मस्तिष्क अत्यधिक मात्रा में प्राण तथा रक्त खींच सकता है।

ब्रह्मचर्य के पालन में यह आसन बहुत सहायता करता है। यह आसन शक्तिसंचय करता है, शक्ति प्रदान करता है तथा शक्ति में वृद्धि करता है।

अन्ततः योग तत्त्व उपनिषद् में कहा गया है कि जो व्यक्ति यह आसन तीन घंटे तक करता है, वह जगत् को जीत लेता है।

मानव के लिए शीर्षासन सचमुच अमृत है।

MODEL TEST PAPER-1

MAHARISHI DAYANAND, UNIVERSITY, ROHTAK

YOGA EDUCATION
Paper - III-B (ii)

Time : 1½ hours] *[Maximum Marks : 50*

***Note :** All questions are compulsory.*

1. What are the Philosophical Bases of Yoga? Explain.

   Or

   What are the five states of chitta 'Mind'? Which of these states a yogi tries to attain and why? 10

2. What is universal code of human conduct, according to Yoga and what is its importance in life? 10

   Or

   What is role of 'Dhyana' for the attainment of 'Nirmal Chitta' which is the yogi's Final goal?

3. "Food, ideas and action are interrelated." Comment in the light of yogic diet. 10

   Or

   Mention the main type of yoga and explain Sankhya yoga in detail. 10

(हिन्दी अनुवाद)

1. योग के दार्शनिक आधार क्या हैं? वर्णन करो।

   अथवा

   चित्त 'बुद्धि' की पाँच अवस्थाएं क्या हैं? इनमें से किस अवस्था को प्राप्त करने का योगी प्रयास करता है और क्यों?

2. योग के अनुसार, सार्वभौमिक मानव आचार संहिता क्या है तथा इसका जीवन में क्या महत्त्व है?

   अथवा

   'निर्मल चित्त' की प्राप्ति में, जो योगी का अन्तिम लक्ष्य है, 'ध्यान' की क्या भूमिका है?

3. "आहार, विचार और व्यवहार में गहरा सम्बन्ध है।" यौगिक आहार के परिप्रेक्ष्य में इस कथन पर टिप्पणी करें।

   अथवा

   योग के प्रमुख प्रकारों का उल्लेख करते हुए सांख्य योग की सविस्तार व्याख्या करें।

❏❏

MODEL TEST PAPER-2

MAHARISHI DAYANAND, UNIVERSITY, ROHTAK

YOGA EDUCATION

Third B (ii) Paper

Time : 1½ hours] *[Maximum Marks : 30*

Note : *All the three questions are compulsory. All questions carry equal marks.*

Before answering the question-paper candidates should ensure that they have been supplied to correct and complete question-paper. Complaints in this regard, if any, will not be entertained after the examination.

1. Differentiate between the Philosophy and Psychology of Yoga. Explain the concept of Prakriti and Purusha.

Or

Describe different methods of Chitta control. Explain the concept of Pratyahara in detail.

योग के दर्शन तथा योग के मनोविज्ञान में क्या अंतर होता है? प्रकृति तथा पुरुष संप्रत्ययों की व्याख्या कीजिए।

अथवा

चित्तवृत्ति निरोध की विभिन्न विधियाँ कौन-कौन सी होती हैं? प्रत्याहार संप्रत्यय की विस्तार से व्याख्या कीजिए।

2. Discuss the concept and kinds of Dhyana.

Or

What are the socio-moral basis of Ashtang Yoga? Discuss these basis citing examples from daily life.

ध्यान की अवधारणा तथा इसके प्रकारों की विवेचना कीजिए।

अथवा

अष्टांग योग में प्रतिपादित सामाजिक-नैतिक आधार कौन से हैं? दैनिक जीवन से उदाहरण देते हुए इन आधारों की विस्तार से विवेचना कीजिए।

3. Discuss Raj Yoga briefly explaining different levels of it.

Or

Explain the difference between Raj Yoga and Bhakti Yoga. What kind of diet should a practitioner in Yoga take?

राजयोग की विभिन्न अवस्थाओं या स्तरों (अंगों) को स्पष्ट करते हुए राजयोग की विवेचना कीजिए।

अथवा

राजयोग और भक्ति योग का अंतर स्पष्ट कीजिए। योग साधक को किस प्रकार का भोजन लेना चाहिए?

MODEL TEST PAPER-3

MAHARISHI DAYANAND, UNIVERSITY, ROHTAK

YOGA EDUCATION

(Paper–III-B) (ii)

Time : 1½ hours] *[Maximum Marks : 30*

Note : *Attempt all the* ***three*** *questions. All questions carry equal marks.*

1. What do you understand by Yoga? What is its importance in one's life? 10

योग से आप क्या समझते हैं? व्यक्ति के जीवन में इसका क्या महत्त्व है?

Or

Define Samadhi and discuss its kinds. 10

समाधि को परिभाषित कीजिए और इसके विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।

2. Explain, how Yamas and Niyamas lead to ideal adjustment in social and personal life. 10

यम और नियम, किस प्रकार सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन में आदर्श समायोजन में सहायक हैं—व्याख्या कीजिए।

Or

How Sthula, Jyotir and Sukshma dhyana differ from each other? Explain how nirmal chitta is helpful in achieving the final goal. 10

स्थूल, ज्योतिर् और सूक्ष्म ध्यान एक-दूसरे से कैसे भिन्न हैं? निर्मल चित्त किस प्रकार अन्तिम लक्ष्य प्राप्त करने में सहायक है, व्याख्या करें।

3. Define and differentiate between Hatha Yoga and Bhakti Yoga. 10

हठ योग और भक्ति योग को परिभाषित करें और अन्तर स्पष्ट करें।

Or

What is meant by yogic diet? Is it practicable in modern context?

योगिक आहार से क्या तात्पर्य है? क्या यह आधुनिक संदर्भ में व्यावहारिक है?

❐❐

MODEL TEST PAPER-1

KURUKSHETRA UNIVERSITY, KURUKSHETRA

YOGA EDUCATION

(Paper–III [B] (*viii*))

Time allowed : 1½ Hours] ***[Maximum Marks : 50***

Note : *Attempt* ***three*** *questions in all, selecting* ***one question*** *from each unit.*

Unit–I

1. What do you mean by yoga ? What are the scope and functions of yoga ? 10
2. Write short notes on the following :
   (a) Purush and Purush vishesh : their relation
   (b) Kinds of Smadhi. 5, 5

Unit–II

3. What is meant by chitta (mind) ? Write in detail the various methods to control chitta. 10
4. What is the difference between Dharna and Dhyan ? Describe in brief the different kinds of Dhyan. 10

Unit–III

5. Discuss in detail Raja yoga (Ashtang yoga). 10
6. Differentiate between Hatha yoga and Bhakti yoga. Which is commonly used by most of the common people and why ? 10

(*HINDI VERSION*)

नोट : *प्रत्येक इकाई में से एक प्रश्न चुनते हुए, सभी तीन प्रश्नों के उत्तर दीजिए।*

इकाई–I

1. योग से आप क्या समझते हैं ? योग के क्षेत्र एवं कार्यों का वर्णन कीजिए। 10
2. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :
   (क) पुरुष एवं पुरुष विशेष : उनका संबंध
   (ख) समाधि के प्रकार। 5, 5

इकाई–II

3. चित्त (मन) से क्या अभिप्राय है ? मन को वश में करने के विभिन्न तरीकों का वर्णन विस्तार से कीजिये। 10
4. धारणा व ध्यान में क्या अन्तर है ? ध्यान के विभिन्न प्रकारों का संक्षेप में वर्णन कीजिए। 10

इकाई–III

5. राज योग (अष्टांग योग) का विस्तार से वर्णन करिये। 10
6. हठ योग व भक्ति योग में अन्तर बताइये। इनमें कौन-से योग को अधिकतर साधारण लोग इस्तेमाल करते हैं और क्यों ? 10

MODEL TEST PAPER-2

KURUKSHETRA UNIVERSITY, KURUKSHETRA

YOGA EDUCATION

(Paper-III, Opt. (ii) Group-B)

Time : 1½ hours] *[Maximum Marks : 40*

Note : Attempt three questions in all. Question No. 1 is compulsory.

1. Write notes on the following :

(a) Five Yamas (पाँच यम)

(b) Kinds of Dhyana (ध्यान के प्रकार) 4+4=8

2. Discuss philosophical basis of yoga with special reference to :

निम्नलिखित के संदर्भ में योग के दार्शनिक आधार की चर्चा करें :

(a) Goals of life (जीवन के लक्ष्य)

(b) Prakriti (प्रकृति)

(c) Purush-vishesha (Ishwar) (पुरुष-विशेष (ईश्वर))

(d) Atma (आत्मा) 4×4=16

3. Discuss psychological basis of Yoga with special reference to :

निम्नलिखित के संदर्भ में योग में मनोवैज्ञानिक आधार की चर्चा करें :

(a) Nature of Chitta (Mind) (चित्त की प्रकृति)

(b) Methods of Chitta control. (चित्त निरोध के साधन) 4+12=16

4. Give an account of Ashtanga (Eight Limbs) Yoga. 16

अष्टांग योग की व्याख्या करें।

5. What is Yoga Diet? Discuss its application and benefits to a yoga practitioner (Sadhak). 4+12=16

यौगिक आहार क्या है? योग के साधक के लिए इसके अभ्यास एवं लाभ पर प्रकाश डालिए।

❐

MODEL TEST PAPER-3

KURUKSHETRA UNIVERSITY, KURUKSHETRA

YOGA EDUCATION
(Paper-III, Group-B)

Time : 1½ hours] *[Maximum Marks : 40*

***Note :** Attempt three questions in all. Question No. 1 is compulsory.*

1. Explain the following :
(a) Five Niyamas (पाँच नियम)
(b) Kinds of Samadhi (समाधि के प्रकार) 4+4=8

2. What is the meaning of 'Triguna'? Give its characteristic features. Discuss its implications for a yogic way of life. 4+6+6=16
त्रिगुण से क्या अभिप्राय है? त्रिगुण के मुख्य लक्ष्यों का वर्णन करें। योग युक्त जीवन में इसकी क्या सार्थकता है?

3. Discuss the role of 'Pratyahara', 'Dharna' and 'Dhyana' for Chitta control.
चित्त निरोध के लिए 'धारणा' एवं ध्यान का उल्लेख करें।

4. Bring out the difference between 'Hatha Yoga' and 'Bhakti Yoga'. Give merits of 'Bhakti Yoga' for moral and spiritual development. 10+6=16
'हठ योग' एवं 'भक्ति योग' में क्या अन्तर है? नैतिक एवं आध्यात्मक विकास के लिए भक्ति योग की श्रेष्ठता का वर्णन करें।

5. What is Yogic Diet? Discuss the nature and importance of 'Sattvic' food for Yoga practioner (Sadhak). 6+10=16
यौगिक आहार क्या है? योग के साधक के लिए सात्विक आहार की प्रकृति एवं उसके महत्व पर प्रकाश डालिए।

❒

287·3

MODEL TEST PAPER-4

KURUKSHETRA UNIVERSITY, KURUKSHETRA

YOGA EDUCATION

(Paper–III-B, Option : (ii)

Time : 1½ hours] *[Maximum Marks : 40*

***Note :** Attempt Three questions in all. Question No. 1 is compulsory.*

1. Write notes —
(a) TRIGUNA
(b) NIYAMAS 4 + 4

2. Discuss in detail 'Yamas' as described in 'Bhagwad Purana' and by 'Maharishi Patanjali.' 16

3. Give the concept of the following :—
(a) Ashtang Yoga
(b) Hatha Yoga
(c) Bhakti Yoga
(d) Mantra Yoga 4 × 4

4. "Yogic diet has got its own importance for the practicitioners." Elaborate. 16

5. Discuss the follwing :—
(a) Samadhi and its Kinds.
(b) Dhyana and its Kinds. 8 + 8

Hindi Version

नोट : *कुल तीन प्रश्न करें। प्रश्न नं. 1 अनिवार्य है।*

1. टिप्पणी करें :–
(क) त्रिगुणा
(ख) नियमा। 4 + 4

2. 'भागवत पुराण' व 'महर्षि पतंजलि' द्वारा दिये गए यमों की व्याख्या करें। 16

3. निम्न की धारणाएँ लिखें –
(क) अष्टांग योग
(ख) हठ योग
(ग) भक्ति योग
(घ) मंत्र योग। 4 × 4

4. "योग के साधकों के लिए यौगिक आहार का अपना ही महत्त्व है।" वर्णन करें। 16

5. निम्न की व्याख्या दें :–
(क) समाधि व उसके प्रकार।
(ख) ध्यान व उसके प्रकार। 2 × 8

Published by :

LAXMI BOOK DEPOT™

HANSI GATE, BHIWANI